Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ

प्रेमदर्शिनी

लेखक

प्रेमावतार ब्रह्मविद्वरिष्ठ अनन्त श्री विभूषित परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ नारद-भक्ति-सूत्र ॥

की

अनुभवात्मिका सर्वोत्कृष्ट

प्रेमदर्शिनी-टीका

[उपनिषद् एवं श्रीमद्भागवतादि ८४ ग्रन्थों के प्रमाणों से प्रमाणित]

लेखक:—

गीता की सुप्रसिद्ध

'तत्त्वदर्शिनी'

के

टीकाकार

प्रेमावतार ब्रह्मविद्वरिष्ठ अनन्त श्री विभूषित परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशक:—

श्री ठाकुर प्रसाद उपाध्याय

स्थान— अहिरौली, पो० आ०—मुहम्मदाबाद (यूसुफपुर)

जिला—गाजीपुर (उत्तर-प्रदेश)

१९६९ प्रथम संस्करण २०००

[सर्वाधिकार सुरक्षित लेखकाधीन]

पुस्तक मिलने का पता—

(१) श्री धर्मवीर मल्ल

स्थान—उसुरी, पो० आ०—मधुबन

जिला—आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश)

(२) श्री शेरबहादुर सिंह

६१/१ मिर्जापुर इस्ट्रीट

कलकत्ता ६

मूल्य:—७-५०

मुद्रक:— प्रकाशन संस्थान, आजमगढ़

आसिफगंज, आजमगढ़

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमदर्शिनी की विषय-सूची

संख्या	विषय	पृष्ठ
१-	भक्ति की अनिवार्यता एवं उसकी विशेषतायें तथा प्राक्कथन	१-४९
२-	दो शब्द	५०-६०
३-	प्रार्थना	६१-६२
४-	सांकेतिक चिह्नों का स्पष्टीकरण	६३-६६
५-	प्रस्तावना	६७-६८

सूत्र संख्या	विषय	पृष्ठ
१-	अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः।	६९-७४
२-	सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।	७५-७६
३-	अमृतस्वरूपा च।	७७-८१
४-	यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति ··· ··· ···।	८२-८८
५-	यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति··· ··· ··· ···।	८९-९३
६-	यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति··· ··· ··· ··· ···।	९४-९९
७-	सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्।	१००-१०२
८-	निरोधस्तु लोकवेद व्यापारन्यासः।	१०३-१०४
९-	तस्मिन्नन्यता तद्विरोधिषू दासीनता च।	१०५-१०८
१०-	अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता।	१०९-११२
११-	लोके वेदेषु तदनुकूला चरणं··· ··· ···।	११३-११४
१२-	भवतु निश्चय दार्ढ्यादूर्ध्वं ··· ··· ···।	{ ११५-११७
१३-	अन्यथा पातित्याशङ्कया।	{
१४-	लोकोऽपि तावदेव किन्तु ··· ···।	११८
१५-	तल्लक्षणानि वाच्यन्ते।	{
१६-	पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः।	(११९-१२९
१७-	कथादिष्विति गर्गः।	{
१८-	आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः।	{
१९-	नारदस्तु तदर्पिताखिला चारिता।	१२६-१२९

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सूत्र संख्या	विषय	पृष्ठ
२०-	अस्त्येवमेवम् ।	१३०
२१-	यथा व्रजगोपिकानाम् ।	१३१-१३६
२२-	तत्रापि न माहात्म्यज्ञान ।	१३७-१४३
२३-	तद्विहीनं जाराणामिव ।	१४४
२४-	नास्त्येव तस्मिंस्तत् ।	१४५-१४८
२५-	सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्यो ।	१४९-१५३
२६-	फलरूपत्वात् ।	१५४-१६१
२७-	ईश्वरस्याभिमानद्वेषित्वाद् ।	१६२-१६७
२८-	तस्या ज्ञानमेव ।	१६८
२९-	अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये	१६९
३०-	स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः ।	१७०-१७१
३१-	राजगृह भोजनादिषु ।	१७२
३२	न तेन राजपरितोषः ।	१७३
३३-	तस्मात् सैव ग्रह्या ।	१७४-१७५
३४-	तस्या साधनानि ।	१७६
३५-	तत्तु विषयत्यागात् ।	१७७-१७९
३६-	अव्यावृत भजनात् ।	१८०-१८१
३७-	लोकेऽपि भगवद्गुण ।	१८२-१९६
३८	मुख्यतस्तु महत्कृपयैव ।	१९७-२०२
३९-	महत्सङ्गस्तु दुर्लभो ।	२०३-२०६
४०-	लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ।	२०७-२०८
४१-	तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात् ।	२०९-२११
४२-	तदेव साध्यताम् ।	२१२-२१४
४३-	दुःसङ्गः सर्वथैव त्याज्यः ।	२१५-२१६
४४-	कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंश ।	२१७-२१८
४५-	तरङ्गायिता अपीमे ।	२१९-२२१
४६-	कस्तरति कस्तरति ।	२२२-२२६
४७-	यो विविक्त स्थानं सेवते, ।	२२७-२३०

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सूत्र संख्या	विषय	पृष्ठ
४८-	यः कर्मफलं त्यजति ।	२३१-२३२
४९-	वेदानपि संन्यस्यति	२३३-२३५
५०-	स तरति स तरति ।	२३६-२३७
५१-	अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ।	२३८-२३९
५२-	मूकास्वादनवत् ।	२४०-२४१
५३-	प्रकाश्यते क्वापि पात्रे ।	२४२-२४३
५४-	गुणरहितं कामनारहितं ।	२४४-२५०
५५-	तत्प्राप्य तदेवावलोकयति ।	२५१-२५७
५६-	गौणी त्रिधा गुणभेदात् ।	२५८-२६०
५७-	उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वपूर्वा ।	२६१
५८-	अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ ।	२६२-२६५
५९-	प्रमाणान्तरस्या नपेक्षत्वान् ।	२६६
६०-	शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च ।	२६७-२६८
६१-	लोकहानौचिन्ता न कार्या ।	२६९-२७०
६२-	न तदसिद्धौ लोकव्यहारो ।	२७१
६३-	स्त्रीधननास्तिकवैरि ।	२७२-२७९
६४-	अभिमान दम्भादिकं त्याज्यम् ।	२८०-२८१
६५-	तदर्पिताखिलाचारः सन् ।	२८२-२८४
६६-	त्रिरूपभंग पूर्वकं नित्यदास ।	२८५-२८८
६७-	भक्ता एकान्तिनो मुख्याः ।	२८९-२९०
६८-	कण्ठावरोध रोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं ।	२९१-२९३
६९-	तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मी ।	२९४-२९६
७०-	तन्मयाः ।	२९७-२९८
७१-	मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः	२९९-३०१
७२-	नास्ति तेषु जातिविद्यारूप ।	३०२-३०७
७३-	यतस्तदीयाः ।	३०८
७४-	वादो नावलम्ब्यः ।	३०९-३१०
७५-	बाहुल्यावकाशादनियतत्वाच्च ।	

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सूत्र संख्या	विषय		पृष्ठ
७६-	भक्ति शास्त्राणि मननीयानि	।	३१३-३१५
७७-	सुख दुःखेच्छालाभादित्यक्ते	।	३१६-३१८
७८-	अहिंसा सत्यशौचदया	।	३१९-३२०
७९-	सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तै	।	३२१-३२३
८०-	स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति	।	३२४-३२६
८१-	त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी	।	३२७-३२८
८२-	गुण माहात्म्यासक्ति रूपासक्ति	।	३२९-३३४
८३-	इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया	।	३३५-
८४-	य इदं नारदप्रोक्तं शिवानुशासनं	।	३३६-३३७
	शरणागति-रहस्य		३३८-३४८
	स्तुति		३४९
	समर्पण		३५०-३५१

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ

॥ भूमानन्दात्मने नमः ॥

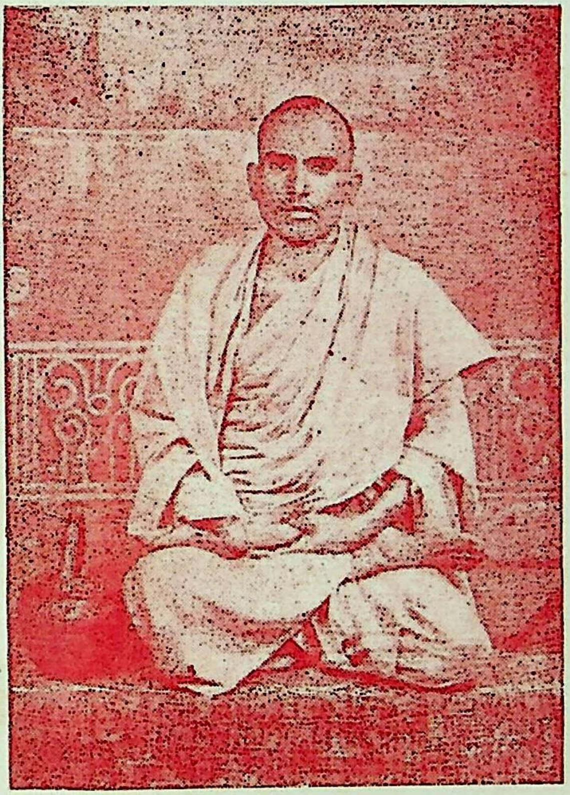

परम अकिंचन ज्ञानमूर्ति
तपोनिष्ठ सर्वात्मदर्शी वीतराग परमहंस
श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

* ॐ *

* श्री गणेशायनमः *

॥ ॐ नमोभगवते वासुदेवाय ॥

भक्ति की अनिवार्यता एवं उसकी विशेषतायें

तथा

प्राक्कथन

ब्रह्मानन्दं-परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

अखण्डानन्दरूपाय शिष्यसंतापहारिणे ।
सच्चिदानन्दरूपाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

सकलसुखनिधानं सर्वविद्यावभासं
भ्रमतिमिरविहीनं शान्तमूर्तिं विशुद्धम् ।
हृदिगतमभिरामं सर्ववेदान्तभूमिं
यदुपतिमभिवन्दे कृष्णमीशानमन्तः ॥

अर्चितः संस्मृतोध्यातः कीर्तितः कथितः स्मृतः ।
यो ददात्यमृतत्वं हि स मां रक्षतु केशवः ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ति की अनिवार्यता एवं उसकी विशेषताएँ

जीव की स्वाभाविक प्रवृत्ति आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति एवं नित्य सुख-शान्ति की प्राप्ति की है, परन्तु वह खोज रहा है परिवर्तनशील स्त्री, पुत्र, धन, देह, गेह एवं सांसारिक अनित्य वस्तुओं में। भला, जो वस्तु स्वयं जन्ममृत्यु जराव्याधि से ग्रस्त एवं दुःखस्वरूप है उसमें सुख कहाँ? शान्ति कहाँ? इसीलिए भगवान् अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि अर्जुन!

"आब्रह्मभुवनल्लोकाः पुनरावर्तिनः"

ब्रह्मलोकपर्यन्त समस्त भुवन पुनरावर्ती हैं।

"ये हि संस्पर्शजाभोगा दुःखयोनय एव ते"

इसके रूप, रस आदि विषय भी दुःख की योनि, आदि-अन्तवान्, असत् हैं। अतः

"दुःखालयमशाश्वतम्"

"संसार एव दुःखानां सीमान्त इति कथ्यते"

"जगदिदं क्षणभंगनिष्ठम्"

"जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारं सचराचरम्"

"असारः खलु संसारोदुःखरूपीविमोहकः"

दुःखालय, अशाश्वत, क्षणभंगुर, जलबुद्बुदवत् अस्थिर, मिथ्या, असार, अत्यन्त विमोहक सांसारिक द्वन्द्वात्मक विषतुल्य विषय भोगों के सेवन से दुःखनिवृत्ति कदापि सम्भव नहीं। इन प्रत्यक्ष अनुभूयमान, दुःख-स्वरूप, विनश्वर, जागतिक पुष्कल भोगों को प्रयत्नविशेष से उपलब्ध करके भी वैसे ही मनुष्य सुखी नहीं हो सकता जैसे स्वप्न के करोड़ों साम्राज्य को प्राप्त करने वाला पुरुष। ये केवल,

"वाचारम्भणं विकारोनामधेयम्"

वाचारम्भणमात्र—वाग्विलासमात्र हैं। यह जगत् प्रत्यक्ष अनुभव एवं व्यवहार का विषय होने पर भी,

"असद्रूपो यथा स्वप्न"

"प्रभाते स्वप्नवन्मिथ्या"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वप्नवत् नितान्त मिथ्या ही है। जैसे स्वाप्निक जगत् मोहात्मक निद्रा से उत्थित होने पर जाग्रत्काल में सर्वथा बाधित हो जाता है वैसे ही यह नामरूपात्मक जाग्रत् दृश्यप्रपञ्च भी अनादिकालीन मोहावरण के नष्ट होने पर सर्वथा बाधित-मिथ्या हो जाता है। वस्तुतः,

"नासतो विद्यतेभावः"

"न रूपमस्येह"

इसका अस्तित्व त्रिकाल में भी नहीं है। अतः इस मृगजलवत् प्रतीयमान, भ्रान्तिजन्य, स्वप्नतुल्य, संसरणशील, क्षणभंगुर, मिथ्या जगत् में वास्तविक सुखशान्ति त्रिकाल में भी सम्भव नहीं, क्योंकि संसार परिवर्तनशील स्वभाव होने से अनित्य है तथा अनित्य होने से विकारी एवं विकारी होने के कारण ही दुःखस्वरूप है। इसी प्रकार अपरिवर्तन स्वभाववाली वस्तु नित्य होगी तथा नित्य होने से ही निर्विकारी एवं निर्विकारी होने के कारण ही सुखस्वरूप होगी। इसीलिए जीवों के आत्यन्तिक हित का विचार करने वाली अनन्तमातृ-हितैषिणी भगवती श्रुति की यह सुस्पष्ट घोषणा है कि ऐ नित्य सुख-शान्ति के जिज्ञासुओ! परमात्मा के अंशो! पुत्रो! जीवो! कान खोलकर मेरे उपदेशामृत को सुनो :—

"यो वैभूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति"

"यो वै भूमा तदमृतं यदल्पं तन्मर्त्यम्"

भूमा-व्यापक, सर्वगत, त्रिकालातीत सत्ता ही सुखस्वरूप है, अन्य परिवर्तनशील, सांसारिक कोई वस्तु नहीं। वही,

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ....।"

"तज्जलानीति"

सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का कारण है। वही,

"येन प्रकाशते विश्वम्"

"तस्य भासा सर्वमिदं विभाति"

समस्त विश्व एवं समस्त देश, काल, वस्तु का प्रकाशक,

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः"
"अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः"

जीव का नित्य सखा शिव, सर्वान्तर्यामी एवं सर्वात्मरूप से समस्त प्राणियों के हृदयरूप गुहा में पञ्चकोशों के भीतर स्थित है। वही सब जीवों का पारमार्थिक वास्तविक स्वरूपभूत आत्मा है। ऐसा होने पर भी,

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया"
"अजेया वैष्णवीमाया"
"अहो दुरत्यया माया लोकस्यार्थप्रणाशिनी।"
"यया विमोहितं सर्वं जगद्भ्रमति नित्यशः॥"

उसकी समस्त श्रेयोविनाशिनी, सर्वविश्वविमोहिनी, अजेया, दैवी, गुणमयी, वैष्णवी दुरत्यया माया के वशीभूत हो, अपने प्रेमास्पद स्वरूपभूत भगवान् को सर्वथा भूलकर, देहाभिमान के कारण कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि जन्ममृत्यु-प्रदायक प्रधानदोषों से जीवत्वभाव को प्राप्त हो, इस भयङ्कर अथाह संसार-समुद्र में अनादिकाल से स्वकर्मानुसार निमज्जनोन्मज्जन को प्राप्त हो, निरन्तर जन्ममृत्युजरा आदि रूप दुःसह महान् दुःखों से बुरी तरह आक्रान्त हो, करुण क्रन्दन-चीत्कार मचाता हुआ, अपने लक्ष्यभूत वास्तविक नित्य सुख-शान्ति से वञ्चित हो रहा है। अतः जीव को अपनी स्वाभाविक नित्य सुखशान्ति की जिज्ञासा को पूर्ण करने के लिए,

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः"

जीव के सनातन सम्बन्धी करुणावरुणालय, भक्तवाञ्छाकल्पतरु, भक्तवत्सल, आनन्दकन्द, सच्चिदानन्दघन, भगवान् वासुदेव के शरणापन्न होना चाहिए। पुत्र, मित्रकलत्रादि के दर्शन से होने वाले महामोहरूप सैकड़ों भँवरों से आकुल, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, ममकार आदि चित्त के विकाररूप महाग्राहों से विस्तृत, नाना प्रकार के महारोग रूप करोड़ों तिमि-तिमिङ्गिलों से सुशोभित, भूख-प्यास आदि महातरङ्गों से व्याप्त, ताप समूह रूप वड़वाग्नि की ज्वालारूप मालाओं से लपटे हुए, स्वेष्टजनों के नाश से होने वाले प्रलापरूप महाध्वनि से शब्दायमान, विषयरूप विष से परिपूर्ण, संसार समुद्र में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डूबे हुए अपने नित्यांश जीवों की अत्यन्त दयनीय कारुणिक अवस्था विशेष के कारण द्रवीभूत हो, कृपासिन्धु सकल जीववत्सल, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, परमानन्द चिन्मूर्ति, अमृतमूर्ति, षडैश्वर्यसम्पन्न, सर्वेश्वर, भगवान् वासुदेव वेदों के भी सार-सार तत्त्व सर्वोपनिषदिक् गीतोपनिषद् में अर्जुन को एवं भक्ति महासागर शास्त्र सम्राट् श्रीमद्भागवत् में उद्धव को निमित्त बनाकर जीवों के स्वाभाविक आत्यन्तिक सुख-शान्ति के प्राप्तिरूप कल्याण का विचार करते हुए इस अपने गुह्यतम उपदेश में ऊर्ध्वबाहु हो, निर्भय निश्चिन्त होकर एकमात्र अपनी शरणापत्ति के लिये सुस्पष्ट वेदान्त की अन्तिम घोषणा करते हुये,

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"
"मामेकमेवशरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्"
याहि सर्वात्मभावेन मया स्याह्यकुतोभयः ॥"

पुण्यात्मा श्रद्धालु भावुक शरणागतों के एकमात्र आश्रयभूत अपनी अमृतमयी दिव्यवाणी के द्वारा सप्रेम आवाहन कर रहे हैं कि ऐ दुःखस्वरूप संसार समुद्र में डूबने वाले जन्म-मरण जराव्याधि आदि महामगरमच्छों से त्रस्त, दुःख अशान्ति से ग्रस्त मेरे नित्यांश कल्याणकामी जीवो! मेरे पुत्रो! मेरे अंशो! मेरी गोदी के बच्चो! मेरी इस सर्वजगद्विमोहिनी, अजेया, वैष्णवी दुर्लंघ्य महामोहमयी माया से मुक्त होने एवं आत्यन्तिक कल्याण की हेतुभूता मुझ अमृतमूर्ति की महानिर्वाणप्रदायिनी, सुदुर्लभा, साध्या, पराप्रेमा अमृतस्वरूपा भक्ति की प्राप्ति के लिए मेरी सर्वाश्रया, सर्वकल्याणप्रदा, अभयप्रदा, भक्तिस्रवा, दिव्यमहावाणी का आश्रय ले, समस्तधर्मों का बिना सोचे-विचारे त्यागकर,

"स्थित्युत्पत्त्यत्ययकरं यो मां ज्ञात्वा प्रपद्यते।
अनुगृह्णाम्यहं तं वै संसारान्मोचयामि च ॥"
"सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम"

मुझे ही स्रष्टा, पाता, संहर्ता समझकर, अपना परमप्राप्य, परमगति, परमाधार, परमप्रिय, परमहितैषी, परमसुहृद्, परमआत्मीय तथा स्वामी, संरक्षक समझकर एकमात्र मुझ सर्वात्मा, सर्वेश्वर वासुदेव में आसक्तचित्त हो, मुझे ही सर्वत्र, सर्वदा, सर्वदेश, सर्वकाल, सर्ववस्तु एवं सर्वरूप में देखते-सुनते समझते हुए,

"एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेहनानास्ति किंचन"
"वासुदेवः सर्वम्"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वात्मरूपेण शीघ्रातिशीघ्र मुक्त एक, अद्वितीय सर्वात्मस्वरूप वासुदेव के शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सांसारिक समस्त दुःखों से मुक्त कर दूँगा। भला, इस कोटिमातृहितैषिणी, संसारानल से सन्तप्त जीवों को अत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति एवं अमोघ सर्वातिशय सुख-शान्ति प्रदान करने वाली अनुकम्पापूर्ण, महाअभयप्रदा, दिव्यमहावाणी का कौन नहीं समादर करेगा ? केवल आसुरी बुद्धि सम्पन्न

"अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥"
"पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्।"

मोहमयी प्रमादमदिरा पीकर उन्मत्त, बहिर्मुख, इन्द्रिय लोलुप, विषयरूप विषूचिका से आक्रान्त, पापात्मा, आत्महत्यारे मुझे सामान्य मानव समझकर, मेरी इस सर्वशोक-मोहविनाशिका, महाकल्याणप्रदायिनी, आत्यान्तिक सुख-शान्तिप्रदा दिव्य महावाणी का आदर नहीं करते, परन्तु जो मेरी महाअभय-प्रदा वाणी के समाश्रित हो विषस्वरूप विषयों का सर्वथा परित्यागकर, इन्द्रिय, मन को संसार से समेट लिया है।

"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते"
"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥"
"भक्तिप्रपत्तिभ्यां प्रसन्नः सन्नीश्वरः मोक्षं ददाति"
"प्रपन्नादन्येषां न दिशति मुकुन्दो निजपदम्"

ऐसे संसारभय से भीत शरणापन्न भक्त को सर्व ओर से, सर्वप्रकार से जन्म-मृत्युजरा-आदि-ग्रस्त शोकमोहात्मक द्वन्द्वात्मक भयङ्कर संसार के आत्यन्तिक दुःख से मुक्तकर, सर्वथा निर्भय, निश्चिन्तकर, अपनी परमानन्द-मयी गोदी में लेकर सुखी, कृतकृत्य, जीवन्मुक्त कर देता हूँ। मेरा शरणागत भक्त मेरी कृपादृष्टि से मेरी आज्ञावशवर्तिनी, सर्वविमोहिनी,

"वैष्णवीमाया देवैरपि सुदुस्त्यजा"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देवताओं के लिए भी दुरत्यय मेरी वैष्णवी माया को अनायास पारकर,

"मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्"

मेरे शाश्वत, अव्यय परमपद को प्राप्तकर,

"मां प्रपन्नोजन: कश्चिन्नभूयोऽर्हति शोचितुम्"

समस्त शोकमोह से सर्वथा मुक्त हो जाता है, क्योंकि,

"ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थेंतान् बिभर्म्यहम्"

मेरा यह व्रत है कि जो लोग मेरे लिए लौकिक और पारलौकिक समस्त धर्मों को छोड़ देते हैं उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ, परन्तु जो

"मामेव यो परित्यज्य वस्तुनोऽर्थेऽभिधावति ।
विवेकरहितोमूर्खो दुःखमेवाभिपद्यते ।
तस्य त्रैकालिकी हानिर्भवत्येवान्यथा न हि ॥"

मुझे छोड़कर सांसारिक किसी दूसरी वस्तु के लिए दौड़ता है उस विवेकशून्य एवं मूर्ख को केवल दु:ख की ही प्राप्ति होती है उसे तीनों कालों में हानि ही हानि होती है और कुछ नहीं मिलता । इसलिये

"साक्षान्मन्मथमन्मथः"

"कोटिकन्दर्पलावण्यो मदनाधिकसुन्दरः".

"लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम्"

"एकान्तधामयशसःश्रियऐश्वर्यस्य"

"सौभगर्द्धेः परं पदंभूषणभूषणांगम्"

शशांकश्च सगणोविस्मितोऽभवत्"

"जगत्त्रयंमोहयन्तम्"

साक्षात् कामदेव के भी मन को मथने वाले, करोड़ों कामदेव के लावण्य वाले मदनाधिक मनोहर, अनुपम लावण्यसार-सर्वस्व, ऐश्वर्य, शोभा एवं यश के एकान्त आश्रय, सौभाग्य एवं यश के परमधाम, भूषणों, को भी विभूषित करने वाले, तारा एवं नक्षत्र मण्डल सहित चन्द्र को चकित करने वाले, त्रिलोकी को मोहित करने वाले, अविकल गम्भीर रूप-रस के मधुसिन्धु

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होने के कारण मानव मन की रूपपिपासा के एकान्त सदाश्रय, लोकोत्तर भक्ति रस के सर्वतोमधुर आलम्बन, अनन्त असीम नव-नव आकर्षणमय सौन्दर्यघन विश्वविमोहन श्यामसुन्दर की

"सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिपः।
स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन ॥"

"अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।
सत्त्वस्यशुद्धि परमात्मभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥"

सर्वदा सर्वभावेन सर्वकल्याप्रदायिनी भक्ति करनी चाहिए, क्योंकि उनके पादपद्मों की स्मृति समस्त अमङ्गलों की नाशिका, शान्तिप्रदा, सत्त्वशुद्धि एवं वैराग्ययुक्त पराभक्ति प्रदान करने वाली है। इसलिये :—

"अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः।
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः॥"

इन गोकुलेश्वर घनसुन्दर भगवान् कृष्ण की विस्मृति कभी नहीं करनी चाहिये, अन्यथा

"त्रैकालिकी हानिर्जायते नात्र संशयः',

त्रैकालिकी हानि को प्राप्त करेगा। तात्पर्य यह है कि भगवत् शरणागति ही समस्त दुःखों से मुक्त होने का एकमात्र साधन है। अतः जीवों को नित्य सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिये,

"सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रय"
"सा तु कर्मज्ञान योगेभ्योऽप्यधिकतरा"
"सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीयः"
"भक्तिनिष्ठोभव ! भक्तिनिष्ठोभव"

निर्भय निश्चिन्त हो, अनेकविध उपद्रवों से पूर्ण अन्यान्य योग आदि कष्टप्रद हेय साधनों का सादर विना ननु-नच के प्रयत्नपूर्वक परित्यागकर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपर्युक्त गीतोक्त दिव्य भगवदीय महावाणी के आश्रित हो, सर्वात्मा, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्द सारसर्वस्व, रसस्वरूप प्रेममूर्ति रसराजरासेश्वर की मधुमयी, रसमयी, चिन्मयी, आनन्दमयी, परमप्रेमा अमृतस्वरूपा भक्ति ही करनी चाहिये। दिव्यातिदिव्या पराप्रेमा श्री भक्तिमहादेवी की,

"क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृतसुदुर्लभा।
सान्द्रानन्दविशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा ॥"

(१) क्लेशों का नाश करना, (२) शुभदातृत्व, (३) मोक्ष में लघुत्व बुद्धि, (४) सुदुर्लभता, (५) सान्द्रानन्दविशेषरूपता, (६) श्रीकृष्ण को भी आकर्षित करना,—ये छः अद्भुत विशेषतायें हैं, यानी जिस व्यक्ति के हृदय में श्रीभक्ति महारानी विराजती हैं उसमें उपर्युक्त छः विशेषतायें अवश्यमेव आ जाती हैं।

(१) श्री भक्ति महादेवी की प्रथम विशेषता है—क्लेशों को दूर करना।

"अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः"

इस सूत्रानुसार अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये अविद्या आदि पांचों ही जीवमात्र को संसार-चक्र में घुमाने वाले महादुःख-दायक हैं, इन्हीं के द्वारा सम्पूर्ण विश्व अत्यन्त पीड़ित हो रहा है और निरंतर उन्हीं में फँसता चला जा रहा है। इन पञ्चक्लेशों को नष्ट करना भक्तिदेवी का स्वभाव है।

अथवा

"पुरुषस्यकर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादि लक्षणश्चित्तधर्मः क्लेशरूपत्वाद्बन्धो भवति"

पुरुष के कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख-दुःख आदि क्लेशरूप चित्त के धर्म भी श्री भक्तिमहादेवी की कृपा से सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। अथवा, अनन्य भक्ति के द्वारा भक्त जब अपने प्रेमास्पद प्रियतम को ही सर्वत्र देखता-सुनता, समझता हुआ, उसी से रति, प्रीति, क्रीड़ा-विनोद करता हुआ तन्मयता, तद्रूपता, तन्निष्ठता को प्राप्तकर लोकातीत हो जाता, उस अवस्था में मायाजनित कष्ट उस तक पहुंच ही कैसे सकते हैं? और वह सांसारिक दुःखों का भोगायतन कैसे हो सकता है? क्योंकि,

"भक्तवत्सलः स्वयमेव सर्वेभ्योमोक्षविघ्नेभ्यो भक्तिनिष्ठान्सर्वान्परिपालयति"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"अहं भक्तातिक्लेशश्चत्तेषां रक्षणहेतवे"

"भक्तसंगे भ्रमत्येव छायेव सततं हरिः"

भक्तवत्सल परमात्मा स्वयं भक्त के समस्त विघ्नों के नाशार्थ एवं रक्षार्थ उसके पीछे-पीछे छाया की भाँति घूमते रहते हैं।

"न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्"

"अनर्थोपशमं साक्षाद् भक्तियोगमधोक्षजे"

"हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्"

जिसकी सन्निधि में सर्वअशुभनाशक, सर्वअनर्थशामक, सर्वविपद्विमोचक, सर्वशक्तिमान् भगवान् वासुदेव नित्य-निरन्तर निवास करते हैं, वह सांसारिक महान् से भी महान् कष्टों को,

"मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि"

उनकी कृपा से अनायास सुखपूर्वक पार कर जाता है, यहां तक कि,

"न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वासुरोऽपि वा।
भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शो न प्रभुर्भवेत्॥"

अनर्थ उपस्थित करने वाले प्रेत, पिशाच, राक्षस एवं असुर भी भक्तियुक्त पुरुष को तनिक भी स्पर्श करने में समर्थ नहीं हो सकते। अतः जिसके हृदय में,

"भक्तेषु गोविन्दस्वरूपकर्त्री प्रेमैकधर्त्रीभवरोगहन्त्री"

"नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते"

सहस्रों जन्मों के पुण्यों से प्राप्य, भक्तों को भगवान् का स्वरूप प्रदान करने वाली, अनन्य प्रेम का संपादन करने वाली एवं भवरोग को निर्मूल करने वाली भक्तिमहादेवी विराजमान हैं उसके,

"सर्वेबन्धा प्रविनश्यन्ति"

"सद्वृत्तमिव सर्वेदेवास्तं सेवन्ते"

"महाश्रेयांसि च सेवन्ते"

"भक्त्यासाध्यं न किञ्चिदस्ति"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्पूर्ण बन्धन पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। जैसे लोग सदाचारी की सेवा करते हैं वैसे ही समस्त देवता उसकी सेवा करते हैं, महाश्रेय भी उसकी सेवा करते हैं, भक्ति से कुछ भी असाध्य नहीं है। भला, ऐसी अवस्था में क्लेशों—दुःखों का प्रश्न ही क्या? वह तो भक्तवत्सल भगवान् की कृपा से उनकी गोदी में निर्भय, निश्चिन्त हो पैर फैलाकर सोता है।

(२) भक्ति महादेवी की दूसरी विशेषता है—शुभदातृत्व। शुभ का सामान्य अर्थ सुख है। भक्ति सम्पूर्ण सुखों की खान है। यह भी निश्चित ध्रुव सिद्धान्त है कि भक्ति के बिना शाश्वत सुखोपलब्धि हो ही नहीं सकती।

"त्रैलोक्ये भक्तिसदृशः पन्था नास्ति सुखावहः"

"हरिभक्तिः परानृणां कामधेनूपमा स्मृताः।
तस्यां सत्यां पिबन्त्यज्ञाः संसारगरलं ह्यहो॥"

यही आश्चर्य है कि त्रिलोकी में कामधेनु के सदृश समस्त सुखों को प्रदान करने वाली भक्ति के रहते हुए लोग संसाररूपी विष का पान करते हैं। अथवा, शुभ का अर्थ है कल्याण। यानी भक्ति समस्त कल्याण को प्रदान करने वाली है। भगवान् स्वयं कहते हैं कि :—

"यत्कर्मभिर्यत् तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत्।
योगेनदानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि।
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा॥"

कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म तथा तीर्थयात्रा, व्रत आदि कल्याणप्राप्ति के साधनों से जो कुछ प्राप्त होता है, मेरा भक्त भक्तियोग के द्वारा अनायास ही सब प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की अनुरामा भक्ति से,

"धर्मार्थकाममोक्षार्थैरेष एवाभिपद्यते"

धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि हो जाती है।

"यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना।
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः॥"

जिस पुरुष की भगवान् में निष्काम भक्ति है उसके हृदय में समस्त देवता धर्म, ज्ञान आदि सम्पूर्ण सद्गुणों के सहित निवास करते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"भक्तिं लब्धवतः साधो किमन्यदवशिष्यते"
"भक्त्या सर्वसिद्धयः सिध्यन्ति"
"मदुपासनया सर्वमंगलानि भवन्ति"
"मदुपासनया सर्वं जयति"
"मदुपासकः सर्ववन्द्यो भवति"
"मदीयोपासकस्यासाध्यं न किंचिदस्ति"

भक्ति द्वारा समस्त सिद्धियों एवं मंगलों—कल्याणों की प्राप्ति होती है, भक्त भक्ति द्वारा सब पर विजय प्राप्त करता एवं सर्ववन्द्य होता तथा उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं होता। इस प्रकार श्रीभक्तिमहादेवी समस्त कल्याण को प्रदान करने वाली है।

(३) भोग तथा मोक्ष में तुच्छत्व बुद्धि करना श्री भक्तिमहादेवी की तीसरी विशेषता है, क्योंकि भुक्ति तथा मुक्ति तो भक्ति की दासियां हैं। नारदपाञ्चरात्र में कहा गया है :—

"हरिभक्तिमहादेव्याः सर्वा मुक्त्यादिसिद्धयः।
भुक्तयश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिकावदनुव्रताः॥"

सम्पूर्ण अद्भुत भुक्तियां (भोग) तथा मुक्ति आदिक सिद्धियां हरिभक्तिमहादेवी की दासी की तरह सेवा में पीछे-पीछे लगी रहती हैं।

श्री भद्भागवत महात्म्य में भी श्री नारद जी ने कहा है :—

"मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ"

हे भक्ति! श्री भगवान् ने तुम्हें दासी रूप में मुक्ति तथा पुत्ररूप में ज्ञान-वैराग्य दिये हैं इसीलिए विवेकी महापुरुष मुक्ति का भी तिरस्कार करके भक्ति पर ही मुग्ध रहते हैं क्योंकि,

"यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा।
विलुटतिचरणाग्रे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः॥"

जिसकी मुकुन्द के चरणों में परमानन्दरूपा भक्ति होती है मोक्षसाम्राज्यश्री उसके चरणों पर लोटती है। इसलिए निष्काम भक्त,

"सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥"

दिये जाने पर भी सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्यमोक्ष तक भी नहीं स्वीकार करते। भगवान् श्रीकृष्ण भी यही कहते हैं कि :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत ॥"

"न किंचित् साधवो धीरा भक्ताः ह्येकान्तिनोमम ।
वाञ्छन्त्यपि मयादत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥"

मेरा शरणागत ऐकान्तिक धैर्यवान् भक्त मेरे द्वारा दिये जाने पर भी मुझे छोड़कर न ब्रह्मा का पद चाहता है न इन्द्र का। न सार्वभौम सम्राट् बनना चाहता है और न रसातल का ही स्वामी होना चाहता है तथा योग की बड़ी-बड़ी सिद्धियां एवं मोक्ष तक की भी अभिलाषा नहीं करता। इस प्रकार भक्त उत्कृष्ट भोगप्रद पदों एवं मोक्ष से भी निःस्पृह—उदासीन रहता है, क्योंकि भुक्ति-मुक्ति की कामना भगवद्भक्ति में बाधक होती है। इसलिये,

"भुक्तिमुक्ति स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते ।
तावत् भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत् ॥"

जब तक यज्ञादि विशेष पुण्यकर्मों से प्राप्त होने वाले भोग एवं ज्ञान से प्राप्त होने वाले मोक्ष की कामना रूपी पिशाचिनी हृदय में बैठी है तब तक दिव्य भक्ति सुख का अभ्युदय संभव नहीं। तथा,

"यस्यभक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे ।
विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खाकोदकैः ॥"

जो मोक्ष के स्वामी भगवान् श्री हरि की भक्ति करता है वह तो अमृत के समुद्र में क्रीडा करता है। क्षुद्र गड्ढे में भरे हुये मामूली गंदे जल के समान किसी भी भोग या स्वर्ग आदि से उसका मन कभी चलायमान नहीं होता। इसीलिये,

"न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति"

आत्मस्वरूप भगवान् में रमण करने वाला महापुरुष कभी भी विषय रूप मृगतृष्णा में रमण नहीं करता। इस प्रकार भक्ति महादेवी के प्रसाद से भक्त भुक्ति-मुक्ति को हेय समझता हुआ उनकी स्पृहा से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

(४) भक्ति महादेवी की चतुर्थ विशेषता है—दुर्लभता।

इसके लिये नारद पाञ्चरात्र में कहा है कि:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"ज्ञानतः सुलभामुक्तिर्भुक्तिर्यज्ञादिपुण्यतः ।
सेयं साधन साहस्रैर्हरि भक्तिःसुदुर्लभा ॥"

ज्ञान के द्वारा मुक्ति सुलभ है और यज्ञादि पुण्यों से भोगों की प्राप्ति भी सुलभ है, परन्तु इस हरिभक्ति का तो हजारों साधनानुष्ठानों से भी प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है।

श्री भगवान् भी,

"मुक्ति ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम्"

भजन करने वालों को मुक्ति तो दे देते हैं परन्तु भक्ति नहीं। इससे भी भक्ति की सुदुर्लभता स्पष्ट ही है। अथवा,

"श्रेष्ठा पञ्चविधामुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी ।
ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि ।
अमृतात् सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम् ॥"

पांच प्रकार की श्रेष्ठ मुक्तियों में हरिभक्ति ही श्रेष्ठ एवं गुरुतर है। ब्रह्मत्व, देवत्व, अमरत्व तथा अमृतत्वप्राप्ति एवं सिद्धिलाभ—इन सभी से श्रीहरि का दासत्व—भक्ति सुदुर्लभ है। अथवा,

"जन्मान्तरसहस्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः ।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णेभक्तिः प्रजायते ॥"

सहस्रों जन्मों के तप, ज्ञान, समाधि आदि साधनों से क्षीणकल्मष, विशुद्धान्तःकरण किसी विरले महापुरुष में ही कृष्णभक्ति उत्पन्न होती है। इसलिए भी भक्ति की सुदुर्लभता सुप्रसिद्ध ही है।

(५) श्री भक्तिमहादेवी की पांचवीं विशेषता है—सान्द्रानन्दविशेषरूपता। यानी यह प्रेमाभक्ति घनीभूत आनन्दस्वरूपा है।

"समाधिसुखस्येव भक्तिसुखस्यापि स्वतन्त्र पुरुषार्थत्वात् ।
भक्तियोगः पुरुषार्थः परमानन्दस्वरूपत्वादिति निर्विवादम् ॥"

समाधिसुख के सदृश भक्ति सुख भी परमानन्दस्वरूप होने से स्वतन्त्र पुरुषार्थ है। भक्ति स्वयं लोकोत्तर सर्वतोमधुर विलक्षण आनन्द है। भक्तिरस समस्तरसों का मधुरनिर्यास एवं समस्त सौन्दर्यों का सौन्दर्य है। इसके दिव्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वाद के सम्मुख लोक-परलोक का कोई भी आनन्द नहीं ठहरता। इसके विषय में भक्तिरसामृतसिन्धु में कहा गया है कि :—

"ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्धगुणीकृतः।
नैति भक्तिसुखाम्भोधेः परमाणु तुलामपि ॥"

यदि ब्रह्मानन्द सुख को परार्ध संख्या से गुणा किया जाय, तो भी वह सुख भक्तिसुधासिन्धु के एक परमाणु की भी समता नहीं कर सकता। भला, जिस

"एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति"

पूर्णानन्द परमात्मा के लेशमात्र आनन्द से समस्त ब्रह्माण्ड आनन्दान्वित हो रहा है, वह पूर्णानन्द परमात्मा ही,

"भक्तिवशः पुरुषः"

जिस भक्ति के वश में है उस भक्ति के आनन्द की इयत्ता ही क्या की जा सकती है? अतः भक्ति स्वयं परमानन्दस्वरूप ही है। भगवान् नारद ने भी,

"शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च"

इस सूत्र में भक्ति को परमानन्दस्वरूप कहा है।

"क्रियमाणेऽपि यत्रास्ति परमानन्दसम्भृतिः।
को न सेवेत तं धर्मं भक्तिमान् भक्तिलक्षणम् ॥"

जिसका साधन करते समय भी परमानन्द की प्राप्ति होती रहती है उस भक्तिरूप धर्म का सेवन कौन बुद्धिमान् पुरुष नहीं करेगा?

(६) श्री भक्ति महादेवी की छठीं विशेषता है— 'श्रीकृष्णाकर्षिणी'। यानी भक्ति परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण को भी अपनी मधुरिमा से आकृष्ट करने वाली है। इसके सम्बन्ध में भगवान् उद्धव जी से कहते हैं कि:—

"न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथाभक्तिर्ममोर्जिता ॥"

"भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धया"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हे उद्धव ! जिस प्रकार ऊर्जित— उत्कृष्ट परा प्रेमाभक्ति मुझे अपने वश में कर लेती है वैसे योग सांख्य, धर्म, स्वाध्याय, तप और त्याग नहीं कर सकते।' 'मैं तो केवल अनन्य श्रद्धा एवं अनन्य भक्ति से ही पकड़ में आता हूँ।

श्री मद्भागवत माहात्म्य में नारद जी भक्ति से कहते हैं कि:—

"त्वं तु भक्तिः प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका।
त्वयाऽऽहूतस्तु भगवान् याति नीच गृहेष्वपि ॥"

हे भक्ति ! तुम तो श्री भगवान् की प्राणाधिक प्रिया हो, तुम्हारे बुलाने पर तो भगवान् नीचों के घर भी चले जाते हैं। इसलिये

"न तपोभिर्नवेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा।
हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः" ॥"

भगवान् तप, वेदाध्ययन, ज्ञान एवं कर्म आदि किसी साधन से वश में नहीं किये जा सकते हैं, केवल भक्ति से ही वशीभूत होते हैं, इसमें गोपीजन प्रमाण हैं।

"श्रीकृष्णः परमानन्दः परिपूर्णतमः प्रभुः"
"कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्"
"भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः"

भक्ति से तो साक्षात् परमानन्दस्वरूप परिपूर्णतम ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र सामने उपस्थित हो जाते हैं। उन्हीं भक्ति महादेवी के प्रबल प्रेमप्रताप, महासामर्थ्य एवं महाविलास के अत्यन्त वशीभूत हो,

"भक्तप्रियं च भक्तेशं भक्तानुग्रहविग्रहम्"
"साधूनामप्रमत्तानां भक्तानां भक्तवत्सलः।
उपकर्ता निराकारस्तदाकारेण जायते ॥"
"भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः"
भक्तानां हितायैव प्रादुर्भावः कृतो मया"

भक्तप्रिय, भक्तप्रभु एवं भक्त पर अनुग्रह करने वाले भक्तवत्सल भगवान् भक्तों के हितार्थ निर्गुण, निराकार होने पर भी कोटिकन्दर्पकमनीय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सौन्दर्यसारस्वरूप दिव्य सगुण सविशेषविग्रहरूप धारण करके भक्तों की दृष्टि के विषय बनते हैं तथा उन भगवदात्मा भक्तों के वशीभूत हो उनकी आज्ञाओं का पालन करते, संकेत पर नाचते, तथा उनकी समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करते। भगवान् की ऐसी प्रतिज्ञा ही है कि मैं वेदान्तवेद्य सर्वशक्तिमान् विश्वम्भर परमेश्वर अपने सर्वतन्त्रस्वतन्त्रत्व एवं सर्वशक्तिमत्व को भूलकर अहर्निश उन अकिंचन, शान्त, दान्त, निःस्पृह, निरपेक्ष, निर्मम, निरहम्, निर्वैर, सर्वभूतात्मा, समदर्शी,

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥"
"तेषां रक्षणहेतवे"
"अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥

अनन्योपासक सर्वत्यागी प्रियतम भक्त के पीछे-पीछे उसके योगक्षेम का वहन करने के लिये तथा मोक्ष के समस्त विघ्नों-उपद्रवों से रक्षा करने के लिये एवं उसके पावन चरणरज की अभिलाषा से नित्य-निरन्तर घूमा करता हूँ, क्योंकि।

"अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इवद्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥
ये दारागार पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥
मयिनिर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥"

मैं सर्वथा भक्तों के अधीन हूँ और अस्वतन्त्र की तरह हूँ। मेरे साधु-हृदय भक्तों ने मेरे हृदय को अपने हाथ में कर रक्खा है, मैं उन भक्तों का सदा ही प्यारा हूँ। जो मेरे भक्त अपने स्त्री, पुत्र, घर, कुटुम्ब, प्राण, धन, इहलोक, एवं परलोक—सबको छोड़कर केवल मेरी शरण में आ गये हैं, भला, उन भक्तों को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ? जिस प्रकार सती स्त्री अपने पातिव्रत्य से सदाचारी पति को अपने वश में कर लेती है वैसे ही अपने हृदय को मुझ में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमबन्धन से बांध रखने वाले वे समदर्शी साधु पुरुष भक्ति के द्वारा मुझे अपने वश में कर लेते हैं। इसलिए,

"न हि भक्तात्परः प्रेम्णा भक्ताश्च सर्वतः प्रियः"

"भक्तात्प्रियो न कश्चन"

मेरा भक्त ही मुझे सर्वप्रकार से प्रिय है, भक्त से प्रिय मेरा कोई भी नहीं है। अरे भाई, मैं कहां तक कहूँ,

"पराभक्तान्न मे प्राणा न च लक्ष्मीर्नशङ्करः।
न भारती न च ब्रह्मा न दुर्गा न गणेश्वरः॥
न ब्राह्मण न वेदाश्च न वेदजननीपरा।
न गोपी न च गोपाला न राधा प्राणतः प्रियाः॥
इत्येवं कथितं सर्वं सत्यं सारं च वास्तवम्।
न प्रशंसापरं तेषां ते च प्राणाधिकाः प्रियाः॥"

मेरे भक्तों से श्रेष्ठ न तो मेरा प्राण है और न लक्ष्मी, न शंकर, न भारती, न ब्रह्मा, न दुर्गा, न गणेश्वर, न ब्राह्मण, न वेद, न वेदों की माता सावित्री, न गोपी, न गोपाल, एवं न तो प्राणों से प्रिय राधा ही हैं। यह मैं भक्तों के प्रति जो कुछ कह रहा हूँ वह सब सत्य, सार एवं वास्तविक है। यह केवल उनकी स्तुति मात्र नहीं है सचमुच वे मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, क्योंकि,

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते"

के सिद्धान्तानुसार,

"पुत्रान्पौत्रान्कलत्रांश्च राज्यं लक्ष्मी विहाय च।
ध्यायन्ते सततं ये मां को मे तेभ्यः परः प्रियः॥"

"अहं प्राणश्च भक्तानां भक्ताः प्राणा ममापि च।
ध्यायन्ति ये च मां नित्यं तां स्मरामि दिवानिशम्॥"

जो प्राणस्वरूप प्रियतम भक्त स्त्री, पुत्र, पौत्र, राज्य, लक्ष्मी आदि सर्वस्व का त्याग कर नित्य निरन्तर मेरा ही ध्यान करते हैं, मैं परमात्मा भी अपने सर्वस्व का त्याग कर उस भक्त का अहर्निश ध्यान करता हूँ उस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वस्व त्यागी भक्त से प्रिय इस संसार में मेरा कोई भी प्रिय नहीं है। इसी कारण से,

"भक्ताधीनो दिवानिशम्"

भक्तों के वशीभूत होकर,

"न मे स्वास्थ्यं च वैकुण्ठे गोलोके राधिकान्तिके ।
यत्र तिष्ठन्ति भक्तास्ते तत्र तिष्ठाम्यहर्निशम् ॥"

वैकुण्ठ एवं गोलोक आदि निजधाम को भी छोड़कर अहर्निश उनके पास ही नित्य स्थित रहता हूं। सचमुच,

"सकल भुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या
निवसति हृदि तेषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ।
हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥"

जिनके हृदय में एकमात्र श्री हरि की भक्ति का निवास है, वे त्रिलोकी में अत्यन्त निर्धन होने पर भी परम धन्य हैं क्योंकि इस भक्ति की डोरी से बंधकर तो साक्षात् भगवान् भी अपना परमधाम छोड़कर उनके हृदय में आकर विराजते हैं। इसीलिये भक्ति के दिव्य माधुर्य एवं सौरस्य आदि पर मुग्ध होकर,

"अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ।
वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादिनीम् ॥"

बुद्धिमान् लोग परम आनन्द के साथ नित्य-निरन्तर भगवान् वासुदेव की आत्मप्रसादिनी भक्ति किया करते हैं।

इसीलिये उपर्युक्त षड्गुणवैशिष्ट्य परम प्रेमा अमृतस्वरूपा भक्ति के अनन्त माधुर्य एवं अनन्त दिव्यत्व को विषय कर ब्रह्मात्मैक्यविज्ञानानुभव-सम्पन्न, अनादि अविद्या जन्य चिदचिद्ग्रन्थिशून्य, अहं-मम एवं रागद्वेषा-त्मक समस्त वासनाओं, कामनाओं, एषणाओं, संशयों तथा अन्यान्य जन्ममृत्युप्रदायक षडूर्मियों एवं षड्भावविकारों से शून्य, निर्भय, निश्चिन्त, निर्द्वन्द्व, निःसंदिग्धस्वरूप स्वतःसिद्ध, नित्योदित, स्वयंप्रकाश, सर्वदेशकाल-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वस्तु में अनुस्यूत, सर्वभूतप्राणियों के स्वरूपभूत आत्मा—सर्वात्मत्व को प्राप्त अपने अजत्व, अजरत्व, अमरत्व, आप्तकामत्व, पूर्णकामत्व में स्थित कृतकृत्य, ज्ञातज्ञेय, महाज्ञानी, महानिष्कामी, जीवन्मुक्त, आत्माराम अजशिवशुक-सनकादि ब्रह्मविद्वरिष्ठ सिद्धेन्द्र, योगीन्द्र, मुनीन्द्र भी, अपने परमानन्दस्वरूप सुधासिन्धु के एक परमाणु से भी ब्रह्मानन्द को तिरस्कृत करने वाली दिव्याति-दिव्या, घनीभूत आनन्दस्वरूपा, कृष्णाकर्षिणी, परमस्वतन्त्रा, सुदुर्लभा, वरिष्ठा, परमरसमयी, परममधुमयी, परम अमृतमयी परमानन्दमयी भक्ति पर मुग्ध रहते हैं तथा समाधिजन्य ब्रह्मसुख का भी परित्याग कर मधुपवत् अतृप्त हो, इसकी दिव्य आश्चर्यमयी मधुरिमा का पान करते रहते हैं। कहा भी है कि:—

"आत्मारामाश्च मुनयोः निर्ग्रन्थाप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥"

जो आत्माराम और जीवन्मुक्त हैं वे भी श्री हरि की अहैतुकी भक्ति किया करते हैं, क्योंकि श्री हरि के गुण ही ऐसे मनोमुग्धकारी एवं मधुर हैं। तात्पर्य यह है कि प्रथम कोई भक्त भगवत्स्वरूप अन्य भक्तों के संग से भगवान् की अविचल भक्ति प्राप्त करता है जिसके द्वारा वह ईश्वर के सगुण रूप का साक्षात्कार करता है तदनन्तर उनकी कृपा से निर्विशेष ब्रह्म को प्राप्त होता है, किन्तु इस प्रकार ब्रह्मतत्त्व में परिनिष्ठित हो जाने पर भी वह स्वभावतः विवश-सा होकर ज्ञान के निर्विशेष धरातल से दिव्य लीला के धरातल पर उतर आता है वहां भगवद्भक्ति के लोकोत्तर सर्वतोमधुर मनोमोहक दिव्य माधुर्यरस का आस्वादन करने के लिए। इसलिये ब्रह्मज्ञानी ही पराभक्ति का सर्वश्रेष्ठ अधिकारी है। इसीलिए स्वयं भगवान्

"तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥"

नित्य अपने में एकीभाव से स्थित, अनन्य प्रेमाभक्ति से युक्त सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी भक्त को अपना सबसे अधिक प्रीति पात्र मानते हैं।

इसी प्रकार कूर्म पुराण में भी कहते हैं कि:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतमो मम ।
यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा ॥"

सभी भक्तों में वह भक्त मुझे सर्वाधिक प्रिय है जो ज्ञान के द्वारा नित्य मेरी आराधना करता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्मज्ञानी ही सर्वश्रेष्ठ भक्त है और वही ऐसा भक्त हो सकता है। यही कारण है कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने सगुण उपासकों को सर्वोच्च स्तर पर ले जाने के लिए,

"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥"
"ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना"

आत्मज्ञान प्रदान करना आवश्यक समझते हैं। भगवद्भक्ति से प्राप्त ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। भक्ति के अभाव में ज्ञान का कोई महत्व नहीं। त्रिपुर सुन्दरी रहस्य के ज्ञान काण्ड में कहा गया है कि:—

"यत्सुभक्तैरतिशयप्रीत्या कैतववर्जनात् ।
स्वभावस्य स्वरसतो ज्ञात्वापि स्वाद्वयं पदम् ।
विभेदभावमाहृत्य सेव्यतेऽत्यन्ततत्परैः ॥"

उत्तमभक्तगण प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परब्रह्म को जानकर अतिशय प्रीति से अभिसंधिविहीन होकर आहार्यज्ञान द्वारा भेदभाव की कल्पना करके अत्यन्त तत्परता से स्वभावतः भगवान् में स्वारसिकी भक्ति करते हैं। [बाधकालिक इच्छाजन्य ज्ञान आहार्य ज्ञान कहा जाता है]। उनके आहार्यज्ञान द्वारा भजनोपयोगी द्वैत को स्वीकार करने पर भी पारमार्थिक अद्वैत सिद्धान्त ज्यों का त्यों बना रहता है उसमें लेशमात्र भी अन्तर नहीं पड़ता। कहा भी है कि:—

"पारमार्थिकमद्वैतं द्वैतं भजनहेतवे ।
तादृशी यदि भक्तिः स्यात्सा तु मुक्तिशताधिका ॥
द्वैतं मोहाय बोधात्प्राक् जाते बोधे मनीषया ।
भक्त्यर्थं भावितं द्वैतमद्वैतादपिसुन्दरम् ॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पारमार्थिक अद्वैतज्ञान होने पर भी यदि भजनोपयोगी द्वैत मानकर भगवान् में भक्ति की जाती है तो ऐसी भक्ति सैकड़ों मुक्तियों से भी कहीं बढ़कर है। ब्रह्मात्मैक्य विज्ञानानुभूति के पूर्व द्वैतबन्धन का कारण होता है, किन्तु ब्रह्मात्मैक्य विज्ञान के अनन्तर भेदमोह के निवृत्त हो जाने पर भक्ति के लिये भावितद्वैत अद्वैत से भी उत्तम—शोभनीय है। भला,

"सुप्रिया मधुराभक्तिः सा केनेह न काम्यते।
जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपमम्॥"

समरस आनन्दस्वरूप अद्वैततत्त्व में भजनोपयोगी अमृतोपम द्वैत को स्वीकार कर ऐसी सुप्रिया, सुमधुरा, नित्यानन्दप्रदा भक्ति की कौन विवेकी अभिलाषा नहीं करेगा? इसीलिए,

मुक्तानामपि भक्तिर्हि नित्यानन्दस्वरूपिणी"

ऐसी भक्ति जीवन्मुक्त आत्मारामी मुनीन्द्रों को भी नित्यानन्दस्वरूपिणी भासित होती है।

स्वतः भासमान स्वारसिक निरतिशय प्रेमस्वरूप ही भगवान् हैं। इसीलिये अवधूत शिरोमणि श्री शुकदेव जी ने

"कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥"

भगवान् श्रीकृष्ण को सबका अन्तरात्मा बतलाया है। इसीलिये ब्रह्मविद्वरिष्ठों के चित्त में सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण की हठात् स्फूर्ति होती है।

'सर्वं तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद"

इस श्रुति ने किसी को भी अनात्मा समझना अनर्थकारक माना है फिर भगवान् को अनात्मा समझने की तो बात ही क्या?

अपने से भिन्न किसी दूसरी वस्तु में स्वाभाविक स्वारसिक प्रेम संभव नहीं। इसलिए जब तक सर्वान्तर सर्वात्मस्वरूप भगवान् अपने से भिन्न रहते हैं तब तक उनमें भी स्वाभाविक स्वारसिक अहैतुक प्रेम नहीं होता, परन्तु ब्रह्मात्मैक्यविज्ञानान्तर जब भगवान् की, स्वरूपभूत प्रियतम आत्मा के रूप में स्फूर्ति होती है, तभी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति"
"ततः प्रियतमः स्वयम्"
"ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्"

उन आत्मस्वरूप प्रियतम भगवान् में स्वाभाविक स्वारसिक अकैतव—अहैतुक प्रेम होता है। जो अपना आत्मा अपना स्वरूप ही है उस प्रियतम से स्वाभाविक प्रेम क्यों नहीं होगा? इसलिए जीवन्मुक्तों को सर्वात्मदृष्टि से जो आत्यन्तिक आत्मरति प्राप्त होती है, वह कृष्णरति ही है, क्योंकि कृष्ण ही आत्मा हैं। इसलिए भगवान् कृष्ण के प्रति स्वाभाविक स्नेह अनिवार्य—अपरिहार्य है उसके लिए उसे पृथक् साधन की अपेक्षा नहीं होती। यदि किसी ज्ञानी में इस प्रकार का भगवान् के प्रति स्वारसिक प्रेम का आविर्भाव नहीं है तो इससे स्वतः सिद्ध है कि अभी उसको ब्रह्मात्मैक्यबोध हुआ ही नहीं, तभी तो वह उन्हें अपने से भिन्न समझकर अपने ज्ञान की क्षति की संभावना करता है। ऐसे ब्रह्मात्मैक्यबोधशून्य अपने को विमुक्त मानने वाले मिथ्या ज्ञानाभिमानियों में भगवत्कृपालभ्य स्वाभाविक स्वारसिकी महाआनन्दमयी, सुदुर्लभा पराप्रेमा अमृतस्वरूपा भक्ति का आविर्भाव नहीं होता। इसके अभाव में भगवान् की सर्वविश्वविमोहिनी वैष्णवी महामाया से अभिभूत हो, त्रिविध तापों से युक्त जन्म-मरण आदि अनन्त सांसारिक दुःखों का ही वह केवल अनुभव करता रहता है,

"कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः।
तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यान्ति च॥"

यह श्रुति भी ब्रह्मात्मैक्यबोधात्मक वृत्ति से रहित, केवल ब्रह्मवार्ता में कुशल लोगों के लिए आवागमन रूप दण्ड का ही विधान करती है।

"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥"
"अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यो न पश्यति।
आत्मारामः स योगीन्द्रो ब्रह्मीभूतो भवेदिह॥"
"ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनेक जन्मों में अर्जित पुण्यविशेष के प्रताप से समस्त चराचर विश्व को अद्वैत आत्मस्वरूप वासुदेव रूप से देखने वाले, शोक-मोहशून्य, सर्वात्मदर्शी, आत्माराम योगीन्द्र जीवन्मुक्त परमरसज्ञ ब्रह्मभूत मुनि ही ज्ञानोत्तर प्रेमलक्षणा पराभक्ति के विशेषाधिकारी हैं। अतः इस प्रकार की चिन्मयी अमृतस्वरूपा पराभक्ति का उनका स्वभाव ही होता है, वे इस स्वाभाविक रसस्वरूपा मधुमयी भक्ति के बिना रह ही नहीं सकते। जब ऐसे आत्माराम जीवन्मुक्त महापुरुष भी स्वभावतः भगवान् की अहैतुकी भक्ति करते हैं, तो फिर अन्यों के लिए कहना ही क्या ? इसलिए कल्याणकामियों को स्वाभाविक नित्य सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिए रहस्यात्मक भगवत्-शरणापत्ति स्वीकार कर,

" *भक्तिः श्रीकृष्णदेवस्य सर्वार्थानामनुत्तमा* "

समस्त पुरुषार्थों से अनुत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करनी चाहिए, क्योंकि

" *भक्तिप्रियो माधवः* "
" *हरिर्हि साध्यते भक्त्या* "
" *भक्तिरेव गरीयसी* "

भक्तिप्रिय माधव इस श्रेष्ठ भक्ति के द्वारा ही समाराधित होने पर शीघ्र सुगमतया प्राप्त होते हैं। यद्यपि

"*तपोयोगाद्यो मोक्षमार्गाः सन्ति तथापि च ।*
समीचीनस्तु मद्भक्तिमार्गः संसरतामिह ॥
'*मद्भक्तिः सुकरा मोक्षदायिनी* "

तप, योग आदि अनेकानेक मुक्तिप्रद मार्ग हैं तथापि आवागमन के चक्कर में पड़े हुए जीवों के लिये भक्तिमार्ग ही सुकर, मोक्षप्रद एवं समीचीन है। इसीलिये अखिल जगन्मण्डलमङ्गलविधाता, भक्ति के प्रधानाचार्य भगवन्मय देवर्षिनारद जी ने, सांसारिक त्रैतापरूप विषमज्वर से प्रपीड़ित देवताओं के लिए भी दुर्लंघ्य मायारूपिणी पिशाचनी से परिमर्दित, भयंकर असार संसार में डूबे हुए समस्त प्राणियों के आत्यान्तिक दुःखनिवृत्ति एवं लक्ष्यभूत नित्य सुखशान्ति की प्राप्ति के लिये,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

" भक्तियोग एव प्रशस्यते "
" भक्तियोगो निरुपद्रवः "
" अन्यस्मात्सौलभ्यं भक्तौ "
" भक्तियोगान्मुक्तिः "
" भक्तिर्मोक्षाय केवलम् "
" भक्तिरेकैव मुक्तिदा "
" केवला भक्तिर्हि ब्रह्मसायुज्यकारिणी"

सर्वग्राह्य, सर्वसुलभ, प्रशस्त, निरुपद्रव, मुक्तिप्रद एकमात्र भक्तियोग ही है ऐसा निश्चय कर लोक के आत्यन्तिक कल्याण सम्पादन के हेतुभूत दिव्य—चिन्मय उत्तम भक्तिशास्त्र की रचना कर समाज को अमूल्य दिव्यनिधि प्रदान की है जो "नारद-भक्ति-सूत्र" के नाम से सुप्रसिद्ध है।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राक्कथन

समस्त वेदशास्त्रमर्मज्ञ, सेतिहासपुराणविशेषज्ञ, अतीतानागतकल्प-वृत्तान्तवेत्ता, संगीतकलाविशारद, समस्त ब्रह्माण्डप्रत्यक्षदर्शी, विविधविद्या-विशारद, सकलसद्गुणाधार, ज्ञान वैराग्य एवं प्रेम के मूर्तिमान विग्रह, ज्ञान-वैराग्य को उज्जीवित करने वाले, प्रेमैकनिष्ठ, प्रेममूर्ति, भक्तिभास्कर भगवत्स्वरूप महामहिम देवर्षि नारद जी ने अतिविस्तृत, भक्तिमहाशास्त्र-सिन्धु का मन्थन करके बीजरूपेण परम रहस्यात्मक भक्ति के दिव्य महारत्न-रूप चौरासी सूत्रों की समन्वयात्मक अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना कर भक्ति के समस्त सिद्धान्तों को सूत्र में मणि की भांति पिरो दिया है तथा सूक्ष्म बीजरूप इन रहस्यपूर्ण सूत्रों में, गागर में सागर की भांति गुप्तरूप से दिव्य प्रेम, दिव्य अमृत, दिव्यरस, दिव्यमाधुर्य एवं दिव्य आनन्द की सृष्टि कर अत्यन्त ही चिन्मयता प्रदान की है। इन सूत्रों में गुप्तरूपेण निहित दिव्यत्व एवं चिन्मयत्व को कोई नारदवत् परम रसज्ञ भागवतोत्तम ही अनुभव कर सकता है। सचमुच नारद जी ने भक्तों के लिए भक्ति के इन चौरासी सूत्ररूप मणियों का एक अत्यन्त मनोहारी दिव्य हार बना दिया है।

प्रातः स्मरणीय भगवत्स्वरूप परमपूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज ने सर्वात्मा, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्ण की आन्तरिक दिव्य प्रेरणा विशेष से इन गुप्त दिव्यमाधुर्यरसपूर्ण सूत्रों की जैसी विद्वत्ता एवं दिव्य गहन अनुभूतियों से समन्वित "प्रेमदर्शिनी" नामक टीका के रूप में अनिवर्चनीय व्याख्या की है। यह दिव्यानुभूत अनिर्वचनीय व्याख्या केवल मूकास्वादनवत् अनुभवगम्य है, इसका निर्वचन शब्दों से नहीं हो सकता। इस प्रेमस्वरूपिणी अनुभवात्मिका टीका की विशेषता का मूल्याङ्कन भावुक पाठकगण मूक रूप से स्वमेव करेंगे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सचमुच, नारदवत् दिव्य महामादक भक्तिरस को पीकर छके हुए भगवान् के हृदयस्वरूप महाभागवत् ही इन भक्ति सूत्रों के यथार्थ स्वरूप को समझ सकते हैं और इसके अन्तस्थल में डूबकर वास्तविक अनुभूत व्याख्या भी कर सकते हैं।

जिस भगवत्स्वरूप दिव्य विभूति ने इस दिव्य ग्रन्थरत्न की रचना की है उसी ने इस ग्रन्थ पर प्राक्कथन के रूप में अपने विचारों को लिपिबद्ध करने का आदेश दिया। उस समय अपने क्षुद्र व्यक्तित्व पर दृष्टिपात करते हुए अपने को इस अत्यन्त महत्वपूर्ण गुरुतर कार्य के नितान्त अयोग्य समझकर मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो, अवाक्-सा रह गया, बुद्धि कुछ निर्णय न कर सकी कि कैसे क्या करूं ? क्योंकि इस अत्यन्त महत्वपूर्ण दिव्यानुभवसम्पन्न अलौकिक ग्रन्थरत्न के प्रति मेरे जैसे अनुभवशून्य तुच्छ व्यक्ति के लिये कुछ लिखना मानो सूर्य को दीपक दिखाने के ही सदृश है। फिर भी श्रीमुख से निःसृत सर्वथा पालनीय आदेश सादर शिरोधार्य कर लक्ष्यपूर्त्यर्थ मन ही मन उस महायोगी दिव्य विभूति की शरणापत्ति स्वीकार की तथा उन्हीं की व्यक्ताव्यक्त कृपालेश की प्रेरणाविशेष से इस अमूल्य ग्रन्थरत्न के प्रति दो-चार शब्दों में कुछ लिखने की अनधिकार चेष्टा कर रहा हूं।

भगवान् के निःश्वासरूप वेदों के चरमतत्त्वप्रतिपादक वेदान्त-वाक्यों के सार-सारभूत ब्रह्मस्वरूपा श्री मद्भगवद्गीता की उपनिषद्, वेद, शास्त्र, इतिहास पुराणादि ११८ ग्रन्थों के प्रमाणों से प्रमाणित लेखक की प्रवचनात्मिका "तत्त्वदर्शिनी" टीका सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वमान्य सिद्ध हुई है तथा सभी तत्त्वजिज्ञासुओं के लिये पथप्रदर्शक का कार्यसम्पादन करती हुई हृदय में विशेष आनन्द प्रदान कर रही है। जिस प्रकार लेखक ने प्रवचनात्मिका "तत्त्वदर्शिनी" टीका की स्वतन्त्र सानुभूत व्याख्या के द्वारा विद्वानों को अपने नामानुसार स्वतन्त्र आनन्द प्रदान किया है उसी प्रकार पद-पद पर दिव्य प्रेमामृत की धारावाहिक वृष्टि करने वाली, सर्वत्र दिव्य प्रेम की झांकी कराने वाली इस प्रेमस्वरूपिणी "प्रेमदर्शिनी" की विलक्षण अनुभूत टीका के द्वारा सभी भगवत्प्रेमियों को स्वतन्त्ररूपेण भगवत्कृपासाध्य अलभ्य भगवत्प्रेम का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिव्य स्वतन्त्र आनन्द प्रदान किया है जैसा कि अन्यत्र अनुपलब्ध है। यह भक्तों के लिये एक दिव्य महानिधि है।

जिस प्रकार लेखक [परमपूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज] ने सर्वान्तर्यामी सर्वस्वरूप आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की अनुकम्पा विशेष से समस्त वेदशास्त्र-इतिहासपुराण आदि धर्मग्रन्थों का तत्त्वतः विशेष ज्ञान प्राप्त कर, उन्हीं की लेशमात्र कृपा से सर्वसंकल्पों की सीमा, महात्माओं की विश्रान्तिभूमिरूप उस स्वरूपभूत स्वतःसिद्ध सर्वतन्त्र स्वतन्त्र ब्रह्म को,

"ददामि बुद्धियोगं तं येनमामुपयान्ति ते"

इस गीतोक्त दिव्य कथनानुसार, उन्हीं से प्रदत्त तत्त्वज्ञानरूप बुद्धियोग के द्वारा स्वात्मरूपेण स्वतन्त्रतया अनुभव कर स्वतन्त्रत्व को प्राप्त किया तथा उन्हीं की प्रेरणा विशेष से, उन्हीं के दिव्य प्रकाश में अगाध पाण्डित्यपूर्ण एवं सूक्ष्म, गहन, पुष्कल अनुभूतियों से समन्वित श्री मद्‌भगवद्‌गीता की अत्यन्त महत्वपूर्ण सर्वमान्य सर्वोत्कृष्ट अनुपमेय प्रवचनात्मिका "तत्त्वदर्शिनी" टीका लोक के समक्ष उपस्थित कर विद्वानों एवं कल्याणकामी तत्त्वजिज्ञासुओं को कर्म, भक्ति एवं ज्ञान का स्थलभेद से अधिकारानुसार यथोचित, निष्पक्ष सप्रमाण, सानुभूत व्याख्या के द्वारा निर्भ्रान्तमार्ग का प्रदर्शन किया है उसी प्रकार उसी परमप्रियतम प्रेमास्पद की अनुकम्पा एवं प्रेरणाविशेष से उन्हीं के प्रकाश में, उन्हीं के लिये भक्तिभास्कर प्रधानाचार्य भगवान् नारद द्वारा विरचित, श्रीमद्‌भागवत आदि समस्त भक्तिशास्त्रों के सार-सारभूत इन बीजस्वरूप चौरासी (८४) भक्तिसूत्रों की विशेष विद्वत्तापूर्ण एवं परा-प्रेमा अमृतस्वरूपा भक्ति के अगाध दिव्य अनुभूतियों से सम्पन्न सर्वप्रशंसनीय, सर्वोत्कृष्ट, अनुपमेय "प्रेमदर्शिनी" टीका लोक के समक्ष उपस्थित कर सभी भक्तिमार्गावलम्बियों के कल्याणार्थ सुस्पष्ट, सानुभूत, सर्वोत्तममार्ग का निष्पक्ष प्रदर्शन कर जैसा लोक का हितसम्पादन किया है उनके इस हितसम्पादन के ऋण से समाज कभी भी उऋण नहीं हो सकता। यह परम पूज्य पाद श्री स्वामी जी महाराज की लोकहितार्थ अलौकिक अनुपम अलभ्य देन है। लेखक की इस अनुपम, विलक्षण कृति का कभी भी मूल्याङ्कन नहीं किया जा सकता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस अनुभवात्मिका "प्रेमदर्शिनी" टीका में परमप्रियतम प्रेमास्पद के प्रति होने वाली सर्वाधिक प्रेम की निष्ठा विशेष के कारण दिव्य भगवद्रसावेश से सम्पन्न भगवत्कृपापात्र विशेषभक्तों में होने वाली दिव्य अनुभूतियों को भी पद-पद पर लोककल्याणार्थ विलक्षण ढंग से उड़ेलते हुये भावुकभक्तों की भक्ति निष्ठा की वृद्धि के लिए तथा अपने मार्ग पर श्रद्धाविशेष से सम्पन्न हो, नित्य-निरन्तर अग्रसर होने की विशेष प्रेरणा एवं अमोघ दिव्य दृष्टि प्रदान की है।

इस टीका में पराप्रेमा अमृतस्वरूपा भक्तिभागीरथी का प्रबल प्रवाह प्रवाहित किया गया है तथा प्रेमस्वरूप परमप्रियतम के दिव्य प्रेमाद्वैत का ही सर्वत्र पद-पद पर दिग्दर्शन कराने के कारण ही इसका "प्रेमदर्शिनी" नाम सर्वथा सार्थक ही है। आद्योपान्त सम्पूर्ण टीका में प्रेमदर्शन की विलक्षण शैली अपने ढंग की अनूठी एवं विशेष चित्ताकर्षक है। जो समाहितचित्त होकर इसका अध्ययन मनन करेंगे उनको ही इसमें सर्वत्र दिव्य प्रेम की झांकी प्राप्त हो सकेगी, अशान्तचित्त होकर पढ़ने वाले इसका रसास्वादन नहीं कर सकेंगे।

श्री मद्भगवद्गीता की "तत्त्वदर्शिनी" नामक टीका में कर्म, भक्ति एवं ज्ञान—इन तीनों सिद्धान्तों का बीच-बीच में निरूपण होने के कारण पाठक की चित्तवृत्ति में आद्योपान्त एकरसता का अनुभव नहीं हो पाता, परन्तु प्रेमामृत की वृष्टि करने वाली इस "प्रेमदर्शिनी" में "तत्त्वदर्शिनी" की अपेक्षा अधिक विशेषता यह है कि आद्योपान्त केवल अमृतस्वरूपा पराभक्ति की ही अनुभूत व्याख्या होने के कारण पाठक के दिव्यरसपान की शृंखला का विच्छेद नहीं होता, अपितु पद-पद पर दिव्य प्रेम ही प्रेम, दिव्य आनन्द ही आनन्द, दिव्य अमृत ही अमृत एवं दिव्य रस ही रस की धारावाहिक अजस्र वृष्टि होने के कारण पाठक अपनी सुधि-बुद्धि खोकर दिव्य भक्तिभाव में अवश्यमेव निमग्न हो जाया करेगा, तथा कुछ क्षण के लिये तन्मयता विशेष के कारण दिव्य प्रेमरस की झाँकी का भी अनुभव करता रहेगा। वस्तुतः "प्रेमदर्शिनी" की महिमा ठीक-ठीक वही पुरुष जान सकेगा, जो पूर्णरूपेण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसमें अवगाहन कर अपने इस दुर्लभ मानव जीवन को सफलीभूत बनाने की चेष्टा करेगा।

इसमें दिव्य भक्तिभागीरथी की धारा का प्रवाह निरन्तर अखण्डरूप से प्रवाहित होता रहे, बीच-बीच में विच्छिन्न न होने पावे और पाठक नित्य उस चिन्मयी भक्ति की अविकलधारा में सर्वदा नित्य अवगाहन करता रहे—इसके लिये बीच-बीच में,

"यमेवैषवृणुते तेन लभ्यः"
"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"
"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते"
"रसो वै सः"
"रसं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति"
"सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रय"
"भक्तियोगो निरुपद्रवः"
"सर्वं कृष्णमयं जगत्"
"सर्वं विष्णुमयं जगत्"
"आत्मारामाश्च मुनयो····· "

आदि इस प्रकार के उद्बोधक पदों का निर्देश किया गया है, जिससे पाठक के समक्ष परम प्रेमास्पद प्रियतम की दिव्य झांकी की अखण्ड अनुभूति होती रहे।

इस "प्रेमदर्शिनी" टीका में लेखक ने आदि से अन्त तक के समस्त सूत्रों की व्याख्या श्रुति आदि प्रमाणों के द्वारा प्रौढ़रूपेण अनुभव सम्पन्न मण्डन किया है। ८४ ग्रन्थों के प्रमाणों से प्रमाणित, भगवान् के वरदकर से प्रसादित, दिव्य अगाध अनुभूतियों से सम्पन्न यह "प्रेमदर्शिनी" टीका अपने स्वभाव की अनूठी ही है। ऐसी प्रमाणबहुल अनुभव सम्पन्न टीका अब तक नहीं देखी गई जो सभी के लिए आनन्दप्रद एवं बुद्धिगम्य हो सके।

जैसे— "नारदादेव दर्शनात्"

इस भक्तिशास्त्र के प्रधानाचार्य का स्वभाव है भगवद्दर्शन कराना, वैसे ही इस "प्रेमदर्शिनी" का स्वभाव है सर्वत्र प्रेम का दर्शन कराना, क्योंकि इस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

टीका में सर्वत्र प्रेम ही प्रेम की दिव्यवृष्टि की गई है। आद्योपान्त ठीक प्रकार से अध्ययन करने पर प्राप्त अनुभूति के अनुसार यह प्रेमामृत-भक्ति का दिव्यमहासागर है। इसमें डुबकी लगाने पर अधिकारानुसार सभी लोग दिव्य प्रेमरस का प्रसाद ग्रहण कर सकेंगे। मानो यह श्रीमद्भागवत एवं श्रीमद्भगवद्गीता आदि की भांति प्रसादग्रन्थ है, इसको स्पर्श करने वाला पुरुष लाभ से वञ्चित नहीं रह सकता, उसपर अवश्यमेव भगवान् एवं भक्तिमहादेवी की कृपा दृष्टि होगी, क्योंकि भगवदीय प्रेरणाविशेष एवं भक्तिमहादेवी श्री राधारानी के कृपा प्रसाद से इस अमूल्य दिव्यग्रन्थ रत्न की रचना हुई है।

लेखक के द्वारा किया हुआ "समर्पण" तो सचमुच साक्षात् समर्पण-विलीनीकरण है, जो देखते ही बनता है। भक्तिमहादेवी श्री राधारानी एवं परात्पर ब्रह्म सर्वात्मा एवं सर्वस्वरूप प्रेमास्पद प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को मानो साक्षात् समर्पण किया गया है। पाठक स्वयं पढ़कर इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। लेखक ने स्वयं समर्पित होकर ही "प्रेमदर्शिनी" के रूप में अपने शब्द पुष्पों को भगवान् के कर कमलों में समर्पित किया है। यह अत्यन्त हृदयग्राही एवं चुम्बकवत् आकृष्ट करने वाला दिव्य स्थल है।

इसी प्रकार प्रारम्भिक लेख में भी लेखक की दीनता, सरलता एवं दासता आदि का कितना ही हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक चित्रण है।

"प्रेमदर्शिनी" टीका के अन्त में लेखक द्वारा लिखित "भगवत्-शरणागति" के विषय में तो कहना ही क्या? यह शरणागति का रहस्य इतना मोहक एवं चित्ताकर्षक है कि कल्याणकामियों को भगवत्-शरणागति के लिए बेचैन—उत्कण्ठित कर देता है। यह दिव्य शरणागति रहस्य का स्थल पुष्कल गहन शास्त्रीय प्रमाणों से विशेष प्रमाणित होने के कारण किसी के लिए भी तर्क एवं संशय का विषय नहीं है अपितु पठनकाल में ही तत्क्षण श्रद्धा एवं विश्वास उत्पन्नकर निष्ठा सम्पन्न होने के लिए बलात् बाध्य कर देता है।

लेखक का यह अनुभव एवं कथन है कि—

"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणंव्रज"

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥"

"चतुर्मुखादीनां सर्वेषामपि विना विष्णुभक्त्या-
कल्पकोटिभिर्मोक्षो न विद्यते"

"अजेया वैष्णवी माया"

"एतां महामायां तरन्त्येव ये विष्णुमेव भजन्ति-
नान्ये तरन्ति कदाचन ।"

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः"

इन पदों के अनुसार केवल एकमात्र भगवत्-शरणागति से ही जीव इस वैष्णवी दुरत्या अजेया महामाया का अतिक्रमण कर सकता है, अन्यथा नहीं ।

इस "प्रेमदर्शिनी" की प्रत्येक सूत्र की टीका शैली भक्ति में तन्मय करने वाली है तथा लेखनी भी भक्ति की तन्मयता विशेष की अवस्था में ही चली है । सामान्य से सामान्य सूत्रों की भी व्याख्या अपने स्थान पर कुछ न कुछ विशेषताओं से उक्त है तो इन,

"अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः"

"सा त्वस्मिन्परमप्रेमरूपा"

"अमृतस्वरूपा च"

"यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति ... ...।"

"यत्प्राप्य न किञ्चिद् वाञ्छति.........।"

"यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति ... ...।"

"फलरूपत्वात्"

"कस्तरति कस्तरति ... ...।"

"प्रकाश्यते क्वापि पात्रे"

"तत्प्राप्य तदेवावलोकयति ... ...।"

"अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ"

"त्रिरूपभङ्गपूर्वकम् ... ...।"

"मोदन्ते पितरो ... ...।"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"सर्वदा सर्गभावेन निश्चिन्तिते··· ··· ···।"
"स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति··· ··· ···।"

विशेष सूत्रों की विलक्षणता के विषय में कहना ही क्या ? पाठक के लिए यह कोरी विद्वत्ता की वस्तु नहीं है, इसलिये विशेष समाहित बुद्धि एवं प्रेमाभक्तिसम्पन्न होने पर ही यह समझा जा सकता है, क्योंकि,

"आत्मारामाश्चमुनयो··· ···।"

लेखक का कथन है कि अविद्याग्रन्थिविहीन- जीवन्मुक्त आत्मारामी मुनि ही इसमें रमण कर सकते हैं। इसके लिए स्थल-स्थल पर बार-बार संकेत भी किया गया है कि यह केवल जीवन्मुक्त आत्माराम महात्माओं की सिद्धा स्वाभाविकी अहैतुकी भक्ति है, उन्हीं की बुद्धि की यह विशेष वस्तु है।

लेखक का यह कथन है कि "नाम" भगवान् का नित्य अवतार है। इस "नाम" रूप कल्पवृक्ष से ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—सभी पुरुषार्थों की सिद्धि होती है। "नाम-स्मरण का साधन पठित, अपठित, स्त्री, बालक, वृद्ध"—सबके लिये समान है। इसमें विद्या, बुद्धि, पात्रता, जाति, वर्ण, कुल, आश्रम तथा अन्य किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है। यह सर्वसाधारण के लिए समान रूप से अति सरल, सुगम साधन है। इस केवल "नाम" रूपी नौका का आश्रय लेकर पातकी-आपातकी सभी इस दुस्तर भयंकर संसार सागर को अनायास ही पार कर सकते हैं। इस नाम संकीर्तन में,

"न देशकाल नियमः शौचाशौचविनिर्णयः।
परं संकीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते॥"

देश, काल, तथा शौच-अशौच का कोई नियम भी नहीं है, जहां-तहां जिस किसी भी अवस्था में कीर्तन किया जा सकता है। कहां तक लिखा जाय, भगवन्नाम की महिमा अपार है। जो कोई,

"अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नरः।
स पापिष्ठो मनुष्याणां नरके याति स्फुटम्॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस भगवन्नाममहिमा को केवल अर्थवादमात्र मान बैठते हैं, वे नराधम हैं और नरक के भागी होते हैं। भगवन्नाम की अपूर्वमहिमा भगवान् स्वयं कहते हैं कि:—

"श्रद्धया हेलया नाम रटन्ति मम जन्तवः।
तेषां नाम सदा पार्थ वर्तते हृदये मम॥"

हे अर्जुन! श्रद्धा से अथवा अवज्ञा से भी जो लोग मेरा नाम रटते हैं उनका नाम सदा मेरे हृदय में बसा रहता है।

इस "प्रेमदर्शिनी" टीका में भगवन्नाम महिमा का प्रतिपादन

"लोकेऽपि भगवद्गुण श्रवणकीर्तनात्"

इस सूत्र में विशदरूप से किया गया है। नाम-निष्ठा की पुष्टि के लिए नाम-प्रेमियों को विशेषरूप से ध्यान देना चाहिए। भगवन्नाम के आश्रय से नामी की प्राप्ति स्वमेव हो जाती है, इसके लिए पृथक् से प्रयास नहीं करना पड़ता। कलियुग में इस भयंकर भवसागर से मुक्त होने के लिए प्रधान साधन भगवन्नाम संकीर्तन ही है।

श्रुति भगवती भी कहती हैं कि:—

"भगवत आदि पुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण-
निर्धूत कलिर्भवति। नातः परतरोपायो सर्ववेदेषु दृश्यते॥"

भगवान् आदि पुरुष नारायण के नाम-उच्चारणमात्र से कलि से मुक्त हो सकते हैं इससे श्रेष्ठ अन्य कोई उपाय चारों वेदों में नहीं है। अतः एकमत से, एक स्वर से नाम भगवान् के शरणापन्न होकर नामामृत का सदैव पान करते हुए इस देवदुर्लभ मानव शरीर को सार्थक बना लेना चाहिए।

मुमुक्षुओं के लिए आत्यन्तिक कल्याणार्थ, पतन के प्रधान हेतुभूत,

"किमत्र हेयम्। कनकं च कान्ता।"

कामिनी और काञ्चन—विषवत् त्याज्य हैं, क्योंकि कामिनी और काञ्चन ही संसार है, इन्हीं में आसक्त होकर जीव श्रेयमार्ग से सर्वथा वञ्चित हो, अपने वास्तविक स्वरूपभूत परमात्मा की विस्मृति के द्वारा अपने आप अपनी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हत्या कर रहा है। जब तक दोषदर्शन के द्वारा पूर्णतया सर्वश्रेयविघातक इन कामिमीकाञ्चन की आसक्ति नष्ट नहीं होगी तब तक कल्याण की कोई सम्भावना नहीं। इस "प्रेमदर्शिनी" टीका में लेखक ने,

"*स्त्री धन नास्तिक*········ ।"

इस सूत्र की व्याख्या में स्त्री एवं धन के दोषों का इतना सुस्पष्ट मार्मिक हृदयग्राही शास्त्रीय पुष्कल प्रमाणों से समन्वित चित्रण किया है कि पढ़ते ही बनता है। इतने प्रभावशाली संकलित प्रमाण एकत्रिक कहीं नहीं मिलते। वैराग्यवानों के लिए मानों अमृत ही है। इसलिए आत्यन्तिक कल्याणाभिलाषियों को अपने वैराग्य की वृद्धि एवं रक्षा के लिए बारम्बार इसका अध्ययन एवं मनन करना चाहिए।

लेखक की निरूपण शैली विलक्षण एवं अत्यन्त हृदयाकर्षक है। इस प्रेमदर्शिनी टीका में सर्वत्र स्वयं लेखक द्वारा अनुभूत घनीभूत आनन्दस्वरूपा पराभक्ति की भगवत्प्रेमामृतरसासिक्त दिव्यातिदिव्य महारसमयी, महामधुमयी, महाअमृतमयी, महाआनन्दमयी एवं महाचिन्मयी अनुभूतियों की विलक्षण ढंग से अनवरत धारावाहिक वृष्टि की गई है। मानो दिव्यप्रेमामृतरसासव को पीकर दिव्यप्रेमानन्दामृतरसार्णव में निमग्न अन्तःकरण को दिव्य प्रेम महाभाव समाधि अवस्था की दिव्योन्मादी अनुभूतियाँ स्वयं शब्दाकार होकर लेखबद्ध होती चली गई हैं, जिसको देखकर परमपूज्यपाद श्री स्वामीजी महाराज की महादिव्योन्मादी अवस्थाओं का दिव्यपरिचय प्राप्त होता है। यद्यपि इसका वास्तविक अनुभव तो ठीक इसी कोटि का कोई भगवत्कृपापात्र दिव्यप्रेममूर्ति, दिव्यप्रेमानन्दातिरेक के कारण, श्रुति प्रतिपादित सार्वभौम सम्राट् के आनन्द से लेकर क्रमशः शतगुण से प्राप्त होने वाले इन्द्र एवं ब्रह्मा के भी आनन्द को तुच्छ समझने वाला, प्रेम के दिव्यमहासाम्राज्य पर अभिषिक्त प्रेम का चक्रवर्ती सम्राट् सर्वलोकवन्द्य महाभाग्यवान् भगवत्स्वरूप भागवतोत्तम ही कर सकता है, अन्य तो अनुभव के अभाव में केवल अनुमान ही कर सकते हैं। फिर भी इन बीजस्वरूप भक्तिसूत्रों की अनुभूत व्याख्या शैली पर सभी भावुक पाठक बाध्य हैं चुम्बकवत् बलात् आकृष्ट होने के लिए, मुग्ध होने के लिए, तन्मय होने के लिए, तद्रूप होने के लिए, कुछ क्षण के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिए विषाक्त द्वन्द्वात्मक जगत् एवं अहं-मम को विस्मृत करने के लिए, दिव्य प्रेमरस की घूँटी पीकर शान्त होने के, सुखी होने के लिए, आह्लादित होने के लिये, आनन्दित होने के लिये, तृप्त होने के लिये, क्योंकि लेखक ने भी अपने को और समस्त जगत् को विस्मृत कर, प्रेमावेश में स्थित होकर ही दिव्यानुभूतियों के दिव्य उद्गारों का स्थल-स्थल पर दिव्य झांकी व्यक्त करते हुए लेख को दिव्य-चिन्मय बना दिया है।

लेखक का दिव्य रसानुभूतिसम्पन्न हृदय ही मानों लेख का दिव्य रूप धारण कर लिया है। इसी कारण इसमें विशेष दिव्य आकर्षण है, दिव्य माधुर्य है दिव्य रस है, दिव्य प्रेम है, दिव्य अमृत है, दिव्य आनन्द है, दिव्य सुख है, दिव्य शान्ति है, दिव्य तृप्ति है। यह तो मानों लेखक के दिव्य प्रसन्नान्तःकरण का दिव्य अनुभवरूप महाप्रसाद भगवद्भावभावित पुण्यात्माओं को दिव्य प्रेम की सर्वत्र सर्वरूप में झांकी की अनुभूति कराकर, प्रेमानन्दरस से पूर्ण कर तन्मय, तद्रूप, तन्निष्ठ होने के लिये ही भगवदीय प्रेरणाविशेष से दिव्य शब्दाकार होकर, यह प्रेमाद्वैत-प्रतिपादक दिव्यग्रन्थरत्न के रूप में अनायास उपलब्ध हो सका है। यह साध्या, अनिर्वचनीया, सुदुर्लभा, घनीभूतआनन्दस्वरूपा, पराप्रेमा, अमृतस्वरूपा भक्ति का आद्योपान्त दिव्यानुभूत दिव्य प्रेम का सर्वत्र दिग्दर्शन करानेवाला भक्ति महासागर का एक अद्वितीय महादिव्य ग्रन्थरत्न है इसका पाठक स्वयं ही भावभरित अन्तःकरण से अध्ययन-मनन करके मूकास्वादनवत् इसके अनिर्वचनीयत्व, दिव्यत्व एवं चिन्मयत्व का सानुभूत निर्णय कर सकते हैं।

इस ग्रन्थरत्न में प्रेमी किस प्रकार प्रेमस्वरूप परम प्रियतम को सस्नेह, सोत्साह, सोत्कण्ठित, सानन्द, साश्चर्य, सर्वत्र, सर्वरूप में, सर्व अवस्था में, सर्वभाव से अपनी अनन्य दृष्टि, अनन्यगति, अनन्यमति, अनन्य चेष्टा एवं अनन्य निष्ठा के द्वारा अनुभव कर, अनन्यरति, अनन्य प्रीति, अनन्य क्रीडा-विनोद को प्राप्त कर निहाल कृतकृत्य हो जाता है? इसका सर्वत्र अनुभूत विशद निरूपण अत्यन्त हृदयाकर्षक है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लेखक का यह कथन है कि भक्त को पृथक् रूप से तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिए साधन की अपेक्षा नहीं होती, क्योंकि उसकी अनन्य भक्ति ही वैराग्य एवं ज्ञान की जननी है।

श्रुति भगवती का भी यही दिव्य संदेश है कि—

"कारणेन विना कार्यं नोदेति"
भक्त्या विना ब्रह्मज्ञानं कदापि न जायते"

इसी कारण से भक्ति स्वतन्त्र है।

"भक्तिर्हि स्वतः प्रबलत्वात् अन्यनिरपेक्षा"

ज्ञान के लिये जैसे पूर्व विवेक वैराग्यादि परमावश्यक हैं, भक्ति के लिए उस प्रकार की किसी पूर्वावस्था की अपेक्षा नहीं है। भगवान् भी स्वयं कहते हैं कि:—

"तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्ययोगिनो वै मदात्मनः।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह॥"

मेरी भक्ति से युक्त मद्रूप योगी के लिए पृथक् ज्ञान-वैराग्यरूप साधन अपेक्षित नहीं, क्योंकि भक्ति के साधन में प्रवृत्ति होने पर ये स्वयं आविर्भूत होते हैं। कहा भी है कि:—

"वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्॥"
'वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः।
सध्रीचीनेन ·राग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति॥"

भगवान् वासुदेव में प्रयोजित अनन्य भक्तियोग संसार से वैराग्य एवं ज्ञान की प्राप्ति करा देता है।

लेखक का यह प्रौढ़ अनुभव है कि भक्ति से सन्तुष्ट भगवान् स्वयं भक्त को ज्ञान प्रदान करते हैं और भगवत्प्रदत्त ज्ञान ही विशेष प्रौढ़ होता है। कहा भी है कि:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"सर्वगतोऽपीश्वरस्तत्र उपास्यमानः प्रसीदति"

"भक्त्या प्रसन्नो भगवान् दद्याज्ज्ञानमनाकुलम्"

सर्वत्र व्यापक होने पर भी परमेश्वर अपनी उपासना से प्रसन्न होते हैं एवं भक्ति से प्रसन्न भगवान् उत्तम एवं पुष्ट ज्ञान प्रदान करते हैं। भगवान् भी स्वयं कहते हैं कि:—

"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥"

"मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्रसादेन भूयसा ।
निःश्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मदाश्रयम् ॥"

'जो सतत मच्चित्तत्वादि धर्मों से युक्त होकर प्रेमपूर्वक मेरा भजन करते हैं, उन भक्तों पर प्रसन्न होकर उन्हें बुद्धियोग रूप तत्त्वज्ञान प्रदान करता हुँ जिससे वह मुझे आत्मरूपेण प्राप्त कर लेता है।'

'मेरा वह धैर्यवान् भक्त मेरी ही महती कृपा से तत्त्वज्ञान प्राप्त कर एकमात्र मेरे ही आश्रित अपने स्वरूपभूत कैवल्य संज्ञक मंगलमय पद को सहज में ही प्राप्त कर लेता है।'

जब सामान्य पुरुष भी जन्म-जन्मान्तर की उपासना के पश्चात् अमोघ शक्तिसम्पन्न हो जाते हैं तो फिर विज्ञानानन्दघनस्वरूप षडैश्वर्य सम्पन्न भगवान् के विषय में कहना ही क्या। अपने जो भ्रूकुटिविलासमात्र से अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डों के स्रष्टा, पाता, संहर्ता एवं अनन्त-अनन्त ब्रह्मादिक देवों, सद्गुरुओं एवं ऋषि-महर्षियों के भी वन्दनीय हैं, उन भगवान् श्रीकृष्ण के तुष्ट होने पर उनके द्वारा उपदिष्ट ज्ञान कितना अमोघ एवं प्रौढ़ होगा, कहा ही नहीं जा सकता। भगवान् तो क्षणभर में अपने दिव्य संकल्पमात्र से विशुद्ध ज्ञान, वैराग्य एवं पराभक्ति प्रदान कर शीघ्रातिशीघ्र कल्याण करने में समर्थ हैं। इसलिये प्रत्येक कल्याणकामी पुरुष को अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डनायक, परमकारुणिक, भक्तवत्सल, समस्तप्राणियों के लक्ष्यभूत,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादि गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥"
"येन केन प्रकारेण कृष्णस्य भजनं हितम् "
"गोविन्दं सन्तं वहुधा आराधयन्ति "
"तं ध्यायेत् तं रसयेत् तं भजेत् "

सर्व कारणों के कारण, सर्व के आराध्य, मोक्ष प्रदाता सच्चिदानन्द-स्वरूप परिपूर्णतम ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण का ही जिस किसी भी प्रकार से ध्यान, रसास्वादन एवं भजन करना चाहिए, क्योंकि

"यो यो ध्यायति रसयति भजति सोऽमृतो भवति"
"मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते "

जो-जो पुरुष उस परम प्रियतम आत्मस्वरूप भगवान् का ध्यान, रसन एवं भजन करते हैं वे निश्चितरूपेण उनकी कृपा विशेष से अमृतत्व को प्राप्त होने के योग्य होते हैं।

लेखक का कथन है कि भक्तिविशिष्ट ज्ञान ही शास्त्र एवं पूर्वाचार्यों को अपेक्षित है तथा यही शोभा को भी प्राप्त करता है। कहा भी है कि:—

"नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं न शोभते "

भगवद्भक्ति से रहित ज्ञान की सर्वोच्च स्थिति "नैष्कर्म्य" भी शोभायमान नहीं होती अर्थात् ज्ञान की शोभा इसी में है कि वह भगवद्भक्ति से युक्त हो। जो लोग भक्ति रहित ज्ञान सम्पादन करते हैं उनकी निन्दा भी स्थान-स्थान पर मिलती है इसीलिये ग्रन्थिविहीन ब्रह्मनिष्ठ आत्माराम शुकादि भी भगवान् की अहैतुकी भक्ति करते हैं।

वास्तविक दृष्टि से भक्ति और ज्ञान में कोई भी अन्तर नहीं है। कहा भी है:—

"भक्तेस्तु पराकाष्ठा सैवज्ञानं प्रकीर्तितम् ।
वैराग्यं च सीमा सा ज्ञाने तदुभयं यतः ॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ति की पराकाष्ठा ज्ञान है और ज्ञान की पराकाष्ठा भक्ति। जहां भक्ति से ज्ञान को श्रेष्ठ कहते हैं वहां भक्ति का अर्थ, साधन भक्ति है और जहां ज्ञान से भक्ति को श्रेष्ठ बतलाते हैं वहां ज्ञान का अर्थ, परोक्षज्ञान है। पराभक्ति और परोक्षज्ञान दोनों एक ही वस्तु है।

वास्तव में परमात्मा का चिदंश ही ज्ञान है और आनन्दांश ही प्रेम। भक्तिमकरन्द में कहा भी है कि :—

"ज्ञानं चैतन्यमात्रं व्यवहरति जनो ज्ञावृत्तौ तुभक्त्या।
प्रेमाप्यानन्दमात्रं व्यवहरति तथा प्रेमवृत्तौ च भक्त्या॥"

ज्ञान केवल चैतन्यरूप है, ज्ञानवृत्ति—चित्तवृत्ति विशेष में लक्षणा से ज्ञान' शब्द व्यवहार होता है। इसी प्रकार प्रेम भी केवल आनन्दस्वरूप है, प्रेमवृत्ति—चित्तवृत्ति विशेष में भक्ति से अर्थात् लक्षणा से 'प्रेम' शब्द व्यवहार होता है। इसीलिए भक्तों ने भगवान् को प्रेमस्वरूप कहकर स्तुति की है। इसी से भक्तों ने भक्ति को और ज्ञानियों ने ज्ञान को परम पुरुषार्थ माना है। चैतन्य और आनन्द वास्तव में दो वस्तु नहीं, किन्तु परमात्मस्वरूप ही हैं, अतएव कोई अन्तर नहीं।

इस प्रेमदर्शिनी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह नाना मत मतान्तरों, साम्प्रदायिक पक्षपातों एवं तज्जन्य दोषों को निवृत्त कर परम शान्ति का विस्तार करने वाली है तथा सगुण-निर्गुण, द्वैत-अद्वैत आदि अज्ञानजन्य भेदभ्रम को सर्वथा समूल नष्टकर सबमें समता का पाठ सिखाने वाली, साम्यामृत प्रदान करने वाली है।

इस अनुभवात्मिका 'प्रेमदर्शिनी' टीका को आद्योपान्त सुचारुरूपेण समाहितचित्त होकर स्वाध्याय एवं मनन करने पर परमप्रेमास्पद प्रियतम के प्रति तैलधारावत् अविच्छिन्न—अखण्ड प्रेमामृत की वृष्टि करने वाली भक्ति-भागीरथी की अजस्रधारा प्रवाह को देखकर लेखक के परमोच्च आदर्श दिव्य व्यक्तित्व एवं परमोच्च दिव्यभगवत्प्रेम की प्रेमोन्मत्त करने वाली महाभावापन्न स्थिति की पुष्कल गहन अनुभूतियों से समन्वित विशुद्ध एवं अत्यन्त विशाल लोकातीत अन्तःकरण का विशेष आदर्श दिव्यपरिचय प्राप्त होता है तथा साथ ही साथ लेखक की भगवत्प्रेम के कारण होने वाली रोमाञ्च, प्रकम्प

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आदि दिव्य अष्टसात्त्विक भावों एवं परमप्रेमा अमृतस्वरूपाभक्ति से युक्त दिव्योन्माद सम्पन्न विलक्षण अनिर्वचनीय लोकातीत विरहजन्य करुणक्रन्दन, परमचीत्कार, अतिवेदना, विरहजन्य सन्ताप के कारण मूर्च्छा, शरीर एवं इन्द्रियों की निश्चेष्टावस्था, असाध्य रोगी की भांति कृशगात्रावस्था, देखने, सुनने, उठने, बैठने, खाने, पीने आदि वाह्य व्यावहारिक चेष्टाओं में अत्यन्त असमर्थता, प्रेमास्पद परमप्रियतम के विरहजसंयोग की अनुभूति होने पर अतिहर्षोल्लास की परमानन्दमयी लोकोत्तर दिव्यस्थिति, वृक्ष आदि को भी भगवद्भाव से आलिङ्गन करने वाली दिव्योन्मादिनी परम प्रेमावस्था, जड़ को भी द्रवीभूत करने वाली लोकातीत दिव्य तन्मयावस्था, विधिनिषेधातीत पूर्वापर सम्बन्धरहित भगवदीय असम्बद्धवार्ता, जड़ों को भी प्रियतम का रूप समझकर क्रीड़ा, विनोद एवं प्रेमालाप की सर्वाश्चर्यमयी विलक्षण स्थिति तथा रसराजरासेश्वर के दिव्यरसासव को पीकर रसावेशोन्मत्त हो, रसास्वादन की तन्मयता विशेष के कारण सार्वत्रिक प्रियतम से एकीभूत हो, स्वात्मारामत्व को प्राप्तकर मूक, स्तब्ध, सम, शान्त, महातूष्णी अवस्था की प्राप्ति—यह विलक्षण अनिर्वचनीय, स्वसंवेद्य महान् भगवत्प्रेम की दिव्य झांकी प्राप्त होती है। यह लोकातीत प्रेम की महाभावास्था सहस्रों बार की देखी हुई है, क्योंकि श्रीचरणों की सन्निधि में इस तुच्छ सेवक को सोलह वर्ष तक रहने का अवसर प्राप्त हुआ है। प्रियतम प्रभु के दिव्यनाम, दिव्यगुण, दिव्यलीला, दिव्यधाम, दिव्यकथा आदि के श्रवण के समय लेखक की स्वयमेव यह प्रेम की दिव्योन्मादावस्था स्वाभाविक ही हुआ करती है। अनेकों बार प्रेमावस्था में तन्मयता विशेष के कारण भगवदीय बुद्धि से नदी में, तालाब में कूदे, अग्नि को पकड़ने के लिए प्रवृत्त हुए, मलमूत्रादि को भी भगवदीयबुद्धि से सिर पर धारण किए, सूकर, कूकर एवं वृक्षादि का आलिंगन किए, कांटों पर पुष्पशय्यावत् पड़े रहे, सर्पों से खेलते रहे, प्रेतों से प्रेमालाप करते रहे, पशु में भी प्रेम का संचार करते रहे, बहुरूप में विचरते रहे, स्पर्शमात्र से ही नास्तिक को आस्तिक बनाते रहे, चाण्डाल एवं यवनों को भी प्रेम से प्रेम का प्रसाद बांटते रहे, सहस्रों भावुकों में भक्ति का भाव भरते रहे, उनको तन्मय, तद्रूप करते रहे, रुलाते रहे, हंसाते रहे, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में निमग्न होने के कारण आपरेशन की असह्य वेदना एवं क्लोरोफार्म को भी विफल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करते रहे, श्यामा—जमुना को देखकर श्याम में एवं शुक्ला—गंगा को देखकर शुक्ल—निर्मल ब्रह्म में तन्मय होते रहे, उसे "रसो वै सः" रसरूप कहते रहे, तीर्थों को सुतीर्थ करते रहे, दिव्यदृष्टिदान करते रहे, भगवद्विग्रह से प्रेमालाप करते रहे, क्रीड़ा करते रहे, भगद्गुणश्रवणमात्र से चीत्कार मचाते रहे, करुणक्रन्दन करते रहे, परमानन्द में मग्न होते रहे, पूजा की प्रवृत्ति में पूज्य से पूर्ण हो देह की सुधि-बुधि खोते रहे, भगवत्प्रसाद को देखते ही भगवद्रूप होते रहे, भगवान् को प्रेम से प्रेम का भोग लगाते रहे, विनोद करते रहे, अशन-वसन एवं शयन का त्याग करते रहे, दिव्योन्माद सम्पन्न होते रहे। कहां तक कहा जाय, यह तो इनके जीवन का स्वरूप ही है। इन दिव्य अवस्थाओं की गणना ही नहीं की जा सकती है। इस प्रकार भगत्प्रेमाविष्टचित्त की इस उच्चतम दशा में नाना प्रकार के अनिर्वचनीय दिव्य भावों का आविर्भाव होता है जिसको जानना किसी के लिए भी अत्यन्त कठिन है। कहा भी है कि :—

"धन्यस्यायं नवप्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि ।
अन्तर्वाणीभिरप्यस्य मुद्रा सुष्ठु सुदुर्गमा ॥"

जिस धन्य पुरुष के चित्त में इस नवीन लोकोत्तर भगवत्प्रेम का उदय होता है उसकी वाणी एवं क्रिया के रहस्य को शास्त्रप्रणेता भी सम्यक् प्रकारेण जानने में अत्यन्त असमर्थ हैं। यह दिव्य भगवत्प्रेम की विलक्षण स्थिति

"नृणां जन्मसहस्रेण तपसाभावितात्मनाम् ।
भक्तिरुत्पद्यते तात मनुष्याणां न संशयः ॥"
"केषांचिदेव सा साक्षात्प्रसादान्मुरवैरिणः ।"
"भगवत्कृपालेशाद्वा"
"प्रकाश्यते क्वापि पात्रे"

सहस्रों जन्मों के तप आदि साधनों से भावित क्षीणकल्मष विशुद्धान्तःकरण किसी विरले महाभाग्यवान् भगवत्कृपापात्र भागवत श्रेष्ठ में ही प्रकाशित होती है जिससे सुहृदात्मा भगवान् का साक्षात्कार होते ही

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हृदय ग्रन्थि छिन्न-भिन्न हो जाती है, सारे संदेह मिट जाते हैं और सम्पूर्ण कर्म क्षीण हो जाते हैं। ऐसे भगवत्प्रेमैकनिष्ठ भक्तों को उत्पन्न कर

" कुलं पवित्रं जननी कृतार्था "

कुल पवित्र एवं जननी कृतार्थ हो जाती है तथा ऐसे भगवद्भक्त को देखकर,

"आस्फोटयन्ति पितरो नृत्यन्ति च पितामहाः ।
मद्वंशे वैष्णवो जातः स नस्त्राता भविष्यति ॥"

पितृपितामहगण अपने कल्याण की आशा से अत्यन्त प्रसन्न हो नृत्य करते हैं तथा

" सनाथा चेयं भूर्भवति "

पृथ्वी भी ऐसे सुयोग्य वैष्णव पुत्र को प्राप्त कर सनाथ हो जाती है। ऐसे भक्त,

"तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मी कुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि।"

तीर्थों को सुतीर्थ, कर्मों को सुकर्म एवं शास्त्रों को सत् शास्त्र कर देते हैं। यहां तक कि,

"महापातकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकैः ।
परं पदं प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकिताः ॥
कलेवरं वा तद्भस्म तद्धूमं वापि सत्तम ।
यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परांगतिम् ॥"

जिन पर ऐसे महापुरुषों की दृष्टि पड़ जाती है वे महापातक या उपपातकों से युक्त होने पर भी अवश्य परमपद को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे पुण्यात्मा महापुरुष यदि किसी के मृत शरीर को, उसकी चिता के धुएँ को अथवा उसके भस्म को भी देख लें, तो वह मृतक पुरुष परमगति को पा लेता है। इस प्रकार महापुरुषों की महिमा शास्त्रों में विशेष रूप से वर्णित है।

यहाँ पर पाठकों के हितार्थ आत्माराम श्री स्वामी जी महाराज के दिव्य अलौकिक प्रवचन की दिव्य झाँकी करा देना अनुचित न होगा तथा साथ ही साथ उस महासिद्ध योगी के अनेक रूप धारण करने की अद्भुतशक्ति,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्तर्धानशक्ति और अन्तर्यामित्वशक्ति के अद्भुत चमत्कार—सिद्धियों के सम्बन्ध में उल्लेख कर देना भी उचित ही समझता हूँ।

आत्माराम परमपूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज प्रवचन का श्री गणेश करते ही अधिकांश तन्मय—ब्राह्मी अवस्था में स्थित होकर बोलते। उस समय बिना सोचे-विचारे मशीन से भी तीव्र गति में प्रवचन होता। प्रवचन कब तक चलता रहेगा, इसका कोई समय निश्चित नहीं होता। उस धारावाहिक तीव्र प्रवचन की स्वाभाविक स्थिति को देखकर सबको यह विदित होता कि कोई शक्ति विशेष प्रवचन कर रही है, ये स्वयं नहीं बोलते। अतः उस महावेगवती धारा को किसी भी प्रकार से रोका नहीं जा सकता। प्रवचन समाप्ति के अनन्तर जब विद्वत्मण्डली आग्रह करती कि महाराज! आपके प्रवचन का प्रवाह इतना तीव्र हो जाता है कि हम लोग ग्रहण नहीं कर कर पाते, तो उत्तर में श्री स्वामी जी महाराज यही कहते कि भाई! हम क्या करें? वह हमारे अधिकार की वस्तु नहीं है, उसका प्रवक्ता कोई और ही है जिस पर किसी का कोई अधिकार नहीं हो सकता। उस सर्वतन्त्रस्वतंत्र की स्वच्छन्द धारावाहिक वाणी को मैं भी रोकने में असमर्थ हूँ। वह "*आत्मरति आत्मक्रीड*" आत्मा से रति, प्रीति, क्रीड़ा, विनोदसम्पन्न, केवल अनुभव, केवल आनन्द, केवल अमृत, केवल प्रेम की अजस्रवृष्टि करने वाला भगवदीय अद्भुत प्रवचन अद्भुत शक्तिसम्पन्न होने के कारण महान् आश्चर्यजनक तन्मयता, समता, शान्ति, मुदिता, मैत्री प्रदान करने वाला होता है, जो केवल अनुभूत है, वाणी और लेखनी का विषय नहीं है।

एक बार देवरिया जिलान्तर्गत "खोरमा" नामक ग्राम के निवासकाल में निकटवर्ती ग्राम निवासी श्री नरसिंह नारायण सिंह आदि परम पूज्य पाद श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ ११ बजे रात्रि को पहुंचे, तो वे लोग देखते क्या हैं कि वे अपने नियत स्थान से कुछ दूरी पर दिखाई दिए। जब वे लोग वहां पहुंचे तो वहां से और आगे दिखाई दिए, वहां जाने पर "मझने" नदी के किनारे दिखाई दिए। नदी के किनारे पहुंचने पर वहां से ओझल—अन्तर्धान हो गये तथा पुनः अपने आसन पर आसीन दिखाई दिए। इस प्रकार एक ही काल में कई रूपों में देखकर वे लोग महान् आश्चर्यचकित हो गए। इस प्रकार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की घटना से वहां के समाज में विद्युतवत् सर्वत्र सूचना फैल गई और जब प्रातःकाल वहां जनता का एक समूह उपस्थित हुआ तो कन्हौली ग्राम के एक प्रेमी "श्री विजयराघव सिंह" के पूछने पर कि स्वामी जी! समाज में ऐसा प्रचार हो रहा है, यह कहां तक सत्य है? तब श्री स्वामी जी ने इसका गोपन करते हुए कहा कि हम तो अपने आसन पर ही स्थित रहे, यहां से कहीं गये ही नहीं। नरसिंह आदि दर्शकों का अनेक रूप में देखना उनकी भावनामात्र है, हमारे अन्दर कोई ऐसी विशेषता नहीं है—इस प्रकार के उत्तर द्वारा श्री विजयराघव सिंह को श्री स्वामी जी ने शान्त कर दिया। परन्तु बात तो सत्य ही थी। इस प्रकार श्री स्वामी जी महाराज एक ही काल में कई रूपों में दिखाई दिए। यह उनके योग का महासामर्थ्य है। इस अद्भुत घटनाकाल में वहां पर मैं भी उपस्थित था।

ऐसे ही गोरखपुर जिलान्तर्गत गड़री ग्राम निवासी श्रीरामचन्द्रद्विवेदी परम पूज्य पाद श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ मध्याह्नकाल में "गजहड़ा" पहुंचे, तो देखते क्या हैं कि श्रीस्वामी जी उस नियतस्थान से उनके देखते ही अन्तर्धान हो गये और थोड़ी दूर पर दिखाई दिये। जब वे वहां पहुंचे तो वहां से दूसरे स्थान पर दिखाई दिए। इस प्रकार इस महायोग की विलक्षण स्थिति को देखकर महान् आश्चर्यचकित रहे और रुदन करते हुए स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् द्विवेदी जी ने कहा कि यह क्या आप की माया है? तो श्रीस्वामी जी महाराज ने इसको गोपन करने के लिए कह दिया कि यह आप की भावना का फल है, हमारे अन्दर कोई विशेषता नहीं है। परन्तु बात तो सत्य ही थी, इसलिए द्विवेदी जी ने इस घटना को अपने भाभी आदि कई व्यक्तियों से कहा जिसको मैंने भी छपरा के यज्ञ के समय उनकी भाभी द्वारा सुना, जहां पर भानु आदि कई व्यक्ति उपस्थित थे।

ऐसे ही आजमगढ़ जिलान्तर्गत लाटघाट के सन्निकट मुहम्मदपुर (मिश्रपूरा) ग्राम निवासी पं० श्रीराम जी पाण्डेय नामक विद्वान् ने मुझसे कलकत्ता में पूज्यचरण श्री स्वामी जी महराज के विषय में चर्चा चलते हुए बतलाया कि उनकी विलक्षणताओं के विषय में कुछ मत पूछिए। एक बार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीस्वामी जी महाराज मुहम्मदपुर स्कूल पर आए हुए थे, मुझे सूचना मिली कि तीर्थपाद श्री स्वामी जी मुझे स्मरण कर रहे हैं परन्तु अध्यापन का समय हो जाने के कारण सोचे कि "छपरा" से लौटने पर सायंकाल दर्शन करूँगा। उस समय मैं साइकिल से ६ मील की दूरी तय करके जब अठनारू पहुंचा तो देखा कि पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज हमसे पहले ही वहां पर उपस्थित हैं और चौकी पर विश्राम कर रहे हैं। यह देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि अभी-अभी मैं इन्हें मुहम्मदपुर छोड़कर आया हूँ और ये यहां उपस्थित हैं। इस प्रकार मैं उनकी इस महान् सिद्धि-अन्तर्धान शक्ति को देखकर अवाक् आचर्य-सागर मे गोता लगाने लगा और सिर से बद्धाञ्जलि पूर्वक नमस्कार किया और इनके इस चमत्कार से भीत-सा होकर अध्यापन कार्य के लिये "छपरा' चला गया।

ऐसे ही परमपूज्य पाद श्री स्वामी जी महाराज के परम अंतरंग भक्त अठनारू ग्राम निवासी श्री चन्द्रवदन सिंह ने मुझमें बतलाया कि एकबार हमारे भाई साहब श्री जगदीश सिंह एवं हम श्री स्वामी जी के दर्शनार्थ "छपरा" गए हुए थे। दिन बरसात का, अंधेरी रात्रि का था। प्रेमाधिक्य के कारण बार-बार जाने के लिए आदेश मिलने पर भी घण्टों रात बीत गई। तत्पश्चात् हम लोग वहां से घर के लिए प्रस्थान किए और जब हम लोग "कोठिया" ग्राम के दक्षिणी सिरे पर नाले के किनारे पहुंचे तो एक तो अंधेरी रात्रि के नाते कुछ मालूम नहीं हो रहा था, दूसरे, नाला बढ़ा हुआ था। बूंदें पड़ रही थीं। हम लोगों के पास उस समय प्रकाश आदि का कोई साधन भी नहीं था, ऐसी परिस्थिति में घबरा गये कि कैसे नाला पार हुआ जाय? इस पर ज्योंही श्री स्वामी जी का स्मरण किया और यह कहा कि "दुहाई स्वामी जी की" त्योंही स्वामी जो एक प्रकाश लिए हुए हम लोगों से आगे नाले में घुस गए और कहे कि तुम लोग क्यों घबरा रहे हो? इस मार्ग से आ जाओ। हम लोग नाला पार हो गए और श्री स्वामी जी महाराज सहसा अन्तर्धान हो गये। इस अद्भुत चमत्कार और संकटकालीन परिस्थिति पर अपने ऊपर इस असीम कृपा को देखकर हम लोग उनके चरणों में निछावर हो गए और सदा के लिए उनके चेरे बन गए।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विधिनिषेध से अतीत, गुणातीत, अन्तर्यामी परम पूज्य पाद श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ जो विद्वान् जिस शंका को लेकर आता उसके बिना पूछे ही श्री स्वामी जी महाराज उसके उस शंका का समाधान करते हुए उसी विषय पर प्रवचन करते। सभी आगन्तुक विद्वान् इनके इस अन्तर्यामित्व शक्ति विशेष को देखकर सर्वथा आश्चर्यचकित रहते तथा परस्पर आपस में चर्चा करते कि कैसे ये हम लोगों की मनोगत बातों को बिना पूछे ही जान लेते हैं? क्योंकि जिन-जिन प्रष्टव्य शंकाओं को लेकर यहां हम आये थे उन सभी का समाधान इनके प्रवचन में स्वयमेव हो जाता है—यह महान् आश्चर्य है।

यदि पाठक को लेखक का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने की विशेष उत्कट जिज्ञासा हो, तो कृपया लेखक द्वारा विरचित श्री मद्भगवद्गीता की सुप्रसिद्ध "तत्त्वदर्शिनी" नामक टीका पढ़ने का विशेष कष्ट करें।

जिस शक्ति ने अब तक टूटे-फूटे शब्दों में कुछ लिखवाया, उसी की प्रेरणा विशेष से अब लेखनी बन्द होने जा रही है।

जिन करुणावरुणालय, भगवत्स्वरूप, सर्वात्मा श्री गुरुदेव ने स्वप्रदत्त आदेशपूर्त्यर्थ स्वयं आभ्यन्तर स्थित हो, आवश्यकतानुसार दिव्य प्रेरणाशक्ति प्रदान द्वारा बाह्याभ्यन्तरबोधशून्य, इस महत्वपूर्ण गुरुतर कार्य के नितान्त अयोग्य, मुझ सर्वदोषपूर्ण, अत्यन्त क्षुद्र अनधिकारी से भी कार्य सम्पन्न कराया, उन्हीं द्वारा प्रदत्त ये शब्द पुष्प

उन्हीं के दिव्य कर कमलों में

सादर सप्रेम

समर्पित ॥

गुरुवर्य! तुष्टि के हेतुभूत समस्त गुणों से शून्य, दोषाढ्यान्तःकरण मुझ क्षुद्र के दोषों पर सर्वथा ध्यान न देते हुए आप केवल अपने अहैतुक परमकारुणिक स्वभाव से ही मुझ पर प्रसन्न हों।

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव जगत्सर्वं तस्मै श्री गुरवे नमः॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
स्थावरंजङ्गमंव्याप्तं यत्किञ्चित्सचराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
चिन्मयं व्यापितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
सर्वश्रुतिशिरोरत्नविराजित पदाम्बुजम् ।
वेदान्ताम्बुजसूर्यो स्तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरंजनम् ।
विन्दुनादकलातीतं तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
ज्ञानशक्तिसमारूढस्तत्त्वमालाविभूषितः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदाता च तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
अनेकजन्मसम्प्राप्त कर्मबन्धविदाहिने ।
आत्मज्ञानप्रदानेन तस्मै श्रीं गुरवे नमः ॥
शोषणंभवसिन्धोश्च ज्ञापनं सारसम्पदम् ।
गुरोः पादोदकं सम्यक् तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः ।
तत्त्वज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परम दैवतम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
यस्मिन्सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वदृक्तथा ।
सर्वभावपदातीतं तस्मै श्री गुरवे नमः ॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापति—
धियांपतिर्लोकपतिर्धरापतिः ।
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां
प्रसीदतां मे भगवान् सतांपतिः ॥"

"यदङ्घ्र्यनुध्यानसमाधिधौतया
धियानुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः ।
वदन्ति चैतत् कवयो यथारुचं
स मे मुकुन्दो भगवान् प्रसीदताम् ॥"

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

कृपाकांक्षी :—
आत्मानन्द

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दो शब्द

[लेखक—श्री पारसनाथ पाण्डेय व्याकरणाचार्य, एम०ए०, साहित्यरत्न]

❀ श्रीः ❀

स्वेष्टदेवं परंब्रह्म श्रीरामं सीतयान्वितम् ।
नमामि परयाभक्त्या भक्तानामभयङ्करम् ॥
पत्राणि नैव धूयन्ते यस्य सत्तां विना क्वचित् ।
पुष्पाणि न प्रसीदन्ति स रामः मे सदा गतिः ॥
सर्वस्वं यश्च भक्तानां भक्ताः यस्य सदा प्रियाः ।
सर्वभूतस्थितं रामं प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥
आराध्यं रामभक्तानां सर्वदा च सहायकम् ।
अंजनीनन्दनं देवं हनुमन्तं नमाम्यहम् ॥
भक्तिसूत्रप्रणेतारं नारदं च महामुनिम् ।
नमस्कृतं देवसंघैः नत्वार्किंचिल्लिखाम्यहम् ॥
टीका चास्य कृता येन स्वामिनानन्ददायिनी ।
स्वतन्त्रानन्द नामानं स्वामिनं प्रणमाम्यहम् ॥

परमपूज्य वीतराग ब्रह्मनिष्ठ भगवान् श्री कृष्ण के अनन्योपासक १००८ श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की नारदभक्तिसूत्र की टीका "प्रेमदर्शिनी" के स्वाध्याय का सुअवसर प्राप्त हुआ, इसे मैं आनन्दकन्द कौशल्यानन्दन राघवेन्द्र श्री रामचन्द्र जी का अनुग्रह ही मानता हूं, अन्यथा मुझ जैसे सांसारिक प्रपञ्च में व्यस्त विषयासक्त पामर जीव को भवबन्धन विमोचक ग्रन्थ के अवलोकन का सुअवसर कहां ?

गीता तत्त्वदर्शिनी की भांति "प्रेमदर्शिनी" के सम्बन्ध में भी पूज्यचरण स्वामी जी ने मुझे कुछ अपने विचार व्यक्त करने का आदेश दिया। इस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आदेश का कारण स्वामी जी की मेरे ऊपर अहैतकी कृपा तथा अकारण वात्सल्य ही है अन्यथा मुझ जैसे मायावद्ध सांसारिक जीव के लिए इस विषय पर कुछ लिखना परम दुःसाहस ही है। इस विषय पर कुछ लिखना मेरे लिए वैसा ही है जैसे शाक बेचने वाले को मणियों की परीक्षा।

"सो मो सन कहि जात न कैसे।
शाक वनिक मनिगन गुन जैसे॥" (तुलसीदास)

मैं तो, "अघ अनेक अवलोकि आपने अनघनाम अनुमानि डरौं" के अनुसार भगवान् की परमप्रिया महिमामयी भक्ति महारानी के सम्बन्ध में कुछ कहते हुए भयभीत हो रहा हूं। कहां भक्तिविहीन विषयासक्त पामर प्राणी, कहां सर्वश्रेयस्करी श्रेयः सृति भगवान् को भी अपने वश में रखने वाली तथा भक्तों के भी अधीन कर देने वाली भक्ति देवी? किन्तु संसार को नचाने वाली माया के वन्धनों से स्वतन्त्र अर्थात् मुक्त किन्तु प्रेमसूत्र द्वारा भगवच्चरणों में परतन्त्र अर्थात् वद्ध पूज्यचरण श्री स्वामी जी महाराज के अकारण वात्सल्य की अवहेलना करने की शक्ति भी कहां? जितना महान् दुःसाहस इस पर कुछ लिखना है उससे अधिक दुःसाहस उनके आदेश का पालन न करना है। अस्तु कुछ कहना ही है।

प्रेमदर्शिनी के सम्बन्ध में कहने के पहले भक्ति के सम्बन्ध में कुछ कहना अप्रासङ्गिक न होगा। वस्तुतः इस पारावार विहीन भवसागर को पार करने के लिए शास्त्रों ने कर्म, ज्ञान तथा भक्ति—इन तीन मार्गों का ही निर्देश किया है, जिसमें कर्म अनेक विधि-निषेध के प्रबल प्रतिबन्धों से पूर्ण है तथा ज्ञान कृपाण की धार है।

"ज्ञान पंथ कृपाण कीं धारा।
परत खगेश लगहिं नहि वारा॥ (तुलसीदास)

ज्ञान की प्राप्ति ही अत्यन्त कठिन है।

"कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक।
होंहिं घुनाक्षर न्याय जौ पुनि प्रत्यूह अनेक॥" (तुलसीदास)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपनिषद् के शब्दों में—

'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।" (कठोपनिषद्)

कहा जा सकता है। यदि किसी प्रकार प्राप्त भी साधक करे तो पतन का भय बना ही रहता है। इस विषय का विस्तृत विवेचन भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' के ज्ञानदीपक प्रकरण में किया है। भक्ति एक परम सरल, सबल एवं राजमार्ग के समान सुगम साधन है।

"बहुमत मुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो रामभजन मोहि नीको लगत राज डगरो सो ॥" (विनयपत्रिका)

इस मार्ग पर चलने वाले साधकों पर भक्तप्रिय भगवान् के वरद हस्त की छाया रहती है अतः साधन में विघ्नदायिनी माया का कोई वश नहीं चल पाता।

"सीम कि चापि सकइ कोइ तासू।
बड़ रखवार रमापति जासू ॥" (तुलसीदास)

भगवन्नाम के स्मरण करते ही काम, क्रोध, मद, लोभ मोह आदि माया का प्रबल परिवार पलायन कर जाता है।

"सकुचत समुझि नाम महिमा, मद लोभ मोह कोह कामो" (विनय पत्रिका)

मायापति भगवान् के संरक्षण में रहने के कारण केवल भक्त ही माया के आक्रमण से बच जाता है इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है :—

"दैवी ह्येषा गुणमयी मममाया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥"

अन्यथा सामान्यज्ञानी को कौन कहे—

"शिवविरंचि कह मोहई को है बपुरा आन"

स्वयं ब्रह्मा जी ने मोहग्रस्त गरुड़ से कहा था :—

"विपुल बार नचाव जो मोही सोई व्यापी विहंगपति तोही।"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान् के शरण में रहने के कारण भक्त का कभी विनाश नहीं होता।

"कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति" (गीता)

भक्त तथा ज्ञानी में मूल भूत अन्तर यह है कि भक्त भगवान् के लिए अबोध पुत्र के समान है। इस सम्बन्ध में "रामचरितमानस" में राघवेन्द्र श्री रामचन्द्र जी तथा वैष्णवाग्रणी नारद जी का संवाद भक्तजनों के लिए बहुत उत्साहवर्धक है। जब नारद ने प्रश्न किया कि हे नाथ!

"तब विवाह मैं चाहउँ कीन्हा, प्रभु केहि कारन होहि न दीन्हा।"

इसके उत्तर में भगवान् श्री राम ने कहा—

"सुनु मुनि कहँउ तोहि सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिनकी रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी॥

जब अबोध बालक अग्नि तथा सर्प को पकड़ता है तो माता स्वयं बलपूर्वक उसे पृथक् कर देती है।

"गहि सिसु बच्छ अनल अहिधाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥"

किन्तु सयाना हो जाने पर माता उससे प्रेम तो करती है किन्तु पिछली बातें नहीं रह जातीं। वह समझने लगती है कि मेरा पुत्र अब स्वयं ज्ञानवान् है अतः अब स्वयं ही इनसे बचेगा।

"प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहिं पाछिल बाता॥"

अब प्रश्न यह उठता है कि भगवान् के कौन अबोध पुत्र हैं और कौन सुबोध। इसका उत्तर भगवान् ने दिया है कि—

"मोरे प्रौढ़ तनय समज्ञानी। बालक सुत समदास अमानी॥"

अर्थात् ज्ञानी मेरे प्रौढ़ पुत्र के समान है तथा भक्त अबोध पुत्र के समान। इसी से परम ज्ञान सम्पन्न शुकसनकादि सगुण रूप की भक्ति में लीन रहते हैं।

भक्तिभागीरथी में अवगाहन किए बिना सांसारिक पाप-तापों से विमुक्त हो जीव कभी परम शान्ति लाभ नहीं करता। इसीलिए गोस्वामी जी ने कहा है कि—

"जे अस भगति जानि परिहरहीं। केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ति एक ऐसा अद्भुत साधन है जिसके कारण अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक परमात्मा भी भक्त के वश में रहता है। भगवान् विष्णु ने चक्रभय से पीड़ित पादों में प्रणत ब्रह्मर्षि दुर्वासा से कहा था कि :—

"अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज"

हे द्विज! मैं तो भक्तों के अधीन हूँ, स्वतन्त्र नहीं। अतः मैं कुछ नहीं कर सकता। तुम अम्बरीष के पास जाओ। जिस सर्वेश्वर सर्वनियन्ता भगवान् ने समस्त जगत् के प्राणियों को कर्म की प्रबल डोरी में बाँध दिया है उसी बालकृष्ण को यशोदा हठ पूर्वक बाँध देती हैं, वे छुड़ा नहीं सकते। यह भक्ति का ही तो प्रताप है।

"जेहि बाँध्यो सुर असुर नाग मुनि प्रबल करम की डोरी।
सोइ अविच्छिन्न ब्रह्म यशुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी॥
जाकी माया वश विरंचि शिव नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाइ ग्वाल युवतिन्ह सोइ नाच नचायो॥ (विनय पत्रिका)

जिसकी माया से विरंचि, शिव भी नाचते-नाचते थक जाते, पर पार नहीं पाते, वही भगवान् भक्ति के वश में हो गोप बालाओं के सामने नाचने लगते हैं।

"शेष महेस गनेस दिनेश सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद से शुक व्यास रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं॥" (रसखान)

भक्ति (प्रेम) के प्रताप से ही तो प्रह्लाद ने पाषाण से परमेश्वर को प्रकट किया था।

"प्रेम बदों प्रहलादहिं को जिन पाहन ते परमेश्वर काढ़्यो" (कवितावली)

प्रेम ही तो भक्ति है।

"सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा" (ना० भ० सू०)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अपने श्रीमुख से भक्ति की महिमा का वर्णन किया है तथा बताया है कि मेरा साक्षात्कार अनन्य भक्ति के विना अन्य साधनों से नहीं होने वाला है।

"नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्यो अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥"

भक्ति का ही यह प्रताप है कि त्रिकालज्ञ, सर्वज्ञ ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जी जिन्हें समस्त विश्व हस्तामलकवत् था, परम अस्पृश्य अन्त्यज निषाद को गले से बलपूर्वक लगा लिया था।

"रामसखा रिषि बरबश भैंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा ॥"

इसीलिये तो देवताओं ने,

"तेहि लखि लखनहु ते अधिक मुदित मिले मुनि राउ ।
सो सीतापति भजन को प्रकट प्रताप प्रभाउ ॥"

अहा! इस भक्ति की महिमा का स्मरण करते ही हृदय गद्गद हो जाता है, वाणी मूक हो जाती है, शरीर स्तब्ध हो जाता है, मन आनन्द-सागर के उत्ताल तरङ्गों में लहराने लगता है। जिसके वशीभूत हो भगवान् भक्तों के पीछे इसलिए दौड़ता है कि उनका चरण रज मुझ पर पड़ जाय। धन्य हो देवि, धन्य है तुम्हारी महिमा, जिसके कारण उस भगवान् को भी भक्तों के पीछे-पीछे दौड़ना पड़ता है। ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, मरुद्गण, जिसकी अहर्निश स्तुति करते नहीं अघाते, सामवेद अपने समस्त अङ्गों से अनादिकाल से जिसका गुणगान करता हुआ नहीं थकता वह भगवान् इस प्रकार भक्तों के वश में हो जाता है कि वह अपनी प्रभुता को ही भूल जाता है।

"ऐसी हरि करत दास पर प्रीति निज प्रभुता बिसारि,
जन के वश होत सदा यह रीति।" (वि० प०)

यह भक्ति की महिमा है कि जिस पर मुग्ध होकर ज्ञानी भक्त उद्धव वृन्दावन की घास होने की कामना करते थे, जिससे कृष्ण प्रेमोन्मत्ता गोपि-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कार्यों का चरण रज मेरे ऊपर पड़ता रहे । ऐसी भक्ति को छोड़कर जो केवल शुष्क ज्ञान के लिए श्रम करते हैं वे मानो चावल के लिए भूसी कूटने का प्रयास करते हैं। अब यहाँ तक तो हुई भक्ति की महिमा। अब भक्ति सूत्र के भाष्य के सम्बन्ध में सुनिए।

ऐसे भक्तिप्रतिपादक शास्त्र भक्तिसूत्र की "प्रेमदर्शिनी" व्याख्या कर पूज्यचरण स्वामी जी ने आध्यात्मिक जगत् का जो उपकार किया है उससे भक्ति के जिज्ञासु कभी उऋण नहीं हो सकते। यह व्याख्या नीरस हृदय में भी भक्ति का संचार कराने वाली है। हृदय में श्रद्धा का छोटा सा अंकुर होना चाहिए, भक्ति की सार्द्रता से उसे पुष्पित तथा पल्लवित होने में विलम्ब न लगेगा। वस्तुतः ऐसे आर्षग्रन्थों का भाव सामान्यजनों के लिए बहुत ही दुर्बोध होता है। यदि भगवत्कृपाप्राप्तसन्तजन उनकी व्याख्या न करते तो साधारणजनों के लिए तो पहेली बने रह जाते। अतः समय-समय पर महान् पुरुष इस धर्मभूमि पर अवतरित होकर सर्वसाधारण के उपकार के लिए अपने भजन-साधन में से अमूल्य समय निकालकर उन दुर्बोध ग्रन्थों की व्याख्या करते हैं। विशेषतः सूत्र ग्रन्थ तो बहुत ही क्लिष्ट होते हैं। व्याकरणशास्त्र में—

"अल्पाक्षरत्वे सति बह्वर्थबोधकत्वम् सूत्रत्वम्"

इस प्रकार सूत्र की व्याख्या की गई है। अतः अल्पाक्षर सूत्रों में विस्तृत भाव भरा रहता है। उन विस्तृत भावों का ज्ञान या भगवद्विभूतियुक्त या भगत्कृपापात्र पुरुष ही कर सकते हैं।

जिस प्रकार गूढ़ पाणिनीय सूत्रों की व्याख्या कर भगवान् पतञ्जलि ने, ब्रह्मसूत्र की व्याख्या कर भगवान् शंकराचार्य ने, समस्त वेदों की व्याख्या करके सायणाचार्य ने कोटि-कोटि जनता का अनन्त उपकार किया है उसी प्रकार पूज्य चरण स्वामी जी ने भक्ति सूत्र की व्याख्या कर भक्त जगत् का अनन्त उपकार किया है एवं भक्तजनों के लिए अविस्मरणीय बन गए हैं।

एक-एक सूत्र की व्याख्या में स्वामी जी का भक्त हृदय प्रतिबिम्बित होता रहता है। स्वामी जी का मस्तिष्क जहाँ निर्गुण ज्ञान की उर्वरभूमि है वहाँ हृदय भक्ति भागीरथी के प्रवाह का परम पुण्य स्थल है। मुझे तो उनके स्वरूप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में निर्गुण ज्ञान तथा सगुणभक्ति का जो सामञ्जस्य दीख पड़ता है वह सर्वभूतहृदय परमज्ञान सम्पन्न तथा भगवच्चरणारविन्द मकरन्द के रसिक भ्रमरस्वरूप शुकसनकादि के ज्ञान तथा भक्ति की छाया प्रतीत होती है। ऐसे महात्मा के श्रीमुख से जो व्याख्या प्रसूत होगी अवश्य ही उसमें ज्ञान सम्पन्न मस्तिष्क एवं भक्तिपूर्ण हृदय की छाप होगी। एक-एक सूत्र की हृदयग्राहिणी विशाल व्याख्या जो की गई है उसमें आर्षग्रन्थों का प्रमाण ही नहीं, अपितु स्वामी जी की स्वानुभूति भी संग्रहीत है। सम्पूर्ण व्याख्या में ८४ ग्रन्थों क प्रमाण संग्रहीत है। जिससे टीकाकार के विस्तृत स्वाध्याय एवं शास्त्रज्ञान की प्रतीति होती है। सम्पूर्ण व्याख्या भक्तिरस से ओत-प्रोत है पढ़ते ही नीरस हृदय सरस होने लगता है। मेरा ऐसा पूर्ण विश्वास है कि प्रेमदर्शिनी के स्वाध्याय से हृदय में सरसता तथा आर्द्रता उत्पन्न होगी, पुनः उसमें प्रेमरूपी पय का प्रस्रवण होने लगेगा और किञ्चित् कालानन्तर भागवती भक्तिभागीरथी की निर्मल विशालधारा प्रवाहित होने लगेगी।

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक एवं सौन्दर्य सुधासागर अनन्त ऐश्वर्य-सम्पन्न भगवान् के ऐश्वर्य एवं सौन्दर्य के लिए लम्बे-लम्बे विशेषणों का प्रयोग किया गया है उससे भाषा में क्लिष्टता तो अवश्य आ गई है, किन्तु आम्र-मञ्जरी के गुच्छों की भाँति भक्तभ्रमरों के लिए अत्यन्त आनन्ददायक एवं रसमय है। इन विशेषणों के अतिरिक्त अन्य स्थलों में भाषा साधारणजनों के लिए बोधगम्य है।

आज संसार में भौतिक विज्ञान उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया है, चन्द्रलोक में उतरने के लिए वैज्ञानिक देशों में होड़-सी लगी है। पर क्या इससे जनजीवन शान्त है? उत्तर सर्वसम्मति से एक ही होगा—"नहीं"। यदि अमेरिका जैसे वैज्ञानिक देश में विज्ञान तथा धन शान्ति दे सकते तो वहां जीवन से ऊबे हुए लोगों की प्रतिवर्ष सहस्रों आत्महत्यायें नहीं होतीं।

इसीलिए तो भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—

"अशान्तस्य कुतः सुखम्"

अब प्रश्न यह उठता है कि शान्ति कहाँ प्राप्त हो सकती है? उत्तर—अध्यात्मविज्ञान से। इसी से भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"अध्यात्मविद्या विद्यानाम्"

मैं सभी विद्याओं में अध्यात्मविद्या हूँ। अतः शान्ति के पिपासुओं के लिए "प्रेमदर्शिनी" एक सुधाधारा है जिसका पानकर मनुष्य सदा के लिए शान्त, तृप्त तथा अद्वयानन्द में विलीन हो सकता है।

वस्तुतः आज भौतिक विज्ञान के चकाचौंध से—[जिसकी छाया भारत पर भी पड़ने लगी है] अन्धे विश्व के लिए ऐसे साहित्य की बड़ी आवश्यकता है। वस्तुतः भौतिक ऐश्वर्य से प्रमत्त लोगों की विषाक्त बुद्धि के लिए भक्तिग्रन्थ की यह व्याख्या संजीवनी औषध के समान होगी जिसके द्वारा मनुष्य अनन्त शान्तिसागर परमात्मा में विलीन होकर परमशान्ति तथा सुख का भागी होगा।

संस्कृत विद्वत्समाज में बाणभट्ट की कादम्बरी के सम्बन्ध में एक उक्ति है कि—

"कादम्बरीरसज्ञानाम् आहारोऽपि न रोचते"

"प्रेमदर्शिनी" भी प्रेमकादम्बरी ही है। जिनके अनन्त जन्मों का पुण्य-पुञ्ज उदय हो गया है, जो करुणावरुणालय भगवान् की अहैतकी कृपा के अधिकारी हो चुके हैं ऐसे भक्त जब इस प्रेमदर्शिनी का अध्ययन करने लगेंगे तो उनके लिये,

"आहारोऽपि न रोचते"

इस उक्ति के साथ ही,

"संसारोऽपि न रोचते"

यह उक्ति चरितार्थ हो सकेगी अर्थात् कामक्रोधमदलोभमोह आदि माया के परिवार से युक्त यह भौतिक संसार नहीं रुचेगा। उसे तो,

"सर्वमिदमहं च वासुदेवः"

की भावना उत्पन्न होने से,

"निजप्रभुमय देखहिं जगत्"

"वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

आदि के अनुसार सम्पूर्ण जगत् रामरूप में ही भासित होने लगेगा। वस्तुतः "प्रेमदर्शिन" के सम्बन्ध में कुछ कहना मूकास्वादनवत् है जो इसका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आस्वादन करेगा वही इसका रस जान सकता है। मेरी वाणी में वह शक्ति नहीं जो इसकी वास्तविकता पर प्रकाश डालूँ।

प्रेमदर्शिनी की भाषा में गद्यकाव्य का सा आनन्द आता है तथा भाव में तो प्रेम समुद्र ही लहराता है। प्रेमदर्शिनी व्याख्या के अतिरिक्त "शरणागति-रहस्य" शरणागति भक्ति का बहुत ही सरस एवं अद्भुत तथा विस्तृत विवेचन किया गया है इसका अध्ययन करते ही हृदय में प्रेमसागर लहराने लगता है। भक्त शरणागतिभक्ति की ओर आकृष्ट होने लगता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इसके लेखक ने अपना प्रेम पूर्ण हृदय ही इस विवेचन में उँड़ेल दिया है। अवश्य ही प्रेमपूर्वक इस प्रेमदर्शिनी का अध्ययन्-मनन करना चाहिए। वाणी से कोई इसके माधुर्य का अनुभव दूसरे को नही करा सकता। "सूर" के शब्दों में

"सो जानै जो पावै"

यही कहा जा सकता है इस लेख में जो कुछ तथ्य होगा वह सन्त-महात्मा तथा सद्ग्रन्थों की कृपा होगी। जो त्रुटियां होंगी उसका उत्तरदायी लेखक होगा। विज्ञजन

"हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्"

इस न्याय से उपादेय को ग्रहण करेंगे, हेय के लिये मुझे क्षमा प्रदान करेंगे। अब मैं निम्नलिखित पद्यों के साथ अपने दो शब्द को समाप्त करता हूं।

प्रेमदर्शिनी में बहती है भक्ति जाह्नवी निर्मलधार।
जो जन सादर अवगाहेंगे उनका है भव से उद्धार॥
सब विषयों के विषमय सुख से उनको होगा तीव्र विराग।
परमशान्ति उर में आयेगी हरि चरणों में नव अनुराग॥
सफल जन्म मानव का होगा ईश प्राप्ति है जिसका लक्ष्य।
पाप ताप सब भस्म बनेंगे हरि के चरणों के समक्ष॥
हरि के वरद करों की उस पर परम सौम्य छाया होगी।
मुक्ति सामने हाथ जोड़कर खड़ी विफलमाया होगी॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यहीं प्रार्थना भक्तजनों से इसजन की है बारम्बार ।
प्रेमपूर्ण हो पाठ करेंगे प्रेमदर्शिनी का प्रतिवार ।।

सन्त महात्माओं के
चरणरज का अभिलाषी
पारसनाथ पाण्डेय (प्रणत)
पाण्डे का पूरा
आजमगढ़ ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

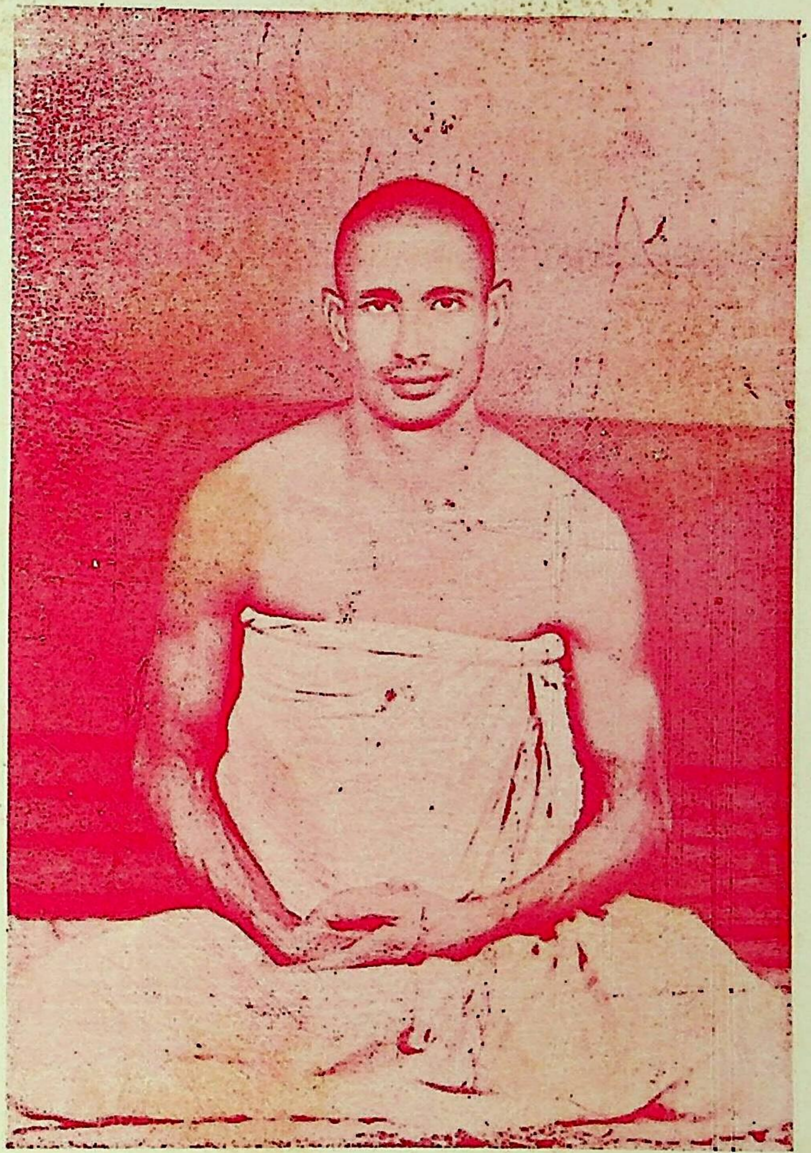

प्रेमावतार ब्रह्मविद्वरिष्ठ अनन्त श्री विभूषित

परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री स्वामी स्वतंत्रानंद जी महाराज

CC-0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वसुदेव सुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

प्रार्थना

यों तो मैं अत्यन्त विषय लम्पट, बहिर्मुख, शिश्नोदरपरायण एवं महान् पतित हूँ। मुझ जैसा दुष्ट, दुर्मति, शायद ही कोई हो। इसलिए इस पावन भक्ति महाशास्त्र पर कोई विचार ही नहीं उठता और न कोई अनुभव ही है। अतः इस पर कुछ लिखने में डरता हूँ। परन्तु भगवान् की, पता नहीं कौन सी अहैतुकी दया है कि वे एक बार मुझे प्रेरित करके श्रीमद्भगवद्गीता की "तत्त्वदर्शिनी" नामक टीका लिखवाए और पुनः अधिकारी न होने पर भी इस गुह्यतम भक्तिशास्त्र की भी प्रेरणा देकर "प्रेमदर्शिनी" नामक टीका करा रहे हैं। पता नहीं क्या उनकी लीला है। वे तो पतितपावन, पतितोद्धारक, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र ही ठहरे, इसमें किसी का हाथ ही क्या ? अतः जैसी उनकी मरजी, वैसे नाचना ही है। हो न हो, यह भगवान् की मुझ नारकी, अधम, पामर पर अहैतुकी दया ही है, जो इस भक्तिदर्शन के माध्यम से उद्धार करना चाहते हैं। अच्छा, तो प्यारे ! यदि इसी पर उतारू हो तो जो मैं मागूंगा उसे देना पड़ेगा। वह मांग यही है कि जैसे मैं विषयलम्पट एवं शिश्नोदर परायण हूँ वैसे ही अपनी रूपमाधुरी के प्रति लीला के प्रति, नाम के प्रति, धाम के प्रति लम्पट बना क्यों नहीं देते ? अपने परायण कर क्यों नहीं लेते ? एक बार अपने उस साक्षान्मन्मथमन्मथः अनन्तानन्त कामदेव के भी मन को मर्दन करने वाले, शोभा के धाम निरतिशयरूप की झाँकी करा क्यों नहीं देते ? इसमें तुम्हारा क्या लगता है ? हृदयेश ! एक बार विरहाग्नि को प्रज्वलित करने वाली अपनी मधुमयी मुरली की मधुर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ध्वनि से मुग्धकर, अपने नाम, रूप, लीला, धाम के लिए पागल बना दो। अपनी रूपमाधुरी का दर्शन देकर अपने शरण में ले न लो। हृदयतन्त्री के तार को एक बार झंकृत कर न दो। प्राणेश ! मेरे रग-रग में, नस-नस में, तन में, मन में, वदन में, प्राण में अपनी मधुमयी, अमृतमयी दिव्यभक्ति का संचार कर न दो। इस बहरे जड़ के कान में दिव्यमन्त्र को फूंककर जगा न दो। सर्वेश ! मैं सर्वदा आप ही के प्रेम में तन्मय रहूँ, आपके प्रेम में हँसूं, रोऊँ, गाऊँ, नाचूं। आप ही से क्रीड़ा, विनोद, रति, प्रीति करूं, आप ही को सर्वत्र सर्वदा देखूं, सुनूं समझूं।

बस, नाथ ! इतनी सी इस दास की प्रार्थना है। प्रभो यों तो मैंने इन प्रबल इन्द्रियों एवं मन को वश में करने का बड़ा प्रयत्न किया। तप, त्याग, तितिक्षा, ज्ञान, वैराग्य से इनका निग्रह करना चाहा, परन्तु असमर्थ रहा। नाथ ! अब तो आपका ही एक आश्रय है, उबारिए या बोरिए। आपका पतितपावन नाम तो विश्वविख्यात ही है। इसी से आपने गणिका, गज, गीध, अजामिल जैसे अनन्त-अनन्त पतितों का उद्धार किया है। इसके लिए वेद, पुराण, शास्त्र—सब साक्षी हैं। इसीलिए प्रभो ! मेरी भी यही प्रार्थना है कि केवल एक बार एक कृपा की दृष्टि से निहार दीजिए। करुणासिन्धो ! बस उतने से ही मुझ दीन हीन अधम, अधीन का उद्धार हो जायगा। प्रभो ! अब मैं गजेन्द्रवत् भव-अम्बुनिधि में डूबने ही जा रहा हूँ। यह कृपा के पुकार की अन्तिम आवाज है, उबारो, नहीं तो डूबा।

प्रभो ! यह आपका एक कौतुक होगा और मुझ अधम का उद्धार होगा।

॥ नमोऽस्तुते सर्वत एव सर्व ॥

श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे !

हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !

अबोध

स्वतन्त्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ

सांकेतिक चिह्नों का स्पष्टीकरण

संख्या	संकेत	स्पष्ट
१	ऋ० सं०	ऋग्वेद संहिता
२	य० सं०	यजुर्वेद संहिता
३	सा० सं०	सामवेद संहिता
४	अथ० सं०	अथर्ववेद संहिता
५	ई० उ०	ईशावास्योपनिषद्
६	क० उ०	कठोपनिषद्
७	मु० उ०	मुण्डकोपनिषद्
८	तै० उ०	तैत्तिरीयोपनिषद्
९	छा० उ०	छान्दोग्योपनिषद्
१०	बृ० उ०	बृहदारण्यकोपनिषद्
११	श्वे० उ०	श्वेताश्वतरोपनिषद्
१२	ते० बि० उ०	तेजोबिन्दूपनिषद्
१३	मैत्रा० उ०	मैत्रायण्युपनिषद्
१४	नि० उ०	निरालम्बोपनिषद्
१५	अ० उ०	अध्यात्मोपनिषद्
१६	यो० शि० उ०	योगशिखोपनिषद्
१७	अक्ष्यु०	अक्ष्युपनिषद्
१८	रा० उ०	राधोपनिषद्
१९	कृ० उ०	कृष्णोपनिषद
२०	गो० पू० उ०	गोपालपूर्वतापनीयोपनिषद्
२१	गो० उ० उ०	गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद्
२२	त्रि० म० उ०	त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद्
२३	नृ० पू० उ०	नृसिंह पूर्वतापनीयोपनिषद्
२४	नृ० उ० उ०	नृसिंहोत्तर तापनीयोपनिषद्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संख्या	संकेत	स्पष्ट
२५	ना० प० उ०	नारद परिव्राजकोपनिषद्
२६	प० ब्र० उ०	पञ्चब्रह्मोपनिषद्
२७	क० रु० उ०	कठरुद्रोपनिषद्
२८	शा० उ०	शाण्डिल्योपनिषद्
२९	पैं० उ०	पैंगलोपनिषद्
३०	स० र० उ०	सरस्वती रहस्योपनिषद्
३१	वज्र० उ०	वज्रसूचिकोपनिषद्
३२	श्रीजा० उ०	श्रीजाबालदर्शनोपनिषद्
३३	म० ब्रा० उ०	मण्डलब्राह्मणोपनिषद्
३४	अन्न० उ०	अन्नपूर्णोपनिषद्
३५	व० उ०	वराहोपनिषद्
३६	कै० उ०	कैवल्योपनिषद्
३७	कलि० उ०	कलिसंतरणोपनिषद्
३८	म० उ०	महोपनिषद्
३९	मुक्ति० उ०	मुक्तिकोपनिषद्
४०	अथ० उ०	अथर्वणोपनिषद्
४१	भा० उ०	भाल्लेयोपनिषद्
४२	यो० वा०	योगवासिष्ठ
४३	वे० द०	वेदान्तदर्शन
४४	सां० द०	सांख्य दर्शन
४५	यो० द०	योगदर्शन
४६	ब्र० सं०	ब्रह्मसंहिता
४७	अहि० सं०	अहिर्बुध्न्य संहिता
४८	वृहद्व० सं०	वृहद्वसिष्ठ संहिता
४९	गा० सं०	गालवीय संहिता
५०	सू० सं०	सूत संहिता
५१	ग० सं० मथु०	गर्ग संहिता मथुरा खण्ड

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संख्या	संकेत	स्पष्ट
५२	श्री मद्भा०	श्री मद्भागवत महापुराण
	श्री मद्भा० मा०	श्री मद्भागवतमहापुराणमाहात्म्य
५३	वि० पु०	विष्णु पुराण
५४	शि० पु०	शिव पुराण
५५	ब्र० वै० पु०	ब्रह्मवैवर्त पुराण
५६	बृ० ना० पु०	बृहन्नारदीय पुराण
५७	अ० पु०	अग्नि पुराण
५८	भवि० पु०	भविष्य पुराण
५९	स्क० पु०	स्कन्द पुराण
६०	लि० पु०	लिंग पुराण
६१	प० पु०	पद्म पुराण
६२	ग० पु०	गरुण पुराण
६३	नृ० पु०	नृसिंह पुराण
६४	का० पु०	कालिका पुराण
६५	आत्म पु०	आत्म पुराण
६६	आ० पु०	आदि पुराण
६७	वि० ध०	विष्णु धर्मोत्तर
६८	शि० ध०	शिव धर्मोत्तर
६९	महा० शा०	महाभारत शान्तिपर्व
	महा० अनु०	महाभारत अनुशासनपर्व
७०	श्री० गी०	श्रीमद्भगवद्गीता
७१	अ० गी०	अष्टावक्रगीता
७२	अव० गी०	अवधूत गीता
७३	पा० गी०	पाण्डव गीता
७४	आ० स्मृ०	आपस्तम्ब स्मृति
७५	द० स्मृ०	दक्षस्मृति
७६	याज्ञ० स्मृ०	याज्ञवल्क्य स्मृति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संख्या	संकेत	ग्रन्थ
७७	बृ० गौ०	बृहद्गौतमीय
७८	शा० भ० सू०	शाण्डिल्य भक्ति सूत्र
७९	भ० मी० सू०	भक्ति मीमांसा सूत्र
८०	दै० मी० सू०	दैवी मीमांसा सूत्र
८१	ना० पा०	नारद पाञ्चरात्र
८२	वा० रा०	वाल्मीकि रामायण
८३	अद्भु० रा०	अद्भुत रामायण
८४	अध्या० रा०	अध्यात्मरामायण

नोट—(१) प्रमाण में आए हुए जिन पदों का अर्थ टिप्पणी में एक बार कर दिया गया है उनका पुनः अर्थ नहीं किया गया है।

(२) श्रुति आदि के जो मंत्र बहुत सरल एवं सुस्पष्ट हैं उनकी टिप्पणी नहीं दी गई है।

(३) जिन पदों का भावार्थ या शब्दार्थ लेख में आ गया है, उनकी भी टिप्पणी नहीं दी गई है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ ॐ ॥

"अजायमानो बहुधा विजायते" [शु० य० सं० ३१/१८]

ॐ सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ।
नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥
श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूपिणे
कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे ।
विश्वोद्भवस्थाननिरोधहेतवे
नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेऽनिशम् ॥

"नारं ददाति नारदः" जो ज्ञान, वैराग्य एवं प्रेम की मूर्ति, प्रेम में तन्मय अर्थात् प्रेम की दृष्टि, प्रेम की गति, प्रेम की मति, प्रेम की चेष्टा, प्रेम की निष्ठा, प्रेम के परायण, प्रेम स्वरूप, आत्माराम, आप्तकाम, आत्मतृप्त, आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन, आत्मानन्द, सर्वभूतहितैषी, लोकोपकारार्थ हृदय-तन्त्रीरूप वीणा की झनकार करते हुए लोकमलापह हरिगुणगान करते हुए सबके लक्ष्यभूत नार-प्रेमास्पद परमानन्दचिन्मूर्ति मधुरातिमधुर मुरली-मनोहर आनन्दकन्द सच्चिदानन्दघन पीताम्बरधारी, वृन्दावनविहारी वनमाली नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण के रूपमाधुरी का पान-आलिंगन कराते, वे नारद हैं। ऐसे ही कहा भी है :—

"नारदाद्देवदर्शनात्"

इस प्रकार नारद का स्वभाव ही है भगवान् का दर्शन कराना। अतः ऐसे धन्यातिधन्य ब्रह्मा के मानस पुत्र चिन्मय अजर, अमर, भक्तिभास्कर प्रधानाचार्य भगवान् नारद को भक्तिप्राप्त्यर्थ सहस्रशः नमस्कार है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देवर्षि नारद "नारदपाञ्चरात्र" आदिक ग्रन्थों के उपदेश के अनन्तर ब्रह्मा जी के आदेशानुसार

"यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति"

भक्ति एवं भागवत के विस्तार के लिए तथा भक्तिदेवी के सम्मुख जो उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि,

"अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ।
तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये ॥"

अन्य सब धर्मों का तिरस्कार करके महोत्सवपुरःसर यदि लोक में मैं आपका प्रवर्तन न कर दूँ तो मैं हरि का दास नहीं ।

अतः उसकी रक्षा के लिए ज्ञान-कर्म की अपेक्षा से रहित सर्वशास्त्र सम्मत सर्वग्राह्य समस्त साधनों से अतिसुगम सर्वोत्कृष्ट इस प्रेम प्रधान विशुद्ध भक्तिशास्त्र के आरम्भ करने की प्रतिज्ञा करते हुए बोले ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"अजायमानो बहुधा विजायते"

शरणागति-रहस्य

" सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥"

" चतुर्मुखादीनां सर्वेषामपि विना विष्णुभक्त्या -
कल्पकोटिभिर्मोक्षो न विद्यते ।" " भक्तिप्रियो माधवः "

" भक्तिवश्यः पुरुषः " " भक्तिप्रियो निरुपद्रवः "
" यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥"

" दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥"
" एतां महामायां तरन्त्येव ये विष्णुमेव-
भजन्ति नान्ये तरन्ति कदाचन ।"

चित्रक हरदेव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ॥

॥ गोपीजन वल्लभ चरणान् शरणं प्रपद्ये ॥
॥ श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

इस प्रथम सूत्र में नारद जी भक्ति की व्याख्या कर रहे हैं।

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः ॥१॥

अब हम भक्ति की व्याख्या करेंगे ॥१॥

'भज् सेवायां' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' इस पाणिनिसूत्रानुसार 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने पर भक्ति शब्द निष्पन्न हुआ है। जिसमें प्रत्यय का अर्थ है प्रेम एवं धातु का अर्थ है सेवा।

सेवा शारीरिक क्रिया है। सच्ची सेवा में प्रेम का होना अनिवार्य है। बिना प्रेम के सेवा कष्टप्रद हो जाती तथा स्पृहणीय भी नहीं रहती। अतः प्रेम की पूर्णता सेवाभाव में ही निहित है। ऐसे ही कहा भी है कि :—

"भज' धातोस्तु सेवार्थः प्रेमा 'क्तिन्' प्रत्ययस्य च।
स्नेहेन भगवत्सेवा भक्तिरित्युच्यते बुधैः ॥ (ग० पु०)

श्रुति भगवती भी यही कहती हैं :—

'प्रेम पूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्यभिधीयते।'

इसी स्नेह-प्रेम को अनुराग-प्रीति-आसक्ति भी कहते हैं। भगवान् कपिल निर्गुण अहैतुकी परा-प्रेमा भक्ति के विषय में कहते हैं कि :—

"मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥
सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ।
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥'' (श्री० भा० ३/२६/११-१४)

जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखण्डरूप से समुद्र की ओर प्रवाहित होता रहता है उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मन की गति तैलधारावत् अविच्छिन्नरूपेण मुझ सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाने को निष्काम-अहैतुक निर्गुण भक्तियोग कहते हैं। ऐसे निष्काम भक्त दिए जाने पर भी मेरी सेवा—भजन के अतिरिक्त सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य एवं सायुज्य मुक्ति को नहीं लेते। यह मुक्ति को भी तिरस्कृत करने वाला आत्यन्तिक भक्तियोग है। इसके द्वारा भक्तगण त्रिगुणात्मक माया का अतिक्रमण करके मेरे प्रेमरूप अप्राकृत स्वरूप को प्राप्त करते हैं। यही भक्ति रसायनकार भी कहते हैं :—

"द्रुतस्य भवगद्धर्माद्धारावाहिकतां गता ।
सर्वेशे मनसो वृत्तिः भक्तिरित्यभिधीयते ॥" (भक्ति रसायन)

भगवद्धर्मों के सेवन से द्रवित चित्तवृत्तियों का निरन्तर तैलधारावत् अविच्छिन्नरूपेण सर्वेश्वर भगवान् की ओर प्रवाहित होना ही भक्ति है।

"द्रवीभावपूर्विका मनसो भगवदाकारतारूपा सविकल्पवृत्तिः भक्तिः ।" (भक्ति र०)

भगवद्भाव से द्रवित होकर भगवान् के साथ चित्त के सविकल्प तदाकारभाव को भक्ति कहते हैं।

परमेश्वर शिव ने भी नारदपाञ्चरात्र में यही कहा है :—

"सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् ।
हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते ॥" (ना० पा०)

तन्मयतापूर्वक इन्द्रियों के द्वारा सम्पूर्ण उपाधियों से रहित विशुद्ध भगवत्सेवा ही भक्ति कही जाती है।

"अनन्यममताविष्णौ ममताप्रेमसंगता ।
भक्तिरित्युच्यते भीष्मप्रह्लादोद्धवनारदैः ॥"

जिस प्रकार संसार के अन्य पदार्थों यानी स्त्री-पुत्र आदि में ममता है उसी प्रकार भगवान् में अनन्य ममता एवं प्रेम होने को भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नारदादि भागवताचार्य भक्ति कहते हैं। तथा यही भक्तिरसामृतसिन्धुकार भी कहते हैं :—

"अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥" (भक्तिरसामृतसिन्धु)

अन्य समस्त अभिलाषाओं से शून्य, ज्ञान एवं कर्मादि से अनावृत अनाच्छादित-अखण्डित कृष्णानुकूल अनुशीलन को उत्तम भक्ति कहते हैं। शाण्डिल्यऋषि भी यही कहते हैं:—

"भक्तिर्मनस उल्लासविशेषः" (भ० मी० सू०)

मन का भगवान् के प्रति विशेष उल्लसित-उत्कण्ठित होना ही भक्ति है। भगवान् भी इस पतितपावनी भक्ति भागीरथी की महत्ता के विषय में स्वयं कहते हैं:—

"प्रेम्णा समानं भुवि नास्ति किंचित्" [ग० सं० मथु० ४/२२]

प्रेम-भक्ति के समान इस भूमण्डल में कोई भी सुगम, श्रेष्ठ एवं पवित्र साधन,

"न भूतो न भविष्यति"

न हुआ, न है, न होगा। सांख्याचार्य भगवान् कपिल भी यही कहते हैं:—

"न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ।†
सदृशोऽस्ति शिवःपन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये ॥" [श्री मद्भा० ३/२५/१९]

भगवान् सनक का भी यही कथन है:—

"त्रैलोक्ये भक्ति सदृशः पन्था नास्ति सुखावहः" [शि० पु० रु० सं० ख० २३/२८]
"हरि भक्तिः पराणां कामधेनूपमा स्मृता" [बृ० ना० पु० ४/१२]

त्रैलोक्य में भगवत्प्राप्ति के लिये भक्ति के सदृश अन्य कोई भी कल्याणमय एवं सुखप्रद मार्ग नहीं है। यह प्रेम लक्षणा पराभक्ति सर्व कामदुहा महाकामधेनु है। इसी से अर्थ, धर्म काम, मोक्ष—समस्त पुरुषार्थों की सिद्धि होती है।

---

† योगियों को भगवत्प्राप्त्यर्थ सर्वात्मा भगवान् के प्रति की हुई अनन्य भक्ति के सदृश अन्य कोई भी कल्याणमय मार्ग नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"भक्तिरेव परोलाभः" [श्रा० पु० २६/४४]

"भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते ।" (श्री मद्भा० ११/२६/३०)

यही मानव जीवन का अंतिम सर्वोपरि महालाभ है जिसकी प्राप्ति पर फिर और कुछ पाना अवशिष्ट नहीं रह जाता ।

"भक्त्या सर्वसिद्धयः सिद्ध्यन्ति" (त्रि० म० उ० ८/१)

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार यही समस्त सिद्धियों, समस्त सुखों, एवं ज्ञान-विज्ञान की एकमात्र जननी—मूलकारण है । इसीलिये

"श्रेष्ठा पञ्चविधा मुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी" (ब्र० वै० पु० कृ० ६७/८)

पंच प्रकार की मुक्तियों एवं ब्रह्मानन्द को तिरस्कृत करने वाली

"रसो वै सः" (तै० उ० २/७)

इस रसस्वरूपा दिव्यातिदिव्या मधुमयी सुदुर्लभा भक्ति के लिये

"आत्मारामाश्च मुनयोः" (श्री मद्भा० १/७/१०

आत्माराम जीवन्मुक्त मुनि भी सदैव लालायित-उत्कण्ठित रहते हैं । कहां तक कहा जाय,

"चतुर्मुखादीनां सर्वेषामपि विना विष्णुभक्त्या कल्पकोटिभिर्मोक्षो न विद्यते ।" (त्रि० म० उ० ८/१)

इसके कृपा कटाक्ष के विना तो ब्रह्मादिक देवताओं की भी कोटि कल्प में मुक्ति संभव नहीं । अतः

सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रय"

"भक्तियोगो निरुपद्रवः" (त्रि० म० उ० ८/१)

समस्त कष्टप्रद, विघ्नबहुल योगज्ञान आदि साधनों को सादर दूर से ही छोड़कर एकमात्र निरुपद्रव भक्ति का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए । क्योंकि

"भक्तिवशः पुरुषः" (श्रुति)

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार मोक्षप्रदाता परात्पर ब्रह्म भी इस चिन्मयी भक्ति के सदैव वश में रहा करते हैं । फिर इसकी महत्ता की इससे बड़ी विशेषता और क्या हो सकती है । यह तो,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"जन्मान्तरसहस्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः ।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥" (वि० ध०)

सहस्रों जन्मों के अनन्तर तप, ज्ञान एवं समाधि से समाराधित विशुद्धान्तःकरण किसी विरले महाभाग्यवान् पुरुष को ही प्राप्त होती है।

"कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरःस्थितः" (श्री मद्भा० मा० २/१६)

इस कलियुग में केवल भक्ति, केवल भक्ति ही समस्त साधनों का सार-सर्वस्व है। इसी से जीव का आत्यन्तिक कल्याण होता है। इसी से जीव आनन्दकन्द सच्चिदानन्दघन परात्पर ब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र का प्रत्यक्षीकरण करके कृतकृत्य जीवन्मुक्त होता है। इसमें,

"हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः" (श्री मद्भा० मा० २/१८)

परम प्रेम प्रमाणभूता अनन्त-अनन्त गोपियां परम प्रमाण हैं। इसी रसस्वरूपा भक्तिभागीरथी से

"रसो वै सः" (तै० उ० २/७

(इस श्रुतिवचनानुसार) रसस्वरूप रसराजरासेश्वर के रसार्णवत्व, दिव्यत्व, चिन्मयत्व, सद्घनत्व, एवं आनन्दघनत्व का बोध होता है। इसी अमृतमयी चिन्मयी मधुमयी भक्ति से मधुपति के मधुमय,

"परमानन्दचिन्मूर्तिर्मधुरोमुरलीधरः" (श्री मद्भा० मा० ४/४)

परमानन्द अमृतमूर्ति से अमृत की वृष्टि होती। इसी से जीव परम प्रेमास्पद के दिव्यातिदिव्य परम नाम, रूप, लीला, धाम में प्रेम—तन्मयता—तल्लीनता-तद्रूपता को प्राप्त कर प्रेम की मूर्ति बनकर प्रेम से,

"उन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः" (श्री मद्भा० ११/२/४०)

उन्मत्तवत् लोकातीत प्रगाढ़ प्रेमावस्था में प्रेमस्वरूप प्रियतम से रास रचता,

"आत्मरतिरात्मक्रीड" (छा० उ० ७/२५/२)

(इस श्रुति सिद्धान्तानुसार) क्रीडा, विनोद, रति, प्रीति को प्राप्तकर तन्मय हो ताण्डव नृत्य करता और भगवत्संयोग-वियोगजन्य अतिहर्षोल्लास, करुणक्रन्दन एवं दिव्यमहाभाव से सम्पन्न हो,

"सर्वं कृष्णमयं जगत्" (ब्र० वै० पु०)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समस्त ब्रह्माण्ड को कृष्ण स्वरूप समझता हुआ,

"मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति" (श्री मद्भा० ११।१४।२४)

इस भगवद्वचनानुसार भगवद्भक्ति से युक्त हो त्रिभुवन को पावन कर देता। उस काल में उसके हृदय में परमानन्द की महाबाढ़ आ जाती। जिसमें, समस्त ब्रह्माण्ड निमग्न हो जाता।

"सर्वाः सुखमया दिशः" (श्री मद्भा० ११।१४।१३)

उसके लिए सारी दिशायें, समस्त ब्रह्माण्ड सुखमय-आनन्दमय हो जाता। वह

"रसो ब्रह्म रसं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।" (तै० उ० २।७)

रसस्वरूप ब्रह्म के रसानन्द का रसास्वादन करके महामहा आनन्दी हो जाता। उसकी,

'यत्रैव यत्रैव मनो मदीयं
तत्रैव तत्रैव तव स्वरूपम्।
यत्रैव यत्रैव शिरो मदीयं
तत्रैव तत्रैव पदद्वयं ते॥"

इस नियमानुसार दृष्टि—मनोवृत्ति जहाँ जहाँ जाती, वहीं वहीं उस सर्वाश्चर्यमय सच्चिदानन्द सौन्दर्यसारस्वरूप कृष्ण को देखता। तथा जहां जहां उसका सिर होता, वहाँ वहाँ आनादवर्षी महापाद पद्म होता।

इस प्रकार वह भगवत्कृपा लभ्य महानिर्वाणप्रदायिनी सच्चिदानन्दस्वरूपा साध्या—परम प्रेमलक्षणा पराभक्ति को प्राप्त कर सर्वत्र सर्वदा सर्वरूपों, सर्व अवस्थाओं में सर्वस्वरूप सर्वात्मा सर्वेश्वर को,

"यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा। (छा० उ० ७।२४।१)

"स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं
विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन
आत्मानन्दः स स्वराड् भवति॥" (छा० उ० ७।२५।२

देखता, सुनता, समझता हुआ, कृष्णानन्द, भूमानन्द, निरतिशयानन्द, अखण्डानन्द, अक्षयानन्द को प्राप्तकर समस्त कामनाओं, वासनाओं, ईच्छाओं से मुक्त आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्मक्रीड, आत्माराम स्वाराज्य पर अभिषिक्त सार्वभौम सम्राट्-परिव्राट् हो निहाल कृतकृत्य हो जाता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ॥

अब इस सूत्र में नारद जी भक्ति के वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन कर रहे हैं।

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ॥२॥

वह भक्ति इस प्रत्यक्ष परमात्मा में परमप्रेमरूपा है ॥२॥

यह भक्ति,

"ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानंदविग्रहः। †
अनादिरादि गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥" (ब्र० सं० ५/१)
"यदेष परमब्रह्म सर्वतोऽपि बृहत्तमम्। ‡
सर्वस्यापि बृंहणत्वात् कृष्णइत्यभिधीयते ॥"
"कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः §
तयोरैक्यं परब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥" (गो० पू० उ० १/१)
"कृष्ण एव परो देवः" (गो० उ० उ०)
"गौरकृष्णः हरिः साक्षात्" (कृ० उ०)
"कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्" (श्रीमद्भा० १/३/२८)
"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्" (श्री० गी० १४/२७)

---

† श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं, सच्चिदानन्द विग्रह हैं, अनादि हैं और (सबके) आदि मूलकारण हैं। गोविन्द सब कारणों के कारण हैं अर्थात् उनका कारण कोई नहीं है।

‡ जो परमब्रह्म है, सबसे बृहत्तम है, सबको फैलाए हुए है, वही श्रीकृष्ण कहलाता है।

§ 'कृषि' भूवाचक (सत्तावाचक) शब्द है और 'ण' आनन्दवाचक—इन दोनों का ऐक्य परब्रह्म कृष्ण कहा जाता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनादि अनन्त समस्त कारणों के भी परमकारण साक्षात् सच्चिदानन्द-घन परात्पर ब्रह्म परमेश्वर आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र में परमप्रेमरूपा है। यह परमानन्दरूपा दिव्यातिदिव्य रसरूपा परमप्रेमाभक्ति

"क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत सुदुर्लभा।
सान्द्रानन्द विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा॥" (भक्तिरसामृत सिन्धु)

समस्त शोक-मोह आदि क्लेशों को नष्ट करने वाली, सम्पूर्ण मङ्गलों की जननी, मोक्ष से भी महान्, अत्यन्त दुर्लभ, घनीभूत, आनन्दस्वरूपा तथा कृष्णाकर्षिणी—कृष्ण को भी अपनी मधुरिमा से बलात् चुम्बकवत् आकृष्ट करने वाली अर्थात् अपने वश में रखने वाली है। इसीलिए,

"त्वं तु भक्तिः प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका।
त्वयाऽऽहूतस्तु भगवान् याति नीच गृहेष्वापि॥" (श्रीमद्भा० मा० २/३)

अपने इस प्राणाधिका परमप्रिया, परमाराध्या, भक्ति महादेवी श्रीराधारानी के बुलाने पर भगवान् नीचों के भी घर अपने ऐश्वर्य का ध्यान न देते हुए चले जाते हैं। इसी सुदुर्लभ अलौकिक परम प्रबल प्रेम प्रताप से भगवान् निर्गुण निर्विशेष होने पर भी सगुण सविशेष हो जाते हैं। धन्य है इन भक्ति महादेवी के महासामर्थ्य एवं महाविलास को, जो सर्वतन्त्रस्वतन्त्र सर्वेश्वर को परतन्त्र--दास बना देती हैं। ये अपने प्रेममय वरदकर के द्वारा प्रेमी को प्रेम से प्रेम की घूंटी पिलाकर सुसज्जित-अलंकृत-परिष्कृत-स्वच्छ शुद्ध बनाकर संसार से उसका नाता तोड़कर प्रमप्रेमास्पद प्रियतम से नाता जोड़ देती हैं। जो अनादि कालीन जीव के नित्य सखा भगवान् भवप्रेम के कारण विस्मृत-वियुक्त हो गए थे, उनको सामने समक्ष उपस्थित करके उनसे आत्यन्तिक रति, प्रीति, क्रीड़ा, विनोद के द्वारा तन्मय तद्रूप करके उनकी गोदी में बिठाकर परमानुराग से सर्वत्र प्रेम की झांकी कराकर जीव को निहाल कृतकृत्य कर देती हैं। सचमुच इस परमानन्दचिन्मूर्ति,

"सा परानुरक्तिरीश्वरे" (शा० भ० सू० २)

ईश्वरीय परमानुरक्ति को ही परमप्रेमा भक्ति कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूपम

अब इस सूत्र के द्वारा भगवान नारद भक्ति के आन्तरिक स्वरूप का प्रतिपादन कर रहे हैं।

अमृत स्वरूपा च ॥ ३ ॥

यह परम प्रेमा भक्ति अमृतस्वरूपा है ॥ ३ ॥

यही श्रुति एवं महर्षि शाण्डिल्य भी कहते हैं:—

"*ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति*" (छा० उ० २/२३/१)

"*एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति*" (बृ० उ० ४/४/१४)

"*य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति*" (श्वे० उ० ४/२०)

"*विद्वानमृत इह भवति*" (नृ० पू० उ० १/६)

"*तत्संस्थस्य अमृतत्वोपदेशात्*" (शा० भ० सू० ३)

'ब्रह्म संस्थ अमृत को प्राप्त करता है।' 'ब्रह्मवेत्ता अमृत-अमर हो जाते हैं।' 'जो इस ब्रह्म को इस प्रकार से जानता है वह अमृत-अमर हो जाता है।' "विद्वान् यहीं अमृत-अमर हो जाता है" ब्रह्म संस्थ को अमृतत्व की प्राप्ति होती है ऐसा उपदेश होने से।"

भगवान् भी यही कहते हैं कि—

'*मयि भक्तिर्हिभूतानाममृतत्वाय कल्पते*' (श्री मद्भा० १०/८२/४५)

मुझ अमृत की अमृतस्वरूपा भक्ति अमृताभिलाषियों को अमृतत्व प्रदान करती है। यह भगवदभिन्न भगवत्स्वरूपा सुदुर्लभा भक्ति साधन साध्य नहीं, अपितु भगवत्कृपासाध्य है। क्योंकि श्रुति की भी यही स्पष्ट घोषणा है कि:—

"*यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः*" (मु० उ० ३/२/३)

इसीलिये,

"*अमृतवपु,*" (स्मृति)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नैते भक्तिसुखाम्भोधेः परमाणु तुलामपि ॥" (भक्ति रसामृत सिंधु)

सहस्रों जन्मों के तप, ज्ञान समाधि आदि सहस्रों साधनों से दुःप्राप्य अपने परमानन्दस्वरूप सुधासिन्धु के एक परमाणु से भी ब्रह्मानन्द को तिरस्कृत करने वाली परम स्वतन्त्रा,

"यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा । §
विलुठति चरणाग्रे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ॥" (ना० पा०)

मोक्षसाम्राज्य की स्वामिनी सुदुर्लभा अमृतस्वरूपा वरिष्ठा इस अहैतुकी भक्ति के लिए,

"आत्मारामाश्च मुनयो....." (श्री मद्भा० १/७/१०)

अज शिवशुकसनकादि नारदव्यासविदेहादि ब्रह्मविद्वरिष्ठ आत्मारामी योगीन्द्र मुनीन्द्र भी लालायित-मुग्ध रहते हैं और बरबस ब्रह्मसुखबिसारे अपने को भूले, इस पर निछावर रहते हैं, तथा मधुपवत् अतृप्त हो, सदैव इसकी मधुरिमा का पान करते रहते हैं। इसीलिए कृष्णाकर्षिणी अमृतस्वरूपा भक्ति पर बिके हुए अनन्यभक्त विल्वमंगल कह रहे हैं कि:—

"क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते कृष्णभावरसभाविताममतिः ।
तत्र मूल्यमपि लौल्यमेकलं जन्मकोटि सुकृतैर्न लभ्यते ॥"

कृष्णभक्ति रसामृत से सिक्त मति जहां कहीं भी मिले, परम उत्कण्ठारूप मूल्य के द्वारा उसे शीघ्रातिशीघ्र खरीद लो, अन्यथा करोड़ों जन्मों के पुण्यों से भी उसकी प्राप्ति संभव नहीं। सचमुच, अमृतस्वरूपाभक्ति की अमृतमयी महिमा का गान ब्रह्मा विष्णु महेश शेष शारदादि भी करने में असमर्थ हैं। यह भक्त को अपनी अमृतमयी गोदी में बिठाकर अपनी अमृतमयी दृष्टि, अमृत चेष्टा, अमृत वरदकर के द्वारा दिव्यामृत की घूँटी पिलाकर अमृत बनाकर यह अनुभव करा देती है कि प्रकृति अमृत, पुरुष अमृत, जीव अमृत शिव अमृत, आकाश अमृत, वायु अमृत, अग्नि अमृत, जल अमृत, पृथ्वी अमृत, सूर्य अमृत, चन्द्र अमृत, दिक् अमृत, विदिक् अमृत,

§ जिसकी श्री मुकुन्द के चरणों में परमानन्दरूपा भक्ति होती है, मोक्षसाम्राज्य श्री उसके चरणों में लोटती हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जड़ अमृत, चेतन अमृत, ज्ञानेन्द्रिय अमृत, कर्मेन्द्रिय अमृत, प्राण अमृत, मन अमृत, बुद्धि अमृत, चित्त अमृत, अहं अमृत,—सब अमृतस्वरूप ही हैं। अमृत से भिन्न अणुमात्र भी नहीं है। इस अवस्था में प्रेमामृत-दिव्यामृत से सिक्त प्रेमी अमृतार्णव में अमृत हो, अमृत का गोता लगता। उसके लिए समस्त ब्रह्माण्ड अमृतस्वरूप हो जाता। वह जहां कहीं भी दृष्टि डालता, बस अमृत ही अमृत दिखाई देता। वह अमृत मूर्ति अमृत ही बोलता, अमृत ही सुनता, एवं अमृत ही समझता। उसकी दृष्टि से विषयरूप विष से सृष्ट विषाक्त जगत् विस्मृत-ओझल हो जाता। वह सर्वत्र सर्व देश, सर्वकाल, सर्ववस्तु, सर्वव्यक्ति में सर्वात्मा सर्वेश्वर अमृतात्मा-अमृतमूर्ति परम प्रेमास्पद प्रियतम को ही देखता और उस अमृतमूर्ति से अमृत की क्रीडा, अमृत का विनोद, अमृत की रति-प्रीति करता, रास रचाता, अधरामृत पान करता एवं अमृतालाप करता हुआ उस विषहर परमानन्दचिन्मूर्ति पर निछावर हो, अपने को लुटाकर, खोकर, उसमें तन्मय-तद्रूप-तल्लीन, तदाचार सम्पन्न हो, अमृतानन्द में मग्न दिव्यामृत के दिव्य साम्राज्य को प्राप्त कर निहाल कृतकृत्य हो जाता।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में परम प्रेमा एवं अमृतस्वरूपा भक्ति को प्राप्त भक्त के लक्षण बतलाए जा रहे हैं।

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति तृप्तो भवति ॥४॥

उस परम प्रेमा एवं अमृत स्वरूपा भक्ति को प्राप्त करके भक्त सिद्ध हो जाता है, अमृत हो जाता है एवं तृप्त हो जाता है ॥४॥

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवतिः— यही परम भागवत प्रह्लाद भी कहते हैं:—

"यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥ (श्री मद्भा० ७/१०/७)

प्रभो ! यदि मुझे वरदान देना ही चाहते हैं तो यह वरदान दीजिये कि मेरे हृदय में कभी किसी भी कामना का बीज ही अङ्कुरित न हो। यही भगवान् भी भक्तिप्राप्त निष्काम भक्त के प्रति कहते हैं:—

"न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत् ॥ (श्रीमद्भा० ११/१४/१४

जिसने मुझे अपने को समर्पित कर दिया है, वह निष्काम भक्त मेरे अतिरिक्त न ब्रह्मा का पद चाहता है, न देवराज इन्द्र का। न सार्वभौम सम्राट बनना चाहता है, न रसातल के स्वामित्व को प्राप्त करना चाहता। वह योग की सिद्धियों एवं मोक्ष तक की भी इच्छा नहीं करता। तात्पर्य यह है कि इस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परम प्रेमा एवं अमृतस्वरूपा भक्ति को प्राप्त भक्त अमृत स्वरूप ही हो जाता है। अतः उसकी समस्त कामनायें, वासनायें, शान्त हो जाती हैं। परन्तु अम्बरीष एवं प्रह्लाद जैसे कुछ भक्तों में सिद्धि के चमत्कार दिखाई देते हैं, तो वह उनकी नहीं अपितु, भगवान् ने जो प्रतिज्ञा कर रक्खी है:—

"योगक्षेमं वहाम्यहम्" (श्री० गी० ९/२२)

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥" (वा० रा० ६।१८।२५)

'भक्त के योग क्षेम का वहन मैं करता हूँ' 'जो मेरे शरणापन्न हो जाता है उसे मैं समस्त भूतप्राणियों से निर्भय कर देता हूं।' यह भगवान् की भक्त के प्रति कृपादृष्टि है। भक्त तो कभी सिद्धि का संकल्प भी नहीं करता। क्योंकि सिद्धियां तो भक्ति की बाधिका हैं। अतः उसभक्त की समस्त कामनाओं से मुक्ति ही परमासिद्धि है। अमृतो भवतिः— तथा वह

"मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते" (श्रीमद्भा० १०।८२।४५)

इस भगवद्वचनानुसार भक्ति को प्राप्त कर अमृत हो जाता है।

[अर्थात् अमृत को प्राप्त करता है]।

यही गीता में भी भगवान् की भक्तों के प्रति स्पष्ट घोषणा है:—

"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ (श्री० गी०।१०।१०,११)

जो प्रीति पूर्वक मेरा सतत् भजन करते हैं, उन भक्तों पर कृपा करने के लिए मैं उनके अज्ञान जन्य अनादि अविद्या रूप आवरणात्मक तम को उनके अन्तःकरण में स्थित होकर प्रकाशमय ज्ञान प्रदीप के द्वारा नष्ट कर देता हूं। इस प्रकार भगवान् स्वयं भक्ति एवं ज्ञान को प्रदान करते हुए,

"भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः" (श्री० गी० १२।२०)

"न मे भक्तः प्रणश्यति" (श्री० गी० ९।३१)

"आदावेतत्प्रतिज्ञातु न मे भक्त. प्रणश्यति" (अद्भु० रा० उ० का० १३।१२

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उस अत्यन्त प्रियभक्त की रक्षा के लिए उसके आगे आगे चलते हैं। अहा! कितना है माधुर्य, इस भगवदीय दिव्य क्रिया में, कि वे सतत प्रेमपूर्वक भजन करने वालों को गुरु रूप से बुद्धि भी देते हैं और स्वयं ईश्वर रूप से उनसे मिलते भी हैं। एवं पुनः उनपर मातृवत्सलता से कृपा परवश होकर उनको ज्ञान भी प्रदान करते हैं। इस प्रकार भगवान् ही भक्त की सारी क्रिया करते हैं। अर्थात् साधन-साध्यरूप से भगवान् ही उसके सामने उपस्थित हो जाते हैं। इसी कारण भक्त भगवान् की इस अहैतुकी दया पर मुग्ध रहता है। अतः वह ज्ञान प्राप्त करने पर भी,

"*अमृतवपुः* (*स्मृति*)

भगवान् के अमृत—दिव्य-चिन्मय विग्रह पर निछावर रहता है। अर्थात् यह अनुभव करता है कि उनके अधर अमृत, दन्त अमृत, ओष्ठ अमृत, मुख अमृत, कपोल अमृत, नेत्र अमृत, नाक अमृत, कान अमृत, सिर अमृत, बाल अमृत, भाल अमृत, ग्रीवा अमृत, वक्ष अमृत, पक्ष अमृत, हस्त अमृत, पाद अमृत, नूपुर अमृत, अंगुली अमृत पिंडली अमृत, हृदय अमृत, पेट अमृत, पीठ अमृत, कटि अमृत, ऊरु अमृत, बंशी अमृत, कमली अमृत, लकुटी अमृत, गति अमृत, मति अमृत, लीला अमृत, हास्य अमृत, वाणी अमृत, वस्त्र अमृत, नृत्य अमृत, गान अमृत, पान अमृत, अशन अमृत, शयन अमृत, मुकुट अमृत, कुण्डल अमृत, तिलक अमृत, गुञ्जा अमृत, माला अमृत, सब अमृत स्वरूप ही हैं। तथा राधा अमृत, नन्द अमृत, यशोदा अमृत, गोपी अमृत, गोप अमृत, गाय अमृत, बछड़ा अमृत, यमुना अमृत, गोवर्धन अमृत, ब्रज अमृत है। इस प्रकार सबको अमृत स्वरूप देखता सुनता, समझता हुआ स्वयं भी अमृत ही हो जाता है। प्रयोजन यह है कि भक्त इस अमृतानन्द में मस्त होने के कारण जन्म-मृत्यु का ध्यान ही नहीं देता। इसी लिए वह अमर नहीं होना चाहता, अपितु भगवान् के अमृत-विग्रह एवं अमृत लीला को देखता-देखता स्वयं अमृत हो जाता। अर्थात् जिसके पीने से लोग अमर होते हैं वह मूल अमृत ही हो जाता है। इसीलिए उस अमृत स्वरूप भक्त की समस्त चेष्टायें अमृत मधुरातिमधुर हो जाती हैं,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् उसकी वाणी, उसका व्यवहार अमृत हो जाता है। अपितु यह कहिए कि उसकी वाणी प्रभु की बाणी, उसकी चेष्टा प्रभु की चेष्टा, उसका दर्शन प्रभु का दर्शन, उसका स्पर्श प्रभु का स्पर्श हो जाता है। वह सबको अमृत ही प्रदान करता, अमृत को ही देखता, सुनता, समझता है। अमृत से भिन्न उसकी कोई चेष्टा नहीं होती।

तृप्तोभवति:—इसी स वह सदैव तृप्त रहता है। भला, जो अमृत ही हो गया उसकी तृप्ति के विषय में कहना ही क्या ? इसी कारण वह अपने आपे में नहीं रह पाता, वलात् लोक का अतिक्रमण कर जाता है।

भगवान् ने भी यही कहा है कि:—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ † (श्री मद्भा० ११/१४/२४)

"एवंव्रतः स्वप्रियनाम कीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय—
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकवाह्यः ॥ ‡ (श्री मद्भा० ११/२/४०)

इसी अमृत के कारण उस भक्त की वाणी गद्गद, हृदय द्रवीभूत हो जाता और जब वह अमृत हृदय में नहीं समा पाता तो नेत्रों से बाहर बहने

---

† टिप्पणी:—प्रेम प्रकट हो जाने से जिसकी वाणी गद्गद और चित्त द्रवीभूत हो जाता है—जो प्रेमावेश में बार-बार रोता, कभी हँसता, कभी लज्जा छोड़कर ऊँचे स्वर से गाने और नाचने लगता है, वह मेरा भक्त त्रिलोकी को पवित्र कर देता है।

‡ इस प्रकार अनन्य निष्ठा के कारण स्वप्रिय के नाम कीर्तन से अनुराग सृष्ट होने के कारण द्रवितचित्त होकर हँसता, रोता, गाता एवं करुण क्रन्दन करता हुआ, उन्मत्तवत् लोक वाह्य अवस्था में नृत्य करता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लगता, इसी प्रगाढ़ावस्था में वह फूट-फूट कर रुदन करता। सावधान! यह रुदन, रुदन-दुःख जनक नहीं। अरे, यह तो नित्य सुख का मूलकारण है। इसी अवस्था में अन्तःकरण पूर्णरूपेण विशुद्ध होता है।

भगवान् ने भी स्वयं कहा है कि:—

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना।
विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः॥ § (श्री भ्रा० ११/१४/२३)

यही विरहाग्नि जीव के अशुभ को भस्म करने में पूर्णरूपेण समर्थ है। यही वैराग्य-ज्ञान की मूल जननी है। इसी से समता, शान्ति, मुदिता, मैत्री, धृति, उपरति आदि दिव्य दृष्टियां सृष्ट होती हैं। यही जीव को मारकर पुनः जीवित करता है। अर्थात् भगवान् के साथ क्रीड़ा, विनोद, के योग्य दिव्य नवीन जीवन प्रदान करता है और इसी विरह वेदना-प्रेम के वश में भगवान् को भी बलात् रहना पड़ता है। अतः यह विरह, विरह नहीं, यह तो परमानन्द भगवान् का महासंयोग—मिलन है। भला, इस विरही जैसा आनन्द त्रैलोक्य में,

"न भूतो न भविष्यति"

किसी को हुआ भी है? इसी से

"आत्मारामाश्चमुनयो:" (श्री मद्भा० १/७/१०)

आत्मारामी मुनि भी बलात् इस त्रैलोक्य पावन विरह-प्रेम-अमृत की ओर आकृष्ट रहते हैं। वह भक्त इस अमृतानन्द के कारण हँसता, लोक लज्जा छोड़कर उच्च स्वर से गाता एवं लोक वाह्य-लोकातीतावस्था को प्राप्त कर प्रगाढ़ प्रेम के कारण प्रेमोन्मत्त हो नृत्य करता हुआ, तन्मयता विशेष के कारण मूर्च्छित हो जाता। इसी अवस्था में भगवान् की दिव्य रासलीला

---

§ जब तक सारा शरीर पुलकित नहीं हो जाता, चित्त पिघलकर गद्गद नहीं हो जाता, आनन्द के आंसू आंखों से छलकने नहीं लगते तथा अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग भक्ति की बाढ़ में चित्त डूबने-उतराने नहीं लगता, तब तक इसके शुद्ध होने की कोई संभावना नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होती। उस भक्त के लिए समस्त विश्व एवं दिशायें चिन्मय-आनन्दमय हो जातीं, फिर तो तृप्ति उसकी चेरी बन जाती। वह अपने इस अमृत-रस से समस्त ब्रह्माण्ड को सिक्त कर पवित्र कर देता। वह अमृत हो, अमृत से अमृत की चेष्टा करता, अमृत को ही देखता, सुनता, समझता हुआ अमृत ही बोलता, अमृत हो अमृत से अमृत स्वरूप रास रचाता। उस रस-रासामृत से त्रिभुवन को परिपूर्ण कर देता। भला, जो अमृत स्वरूपभक्त समस्त विश्व को अमृत का प्रसाद वितरण करता है उसकी तृप्ति का प्रश्न ही क्या ?

इसीलिए इस अवस्था में उसका खाना, पीना, देखना, सुनना बोलना, चालना–सब व्यापार बन्द हो जाता, इन्द्रियां निश्चेष्ट-स्तब्धी अवस्था को प्राप्त हो जातीं। उस काल में वह अत्यन्त कृशकाय एक असाध्य रोगी की तरह हो जाता। यहीं पर मुक्ति भी उसकी चेरी बन जाती। यहीं भगवान् उसके गले से गला मिलाते। यहीं पर उसे वैराग्य से भी वैराग्य हो जाता। यहीं पर अमृत-स्वरूप भगवान् आश्चर्यचकित होकर अपने अमृतस्वरूप भक्त की इस दिव्य परमाश्चर्यमयी अवस्था को, उसकी रूप माधुरी को मूक-शान्त हो देखते और उसकी बलैया लेते, उसे चूमते-चाटते, प्रेम करते। यहीं पर भक्ति भक्त एवं भगवा(की एकता की अनुभूति होती। यहीं पर समस्त संशय स्वयमेव नष्ट होते। इसी अवस्था में वेदों का स्वमेव त्याग हो जाता। इसी अवस्था में भक्त समस्त शुभाशुभ कर्मों से मुक्त होता। यहीं पर समस्त कामनायें एवं शोक-मोह शान्त होते। इसी अवस्था में

'जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः'' [श्री मद्भा० १०।३१।१]

वैकुण्ठ से भी व्रज के श्रेष्ठत्व, दिव्यत्व, नित्यत्व, एवं चिन्मयत्व का अनुभव होता। यही भगवान् से आत्यन्तिक रति, प्रीति, क्रीडा, विनोद की अवस्था है। यही पर भक्त आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्माराम होता। तात्पर्य यह है कि जिसको भक्ति की प्राप्ति हो गई, उसको कुछ भी पाना अवशिष्ट नहीं रह जाता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऐसा ही स्वयं भगवान् ने कहा भी है कि:—

"भक्ति लब्धवतः साधो किमन्यदवशिष्यते। [श्री मद्भा० ११/२६/३०
"सर्वं मद्भक्तियोगेन मदभक्तो लभतेऽञ्जसा।" (श्री मद्भा० ११।२०।३०)

वह तो

"भक्ति परां परमहंसगतौ लभेत्" [श्री मदभा० ११।३१।३०]

परमहंसों की अंतिम परमगति को प्राप्त हो जाता।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भी भक्त के लक्षण बतलाये जा रहे हैं।

यत्प्राप्य न किंचिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति ॥५॥

जिस प्रेमा अमृत स्वरूपा भक्ति को प्राप्त कर भक्त न किसी वस्तु की इच्छा करता, न शोक करता और न द्वेष करता और न किसी लौकिक कर्म में उत्साही होता है ॥ ५ ॥

यत्प्राप्य न किंचिद्वाञ्छति:—यही भगवान् ने भी गीता में कहा है:—

"यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति । †
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ (श्री० गी० १२/१७)

इस भक्ति को प्राप्त भक्त अन्य किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता, क्योंकि,

"अमृतो भवति" (ना० भ० सू० ४)

जो अमृत ही हो गया, वह किस वस्तु की इच्छा करने लगा। दूसरे, वह समस्त कामनाओं एवं क्रियाओं के लक्ष्य भूत नित्यानन्द भगवान् को प्राप्त है और उन्हीं से वह रति, प्रीति क्रीडा एवं विनोद करता है। तथा परमानन्द भगवान् भी जिससे प्रेम करते हैं वह स्वर्गापवर्ग को भी उपेक्षा की दृष्टि से देखने वाला,

---

† जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है और न आकांक्षा करता है, तथा जो शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के सम्पूर्ण कर्मों का त्यागी है वह भक्ति युक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"यदल्पं तन्मर्त्यम्" (छा० उ० ७/२४/१)
"वाचरम्भणंविकारो नामधेयम्" (छा० उ० ६/१/४)

मृत्युग्रस्त, परिवर्तनशील, दुःखप्रद, अशाश्वत, वाचारम्भणमात्र मिथ्या जगत् की किसी वस्तु की क्यों इच्छा करने लगा ? क्योंकि,

"विक्रीडितोऽमृताम्भोधौ कि क्षुद्रैःखादकोदकैः" (श्रीमद्भा० ६/१२/२२)

जो अमृत के समुद्र में क्रीडा कर रहा है वह क्षुद्र गड्ढे के स्नान में क्यों प्रवृत्त होगा ? यही श्री मद्भागवत में भी कहा गया है:—

"न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
वाञ्छति यत्पादरजः प्रपन्नाः ॥ ‡ (श्री मद्भा० १०/१६/३७)

वह भक्त किसी भी इष्ट वस्तु के वियोग का शोक नहीं करता। क्योंकि उसके इष्ट—प्रेमधन परमात्मा का कभी उससे वियोग होता ही नहीं। वियोग तो परिवर्तनशील सांसारिक वस्तुओं का ही होता है। अत. जो अपरिवर्तनशील नित्य भगवान् को प्राप्त है, उसी को जो देखता, सुनता, समझता है, उसी की गति, मति, निष्ठा से सम्पन्न है, उसके शोक-मोह का प्रश्न ही नहीं हो सकता ? शोक तो, जो परमात्मा से विमुख भौतिकवादी-अनीश्वरवादी हैं, उन्हें ही होता है। उनके शोक का परिहार संभव नहीं।

न द्वेष्टि:—तथा वह भक्त किसी से द्वेष भी नहीं करता।

क्योंकि उसने तो समस्त ब्रह्माण्ड को परम प्रेमास्पद भगवान् के रूप में देखा है। अर्थात् भगवान् ही समस्त ब्रह्मांड का रूप धारण करके नाना नाम रूपों

---

‡ प्रभो ! जो आप के चरणों की धूलि के शरणापन्न हैं, वे भक्त स्वर्ग का राज्य नहीं चाहते, न तो वे रसातल का ही राज्य चाहते और न तो ब्रह्मा का पद ही लेना चाहते हैं। उन्हें अणिमा आदि सिद्धियों की भी चाह नहीं होती। यहां तक कि वे जन्म मृत्यु से छुड़ाने वाले कैवल्य मोक्ष की भी इच्छा नहीं करते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में नाना प्रकार की लीलायें कर रहे हैं। इसलिए भी किसी से द्वेष नहीं करता। भगवान् ने भी यही कहा है कि:—

"निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ।।" (श्री० गी० ११/५५)
सर्वं कृष्णमयं जगत्" (ब्र० वै० पु०)

इस दृष्टि से जो समस्त विश्व को कृष्ण स्वरूप देखता है वह किसी से भी द्वेष—वैर नहीं कर सकता। क्योंकि द्वेष—क्रोध का मूल है इष्ट वस्तु पर अभिघात करना, और यह किसी सांसारिक वस्तु पर ही संभव है भगवान् पर नहीं। भक्त के इष्ट हैं भगवान् और भगवान् की कभी कोई क्षति हो ही नहीं सकती। इसलिए भी द्वेष नहीं करता। अपितु, यों कहिए कि उसकी दृष्टि में तो काम क्रोध लोभ मोहादिक समस्त विकार भगवद्रूप हो जाते हैं। अतः वे भक्त को क्रोधी-विकारी नहीं कर सकते। इसीलिए प्रह्लाद पिता के अकारण सताये जाने पर भी निर्वैर ही रहे, एवं अम्बरीष दुर्वासा से अकारण शापित होने पर और प्रतीकार की क्षमता रखने पर भी निर्विकार-क्रोधरहित ही रहे।

नरमते:—और भक्त किसी में आसक्त भी नहीं होता, क्योंकि उसकी आसक्ति तो भगवान् में हो चुकी है। वैसा कोई अनुपम विश्व का रूप ही नहीं है जिसकी प्राप्ति की इच्छा हो, अपितु, यह कहिए कि उसके सौन्दर्य सार के एक विन्दु सौन्दर्य से त्रैलोक्य सुन्दर प्रतीत होता है तो भला, जो निखिल सौन्दर्य माधुयसारसर्वस्व को प्राप्त है उसकी आसक्ति की बात ही क्या? इसीलिए भक्त संसार की ओर नहीं देखता। उस भक्त जैसा कोई सुखी भी है? क्योंकि उस परमानन्द चिन्मूर्ति के एक बूँद सुख से संसार सुखी हो रहा है। अतः जो भक्त भगवान् के निरतिशय सुख को प्राप्त है वह भला, किसी सांसारिक वस्तु में क्यों आसक्त होने लगा? वह तो,

"साक्षान्मन्मथमन्मथः" (श्रीमद्भा० १०/३२/२)
"कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्यं शोभाधाम मनोहरम्" (ब्र० वै० पु०)

अनन्त-अनन्त कामदेव एवं पूर्णिमा के चन्द्रमा को भी तिरस्कृत करने वाले परम मनोहर शोभा के धाम परमानन्द चिन्मूर्ति, आनन्दवर्षी मधुरा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तिमधुर सर्वाश्चर्यमयरूप को देखने में तन्मय होने के कारण संसार को देखने में असमर्थ हो गया है। उसके पास संसार को देखने, सुनने, समझने की बुद्धि ही नहीं रही। भला, जिस निरतिशयरूप को देखकर पशुपत्ती भी अपने खाने-पीने, दौड़ने-धूपने आदि का स्वाभाविक व्यापार बन्द कर देते हैं, उसी शोभाधाम को यदि कोई मानव देख ले तो उसकी क्या दशा होगी ? यह लेख एवं कथन का विषय नहीं है। वह तो उस रूप के पीछे पागल-दीवाना हो जाता है।

"क्वचिद् रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचि-
द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः॥ (श्रीमद्भा० ११/३/३२)

इसीलिए तो वह उस निरतिशयरूप के परमप्रेम के कारण कभी रोता, कभी हँसता, कभी उसकी सन्निधि की अनुभूति करके आनन्द में मग्न हो जाता, कभी भगवान् से गुणातीतावस्था में प्रेमालाप करता, जिसकी भाषा संसार की कोई भाषा नहीं होती। उसके बोलने का पूर्वापर का कोई सम्बन्ध नहीं होता। क्योंकि पूर्वापर से अतीत से वार्ता कर रहा है और वह स्वयं भी पूर्वापर पर से अतीत हो गया है। कभी भगवान् को उनके नाम गुणों को सुनाता, कभी उनके साथ नाचता, रास रचाता, कभी उनके पीछे-पीछे इधर-उधर दौड़ता, कभी उनका आलिङ्गन करने के कारण स्थाणुवत् परम-शान्त हो जाता। इतना ही नहीं, भक्त के अनन्त भाव होते हैं उसका अनुभव तो कोई भक्त ही कर सकता है अन्य नहीं। इसी कारण से गोपियां उस नीलमणि को देखकर पगली हो गईं, भय, संकोच, लोक, कुल, कानि, धर्म की मर्यादा छोड़ बैठीं। दुस्त्यज पति-पुत्र, देह-गेह, वस्त्राभूषण को बिना सोचे-विचारे फेंक दिया और उस मधुरातिमधुर मधुमयरूप पर निछावर हो हो गईं। तभी तो वे नीलसरोजरूपी कृष्ण पर भँवरवत् नित्य गुञ्जार करती रहती थीं और सदैव उन पर पावस ऋतु बना रहता था अर्थात् उनके नेत्र प्रियतम के प्रेम में सदा बरसते रहते थे। उनकी गति, मति, निष्ठा, चेष्टा सब कृष्णस्वरूप हो गई थी। वे कृष्ण की थीं, कृष्ण के लिए थीं। उनकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सारी चेष्टायें कृष्ण के लिए हो रही थीं, कृष्ण से हो रही थीं। वे कृष्ण के लिए जी रही थीं। वे कृष्ण की रति थीं, प्रीति थीं। उनके जीवनाधार कृष्ण थे, उनके प्राणाधार कृष्ण थे, उनके सर्वस्व कृष्ण थे। उनके तन में कृष्ण थे, मन में कृष्ण थे, वाणी में कृष्ण थे, नेत्र में कृष्ण, कर्ण में कृष्ण, हृदय में कृष्ण थे, रग-रग में कृष्ण थे, रोम-रोम में कृष्ण थे। कृष्ण के निरतिशय रूप ने उनके मन को मथ डाला था। तभी तो उन्हें महाविरह का असाध्य रोग हो गया था। तभी तो वे कृष्ण प्रेम में सदा बेचैन रहती थीं। धन्य है, उन ब्रजयुवतियों को, जिनके प्रेम पर कृष्ण भी मुग्ध हैं। जिनकी मधुमयी पुनीत गीत से अब भी यह समस्त विश्व गुञ्जरित पुनीत हो रहा है। जिनके पावन पदरज की अभिलाषा ब्रह्मादिक भी करते हैं। तभी तो उन गोपियों ने उद्धव जी से कहा कि आप योग तो कृपा करके लाए हैं, परन्तु मैं करूं ही क्या ? हमारे पास तो रखने का कोई स्थान ही नहीं है। क्योंकि यहां तो रोम-रोम में श्याम रम रहे हैं। तात्पर्य यह है कि जब साक्षात् मन्थन—कामदेव का भी काम मन्मथ भगवान् के अमृतमूर्ति के दर्शन से शान्त हो जाता है, तो जिस भक्त ने कामदेव के मन को भी मर्दन करने वाले निखिल सौन्दर्य माधुर्यनिधि सौन्दर्य सार-सर्वस्व को देखा, वह किसी से द्वेष कैसे करेगा ? क्योंकि उसके समस्त मनोविकार भगद्दर्शन से शान्त हो जाते हैं।

नोत्साहीभवति :—तथा वह भक्त सांसारिक किसी शुभाशुभ कर्म में भी उत्साही नहीं होता। इसलिए कि भगवत्प्रेम ने कर्म के संकल्प मूल मन को ही प्रेम से गला दिया है। क्योंकि वह निर्विकल्प श्यामसुन्दर में तन्मय होने के कारण अपने स्वभाव को छोड़ बैठा है। दूसरे, समस्त प्राणियों की समस्त क्रियाओं एवं समस्त साधनों के लक्ष्यभूत तत्त्व-नित्य सुख भगवान् उसे प्राप्त हैं और वह उनकी गोदी में उनकी रूपमाधुरी का अहर्निश पान करता हुआ, सदा सुखी रहता है। उसके लिए विश्व का एक-एक कोना आनन्द से परिपूर्ण दिखाई देता है। इसीलिए वह मिथ्या संसार के मिथ्याभूत शुभाशुभ कर्मों पर दृष्टि नहीं डालता। वह तो भगवान् में तन्मय, उनके चरणारविन्द मकरन्दरस का रसिक है। उस महाभागवत से तो भगवान् भी प्रेम करते हैं, उसके चरणरज की सदैव इच्छा रखते हैं। तो भला, वह संसार के किसी वस्तु, किसी व्यक्ति एवं किसी कर्म से प्रेम क्यों करने लगा ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में भक्ति के यथार्थ ज्ञान के फल को बताते हुए भक्त के अपूर्व लक्षण को कहते हैं।

यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धोभवति आत्मारामो भवति ॥६॥

जिस भक्ति को जानकर भक्त उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध-शान्त हो जाता एवं आत्माराम हो जाता है ॥६॥

यज्ज्ञात्वा मत्तोभवति :—जिस परमप्रेमा एवं अमृतस्वरूपा भक्ति को जानकर अर्थात् उसकी अनुभूति-रसास्वादन से युक्त होकर यानी उसमें आसक्तचित्त – तन्मय होने के कारण भक्त मत्त—आनन्द विशेष से उन्मत्त—दिव्योन्माद-सम्पन्न अलौकिक चेष्टा वाला महाभावापन्न होने के कारण शिथिलेन्द्रिय-शिथिल शरीर हो जाता। प्रभु में दृष्टि केन्द्रीभूत होने से वह अपने को तथा जगत् को भूला रहता। उसे दिक्-विदिक् का ज्ञान नहीं रहता, उसकी गति, मति, चेष्टा लक्ष्यहीन होती। वह पूर्वापर के सम्बन्ध से रहित विह्वल अटपटी वाणी बोलता। इस अवस्था में भगवान् के संयोग-वियोग की अनुभूति से वह ग्रहग्रस्तवत् स्वाभाविकरूप से कभी हँसता, कभी रोता, कभी गान करता तथा कभी आनन्द विशेष में नृत्य करता। उस काल में उसकी समस्त चेष्टायें

"उन्मादवन्नृत्यतिलोकवाह्यः" (श्रीमद्भा० ११/२/४०)

लोकवाह्य– लोकातीतावस्था में होती। इसीलिए वह लोकातीत प्रभु के प्रेम में मत्त—प्रेमोन्मत्त हो, महाभाव के साम्राज्य पर आरूढ़ हो, केवल भावग्राह्य भगवान् की भाव से भावना करता हुआ, उनका अभिषेक कर रहा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है, उनको सजा रहा है तथा कण-कण को प्रभु का रूप समझकर उनको सिर पर चढ़ा रहा है। उस काल में उसके सामने भगवान हैं और वह भगवान् के सामने है। अतः वह भगवान् की रूपमाधुरी का निर्निमेष नेत्रों से पान करते थकता नहीं। इतने ही में उसके हृदय में एक तूफान—आनन्द की बाढ़ आ जाती और वह ग्रहग्रस्तवत् दिव्योन्माद से सम्पन्न हो, आनन्द की किलकारियां मारता और भगवान् के पीछे-पीछे दौड़ता, चीत्कार मचाता, करुणक्रन्दन करता तथा भगवान् की सन्निधि की अनुभूति करके शान्त हो जाता। इस प्रकार भक्त के अनन्त भाव होते, जिसको भक्त एवं भगवान् ही जानते, अन्य नहीं। यह अवस्था कोरी शास्त्रों की व्याख्या से नहीं प्राप्त होती। यह तो,

"*जन्मान्तर सहस्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः*" (*वि० ध०*)

सहस्रों जन्मों के तप, ज्ञान, समाधि के द्वारा क्षीणकल्मष पुरुष की भगवान् में जन्मजात भक्ति की दुर्लभ अवस्था है। तात्पर्य यह है कि जिस किसी के हृदय को वह काला कृष्णरूपी नाग डस लेता, छू देता है, जिसके हृदय में ललित त्रिभंगी गति विराजित हो जाती है, उन सबकी यही दशा होती है। भक्त चूणामणि प्रह्लाद ने भी यही कहा है कि :—

"*यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस-*
त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम्।
मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते
नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः
तदा पुमान्मुक्त समस्त बन्धन-
स्तद्भावभावानुकृताशया कृतिः।
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा
भक्ति प्रयोगेण समेत्यधोक्षजम्॥" † (*श्रीमद्भा०* ७/७/३५,३६)

टिप्पणी:—

† जब भक्त ग्रह ग्रस्त की भांति कभी हँसता, कभी फूट-फूट कर रोता, कभी ध्यान मग्न होता, कभी सम्मुख आने वाले की भी भगवद्भाव से वन्दना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ति के प्रधानाचार्य नारद जी भी यही कह रहे हैं :—

"न्यस्त क्रीडन को बालो जडवत्तन्मनस्तया ।
कृष्णग्रह गृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ॥
आसीनः पर्यट नश्नन् शयानः प्रपिबन् ब्रुवन् ।
नानुसन्धत्त एतानि गोविन्द परिरम्भितः ॥
क्वचिद्रुदति वैकुण्ठ चिन्ताशबल चेतनः ।
क्वचिद्धसति सच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥
नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् । ‡
क्वचित्तद्भ वना द्युक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥" श्रीमद्भा० ७/४/३७-४०.

स्तब्धो भवति:—वह भक्त स्तब्ध अर्थात् स्थाणुवत् स्थिर हो जाता। इसी प्रेमोन्माद-दिव्योन्माद-महाभाव की प्रगाढ़ावस्था में जब बुद्धि भगवान् से एकीभूत हो, उनके संस्पर्शज आनन्द का आस्वादन करके उनमें लीन कर

करता, तथा बार-बार लम्बी श्वांस लेता हुआ, हरे ! जगत्पते !! नारायण !!! नाम पुकार उठता । बुद्धि के भगवान् में तन्मय होने के कारण लोक लज्जा छूट जाती है, वह समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है । नित्यभगवद्भाव से युक्त होने के कारण उसका चित्त भगवदाकार हो जाता है, अन्तःकरणस्थ कर्म के वीज दग्ध हो जाते हैं । इस महान् भक्तियोग से भगवान् को प्राप्त कर लेता है ।

‡ प्रह्लाद बाल्यावस्था में ही खेलकूद छोड़कर भगवान् में तन्मय हो जाया करते थे । श्री कृष्ण रूपी ग्रह से ग्रस्तचित्त होने के कारण उन्हें जगत् का भान नहीं रहता । उन्हें ऐसा प्रतीत होता कि भगवान् अपनी गोदी में लेकर आलिंगन कर रहे हैं । अतः उन्हें बैठते, घूमते, खाते, सोते, पीते एवं बोलते समय भी इन सब कार्यों का ध्यान ही नहीं रहता था । कभी भगवान् के वियोग जन्य विरह में रोने लगते थे, कभी संयोग की अनुभूति से हँसते थे, कभी लीलाओं का गान करते थे, कभी जोर से पुकारते, कभी लोक लज्जा छोड़कर प्रेमोन्मत्त हो नृत्य करते, कभी भगवान् की भावना से तन्मय होकर उनकी लीलाओं का अनुकरण करने लगते ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाती, तब प्रेम समाधि-स्तब्धी-जड़ीभूतावस्था हो जाती। इस अवस्था में शरीर बिल्कुल चेष्टारहित स्थाणुवत् अचल शान्त हो जाता है। इस अवस्था में यदि उस पर खड्गपात भी किया जाय तो भी वह हिलडुल नहीं सकता। क्योंकि यह परम मूक, शान्त, निश्चेष्ठी अवस्था होती है। इसी अवस्था में उसे अग्नि के दाह का भी भान नहीं होता। इसका अनुभव करे भी कौन ? क्योंकि उसकी बुद्धि भगवान् में लीन है। यही प्रेम की परमावस्था है जहां पर शरीर का भी भान नहीं रहता, उसका भी शुष्क तृणवत् त्याग हो जाता है जिससे भौतिक कष्टों का उस पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता। यही भगवान् ने कहा भी है:—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ (श्री० गी० ६/२२)

जिस परमानन्दस्वरूप परमात्मरूपी महालाभ को प्राप्त करके उससे अधिक संसार की कोई वस्तु नहीं मानता और जिस अक्षयानन्द में स्थिति लाभ करके भारी से भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता। इसी स्तब्धी-अवस्था के प्रति नारद जी ने प्रह्लाद के प्रति कहा है कि:—

"क्वचिदुत्पुलक स्तूष्णीमास्ते संस्पर्श निर्वृतः । †
अस्पन्दप्रणयानन्द सलिलामीलितेक्षणः ॥ [श्री मद्भा० ७/४/४१]

आत्मारामो भवति:—वह महात्मा आत्माराम हो जाता है, अर्थात् वह वाह्य सांसारिक विषयों में आराम वाला नहीं होता। क्योंकि वाह्य विषयों में आराम है ही नहीं। संसार की सभी वस्तुएँ स्त्री, पुत्र, धन आदिक परिवर्तन शील, जन्ममृत्यु जराव्याधि से ग्रस्त, दुःखस्वरूप हैं। अतः इनमें सुख कहां ? दूसरे,

"एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति" (बृ० उ० ४/३/३२

---

† शरीर में रोमाञ्च होने के कारण शान्त बैठे हैं, वाह्य स्पर्शज विषयों का ज्ञान नहीं है। शरीर स्पन्दन रहित हो गया है तथा अर्ध निमीलित नेत्र से आनन्दाश्रु झर रहे हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिस लेशमात्र आनन्द से विश्व के समस्त प्राणी जीते हैं अर्थात् सांसारिक विषयों में जो सुख की प्रतीति होती है वह भी भगवान् का ही आभास है। विषयों में सुख बिल्कुल नहीं है। इसीलिये वह भक्त अपने अन्तरात्मा–विशुद्धान्तःकरण में भगवान् से ही आराम करता है, उन्हीं से क्रीडा, विनोद, रति, प्रति एवं आनन्द को प्राप्त करता है। उन्हीं को खाता-पीता, चूमता-चाटता, प्यार करता। उन्हीं में सोता, जागता, उठता, बैठता, नित्य निवास करता, अन्यत्र नहीं। उन्हीं से हँसता, बोलता, प्रेमालाप करता, उन्हीं के नित्य चिन्मय नाम, रूप, लीला, धाम में नित्य तृप्त एवं संतुष्ट रहता है।

"*अकिंचनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः।*
मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः॥ † (श्री मद्भा० ११/१४/१३

"*सर्वं कृष्णमयं जगत्*" [ब्र० वै० पु०]

तथा सर्वत्र भगवद्दृष्टि के कारण जिसके लिए समस्त दिशायें आनन्दमय अर्थात् कृष्ण स्वरूप हो गई हैं। वह अकिंचन शान्त, दान्त, समदर्शी महात्मा भगवान् की गोदी में पैर फैलाकर, समस्त कामनाओं से मुक्त, निर्भय, निश्चिंत हो, सुख की नीद सोता एवं भगवान् के वरद कर से सम्मानित-सुसज्जित-अलंकृत हो, आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्माराम हो जाता है। धन्य है परमप्रेमा एवं अमृतस्वरूपा, कृष्णवन्दिता, कृष्णप्रिया, कृष्णरसिका, कृष्णरूपा, रसरूपा, दिव्यातिदिव्य चिन्मयी भक्ति महादेवी को, जिन्होंने,

"*केवलेन हिभावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः।*
येऽन्येमूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा॥" (श्री मद्भा० ११/१२/८)

---

† जो सब प्रकार के संग्रह-परिग्रह से रहित-अकिंचन है। जो अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके शान्त और समदर्शी हो गया है, जो मेरी प्राप्ति से ही मेरे सांनिध्य का अनुभव करके ही सदा सर्वदा पूर्ण संतोष का अनुभव करता है, उसके लिए सम्पूर्ण दिशायें सुखमय हो जाती हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ।" ‡ [श्री मद्भा० ११/१४/२१]

चाण्डाल, गोपियों, गायों, पर्वत, मृग एवं नागादिक को, जो अत्यन्त मूढ़ एवं जड़ बुद्धि थे, पात्रापात्र का कोई विचार न रखते हुये भी अपनाया और उनपर भी कृपा दृष्टि की वृष्टि किया और उन्हें भगवान् की गोदी में बिठा दिया। अतः मां! मुझ जड़ एवं नीच पर भी अपनी अहैतुकी दया की एक कृपा दृष्टि कर दो। बस, यही मेरी करबद्ध प्रार्थना है। क्योंकि,

'रा' शब्दोच्चारणाद् भक्तो भक्तिं मुक्तिं च राति सः ।
'धा' शब्दोच्चारणेनैव धावत्येव हरेः पदम् ॥ [ना० पा० २/३/३८]

तेरे तो नामोच्चारणमात्र से भक्ति मुक्ति एवं हरिपद की आत्यन्तिक प्रीति प्राप्त हो जाती है।

---

‡ मेरी अन्यभक्ति उन लोगों को भी पवित्र-जाति दोष मुक्त कर देती है, जो जन्म से ही चाण्डाल हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमदर्शिनी

इस सूत्र में भक्ति निरोधस्वरूपा होने के कारण कामना के कलंक से रहित है—इसका प्रतिपादन किया जा रहा है।

सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात् ॥ ७ ॥

वह परम प्रेमा एवं अमृतस्वरूपा भक्ति कामना वाली नहीं है, क्योंकि वह निरोधरूपा है ॥ ७ ॥

महर्षि अङ्गिरा ने भी 'दैवी मीमांसा सूत्र' में यही कहा है:—

"अकाम्या सा" (दै० मी० सू०)

वह भक्ति कामना रहित है।

चूँकि भक्ति अमृतस्वरूप-निर्विकार-नित्य तृप्त है, अतः उसमें निरोध स्वाभाविकरूप से स्वयमेव अपने आप ही हो जाता है, करना नहीं पड़ता। इसलिए उसमें कामनाओं की सृष्टि नहीं होती।

इसीलिए तो गोपियां,

"कोटिपूर्णेन्दु शोभाढ्यम्" (ब्र० वै० पु०)
"साक्षान्मन्मथमन्मथः" (श्री मद्भा० १०/३२/२)
"परमानन्दचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः" (श्री मद्भा० मा० ४/४)
"शोभाधाम मनोहरम् (ब्र० वै० पु०)
"अमृतवपुः" (स्मृति)

अनन्त-अनन्त पूर्णिमा के चन्द्रमा, कामदेव एवं ब्रह्मानन्द को भी तिरस्कृत करने वाले निखिल सौन्दर्य माधुर्यनिधि सर्वस्व सौन्दर्यसार परम प्रेमास्पद, परमानन्दचिन्मूर्ति, आनन्दवर्षी, मधुरातिमधुर, शोभाधाम, अमृत-मूर्त, परममनोहर आनन्दकन्द, सच्चिदानन्दघन, सर्वान्तरात्मा, आत्माराम

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री कृष्णचन्द्र के निरतिशयरूप-चैतन्य नीलमणिपर दीपक के पतङ्गवत् मुग्ध रहती थीं, दीवानी रहती थीं, बिकी रहती थीं, तन्मय रहती थीं, तद्रूप रहती थीं। तभी तो,

"तस्मिंस्तु तत्सुखसुखित्वम्" (*नारद भक्ति सूत्र*)

के सिद्धान्तानुसार, वे उस प्रियतम के सुख से सुखी थीं, प्रियतम की थीं, प्रियतम के लिए थीं, प्रियतम के लिए समस्त चेष्टायें कर रही थीं। उनका हँसना, बोलना, चलना-फिरना, खाना, पीना, सोना-जागना, वस्त्राभूषण—सब प्रियतम के लिए था। वे प्रियतम के लिए जी रही थीं, प्रियतम की रति थीं, प्रीति थीं, प्रिमतम के रति-प्रीति के लिए थीं। उनका अपने में कोई प्रयोजन नहीं था। रहता भी कैसे ? क्योंकि वह रूप ही ऐसा है, जो अपने आपे में नहीं रहने देता, अपना नहीं रहने देता। भला, दीपक के रूप पर मुग्ध पतंग कभी अपने आपे एवं सुख-सुविधा का विचार करता है और कभी दुःख से मुक्त होने का प्रयास करता है कि मुझे दीपक पर नहीं जलना चाहिए ! उसे तो जलने में ही आनन्द आता है, तभी तो अपने को दीप के रूप—लौ पर निछावर किए रहता है। भला, उसके इस स्वाभाविक प्रेम को, इस स्वाभाविक अलौकिक कार्य को, कौन रोक सकता है ? यहां तो मरने में ही आनन्द है और जीने में दुःख। सचमुच, मुग्धों—प्रेमियों की यही अवस्था होती है। भला, इस मुग्धावस्था में, लोकातीतावस्था में, परम विरहातुरावस्था में, परम प्रेमावस्था में, परमामृतावस्था में, परमशान्तावस्था में, दिव्योन्मादावस्था में, महाभावावस्था में, महामौनावस्था में, अनिर्वचनीयावस्था में, परमानन्दावस्था में, परम प्रेमसमाधि में, जब कि इन्द्रियां प्रेमामृत पीकर तृप्त कृतकृत्य हो जाती हैं। तथा जिस अवस्था में शरीर का भी भान नहीं रहता और जीवत्व भाव भी नहीं है, वहां कौन किससे सुख की इच्छा करेगा ? वस्तुतः प्रेम में शरीर का भान-ध्यान नहीं होता और यदि होता है तो प्रेम ही नहीं है, क्योंकि इस प्रेम के पथ पर पहले ही सिर को हथेली पर रख कर चला जाता है। यह जीने वालों का मार्ग नहीं, मरने वालों का मार्ग है, क्योंकि अपने को मारने पर ही वह प्यारा मिलता है। तभी तो इस अवसाथ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में भक्त सर्वत्र सर्वदा सर्वकाल में, सर्वरूप में उस प्यारे को देखता है। तभी तो वह प्यारा,

"तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्" † (श्री० गी० १२/७)

"न मे भक्तः प्रणश्यति" (श्री० गी० ९/३१)

"तान् मृत्योरतिपारये ‡ (श्रीं मद्भा० ३/२५/४०)

काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक समस्त अनर्थों से निरोध-रक्षा की प्रतिज्ञा कर पतन से बचाने के लिए उस प्यारे के आगे, पीछे, दाऐं, बायें चलता है। तभी तो वह प्यारे के साथ निवास करने से प्यारा हो जाता और प्यारा होकर प्यारे के साथ प्यार की क्रीडा करता, प्यार से प्यार की रास रचाता, एवं

"रसो वै सः" (तै० उ० २/७)

उस रसस्वरूप रासामृत-प्रेमामृत को पीकर समस्त कामनाओं से मुक्त कृतकृत्य हो जाता।

यही भक्त शिरोमणि प्रह्लाद जी भी कहते हैं:—

"यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥" (श्री मद्भा० ७/१०/७)

प्रभो! यदि मुझे कोई आप को वरदान ही देना हो, तो अत्यन्त निष्काम होने का वरदान दीजिए।

---

† (उन मुझ में आविष्ट चित्त) प्रेमी भक्तों का मृत्यु रूप संसार सागर से मैं पार करने वाला होता हूँ।

‡ मैं उन प्रेमी भक्तों को आवागमन रूप मृत्यु से पार कर देता हूं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi.

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में निरोध की व्याख्या की जा रही है।

निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यासः ॥ ८ ॥

लौकिक वैदिक समस्त व्यापारों–कर्मों को भगवान् को समर्पित करना निरोध है ॥ ८ ॥

यही भगवान् भी गीता में कहते हैं कि:—

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥" (श्री० गी० ९/२७, २८)

अर्जुन ! तुम जो कुछ भी करो, खाओ, यज्ञ, दान आदि एवं तप करो, उन सबको मेरे अर्पण कर दो। इस प्रकार तू सम्पूर्ण लौकिक-वैदिक कर्मों को मुझ नित्य परम प्रेमास्पद कृष्ण को अर्पण करता हुआ, मेरे प्रसाद से परम प्रेमा-अमृतस्वरूपा भक्ति को प्राप्त कर, संन्यास योग से युक्त हो, शुभाशुभ कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जायेगा, । अर्थात्

"नाहं कर्तेश्वरः कर्ता" (अद्यु० २६)
"कर्ता भोक्ता जनार्दनः"

मैं कर्ता नहीं, ईश्वर कर्ता है—इस बुद्धि से युक्त हो, कर्तृत्वबुद्धि से मुक्त होकर कर्म कर, क्योंकि विश्व के समस्त प्राणियों की समस्त चेष्टायें भगवान् के द्वारा ही हो रही हैं, उनके अभाव में किसी का कोई भी व्यापार सम्पन्न नहीं हो सकता। अतः देखने, सुनने, चलने फिरने, समझने बूझने आदि एवं यज्ञ, दान, तप आदि की समस्त इन्द्रियों की समस्त क्रियायें–चेष्टायें भगवान् से ही हो रही हैं। इसलिए समस्त क्रियायें उन्हीं की हुईं। जीव का जो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"कृष्णाऽऽसक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम् ।
श्रेष्ठा पञ्चविधा मुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी ॥
ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि ।
अमृतात् सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम् ॥" ‡ (ब्र० वै० पु० कृ०ख०६७/८-९)
"यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा ।
विलुटतिचरणाग्रे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ॥"
"हरिभक्ति महादेव्याः सर्वामुक्त्यादिसिद्धयः ।
भुक्तयश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिकावदनुव्रताः ॥ § (ना० पा०)

मेरे अनन्य चिन्तन-स्मरण-भजन को पंच प्रकार की मुक्ति से भी श्रेष्ठ, ब्रह्मानन्द को भी तिरस्कृत करने वाला, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र एवं फल-स्वरूप समझकर तथा मुक्ति को भी अनन्याश्रया भक्ति का बाधक समझकर, उसकी उपेक्षा करके मुझ आनन्दकन्द सच्चिदानन्दघन आनन्दवर्षी परमानन्द-चिन्मूर्ति मधुरातिमधुर अमृतस्वरूप का द्रवितचित्त से, आनन्दाश्रुओं से युक्त, परमप्रेमप्रमाणभूता गोपियों जैसे विरहातुर, प्रेम में अधीर हो, उत्कण्ठित हृदय से, मेरे संयोग-वियोग से सुखी-दुःखी होते हुए अर्थात् अष्टसात्त्विकभावों से सम्पन्न होकर, मुझे ही अपना माता-पिता, गुरू ईश्वर तथा जीवन सर्वस्व समझकर अनन्यरूपेण सतत धारावाहिक रूप से, सर्वत्र, सर्वदा, सर्व-अवस्थाओं में देखते, सुनते, समझते हुए कृष्णाकार बुद्धि से युक्त होकर अर्थात् मुझ चैतन्य अविकारिणी सच्चिदानन्दमयी नीलिमा की गति, मति से युक्त, देह-गेह से रहित, परमप्रेमा एवं अमृतस्वरूपा दिव्योन्मादी भक्ति से युक्त, महाभाव से सम्पन्न हो, भजन करते हुए उपासना करते हैं उन क्षणार्ध-मात्र के लिए भी चिन्तन का त्याग करने में असमर्थ, आसक्तचित्त, प्राणस्वरूप

‡ सब वरों में श्रेष्ठतम वर श्रीकृष्ण भक्ति या श्रीकृष्णदास्य ही है। पांच प्रकार की श्रेष्ठ मुक्तियों से हरिभक्ति ही श्रेष्ठ एवं गुरुतर है। ब्रह्मत्व, देवत्व, अमरत्व, अमृतत्वप्राप्ति, सिद्धिलाभ—इन सभी से श्रीहरि का दासत्व प्राप्त होना सुदुर्लभ है।

§ मुक्ति आदि सिद्धियां और अनेक प्रकार की विलक्षण भुक्तियां (भोग) दासी की भांति हरिभक्ति महादेवी की सेवा में लगी रहती हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नित्य अनन्य चिन्तन करने वाले तन्मय प्रेमैकनिष्ठ समस्त एषणाओं कामनाओं एवं वासनाओं के त्यागी, अकिंचन, निरपेक्ष, समदर्शी, प्रशान्त प्रेमियों के ऋण से ऋणी,

"न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्नशङ्करः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च, यथा भवान्॥ * (श्रीमद्भा० ११/१४/१५)

अपनी आत्मा से भी प्रिय प्राणात्मा युक्ततम भक्तों के योगक्षेम का,

"अप्राप्त प्रापण योगः क्षेमस्तु स्थितरक्षणम्"

वहन अर्थात् अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की रक्षा मैं सर्वस्व सौन्दर्यसार चिन्मय परमात्मा ही करता हूँ। अथवा,

"भक्ताधीनो दिवानिशम्" (ब्र० वै० पु०)
"अहं भक्तपराधीनः" (श्रीमद्भा० ९/४/६३)

मैं सदा भक्ताधीन रहने वाला प्रेम परवश परमात्मा —

"यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥" (श्री० गी० ६/३०)

इस न्यायानुसार, जो मुझे ही सर्वत्र देखते-सुनते हैं उन अनन्योपासक सर्वस्वत्यागी भक्तों के लिए जो मैं अप्राप्त था, योग के रूप से सर्वत्र सर्वदा प्राप्त हो जाता हूं और क्षेम के रूप से सदा सवदा विद्यमान रहता हूँ। अर्थात्

"अनुव्रजाम्यहं नित्यम्" (श्रीमद्भा० ११/१४/१६)

मैं विश्वम्भर सर्वशक्तिमान् परमात्मा उस प्रियतम अनन्य भक्त के योग-क्षेम का वहन करने के लिए यानी समस्त विघ्नों, उपद्रवों से उसकी रक्षा करने के लिए नित्य-निरन्तर उसके पीछे-पीछे घूमा करता हूं। इस प्रकार अनन्यभक्त को भगवान् का ही एकमात्र आश्रय होता है, उन्हीं की शरणागति होती है, उन्हीं के परायण होता है और उन्हीं की गति-मति एवं निष्ठा से युक्त होता है। क्योंकि,

---

* उद्धव! तुम्हारे जैसे प्रेमीभक्त जितने प्रियतम हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्माशंकर, सगे भाई बलरामजी, स्वयं अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मी जी और मेरा अपना आत्मा भी नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" (मु० उ० ३/२/३)

उन्हीं की कृपा से उनका दर्शन होता है। उन्हीं की कृपा से साधक, साधक बन कर साधनारूढ़ होता है और वही साधन और साध्य भी है। क्योंकि सर्वत्र सर्वरूपों में वही स्थित है।

"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप इयते" † (ऋ० सं० ६/४७/१८)
"एकं ज्योतिर्बहुधा विभाति" ‡ (अथ० सं० १३/३/१७)

उससे भिन्न अणुमात्र भी नहीं है।

तद्विरोधिषूदासीनताः—भगवान् या भक्ति के विरोधियों में उदासीनता-उपेक्षा रखना अर्थात्

"अग्नि प्रवेश हेतौधीः शृङ्गारे यादृशी यथा।
धीरस्योदेति विषयेऽनुसंधान विरोधिनि ॥ (पचदशी)

जैसे चिता-प्रवेश काल में सती स्त्री को शृङ्गार से परवैराग्य हो जाता है वैसे ही भगवत्प्रीति में संसार के समस्त भगवद्विरोधी विषयों से वैराग्य—उदासीनता का होना। भगवान् ने भी गीता में यही कहा है:—

"उदासीनो गतव्यथः" (श्री० गी० १२/१६)

भक्त अनन्य भक्ति की रक्षा के लिए संसार से उदासीन रहे। किसी भी शुभाशुभ कर्म-धर्म या शत्रु-मित्र का पक्ष न ले। इसीलिए भक्त शिरोमणि प्रह्लाद हिरण्यकशिपु के बार-बार सताये जाने पर भी भक्ति की दृष्टि से उनसे विरोध नहीं किए। उनसे उदासीन ही बने रहे। विभीषण भक्ति-मणि की रक्षा एवं भगवान् की शरणागति के लिए भाई को त्यागे, उससे उदासीन रहे। भरत माता से उदासीन रहे। बलि ने गुरु का त्याग किया, गुरु से उदासीन रहे। गोपियों ने पतियों की उपेक्षा किया, उनसे उदासीन रहीं।

---

† परमात्मा माया से अनेक रूप धारण करता है।
‡ एक ज्योतिस्वरूप परमात्मा बहुत प्रकार से भासित होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में अनन्यता का स्वरूप बताया जा रहा है।

अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता ॥१०॥

भगवान् से भिन्न अन्य समस्त आश्रयों के त्याग को अनन्यता कहते हैं।

"वैराग्यरागरसिकोभवभक्तिनिष्ठः" (श्रीमद्भा० मा० ४/७६)

"सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रयः" (त्रि० म० उ० ८/१)

अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः।

अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ (श्रीमद्भा० मा २/२१)

वैराग्यराग का रसिक भक्तिनिष्ठा से सम्पन्न हो, संसार के किसी भी देश, काल, व्यक्ति, देव, व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ, ज्ञान, दान, तप, धर्म, कर्म आदि किसी भी वस्तु का आश्रय नहीं होना चाहिए। इससे भगवान् की प्राप्ति सम्भव नहीं। क्योंकि वे तो कृपासाध्य हैं, साधन-साध्य नहीं। इसीलिए भगवान् समस्त आश्रयों का परिहार करने के लिए आदेश दे रहे हैं:—

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" (श्री० गी० १८/६६)

क्योंकि उन्हीं के आश्रय से, शरणागति से, कृपा से, सब कुछ सम्भव है। इसलिए कि वे सर्वस्वरूप हैं, अन्य के आश्रय होने से कुछ भी नहीं हो सकता। यही भगवान् अपने प्रिय भक्त उद्धव जी के प्रति भी कह रहे हैं:—

"तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम्।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥
मामेकमेव शरणमात्मनं सर्वदेहिनाम्।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥ श्रीमद्भा० ११/१२/१४,१५)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धव ! तुम श्रुति-स्मृति, विधि-निषेध, प्रवृत्ति-निवृत्ति, सुनने योग्य तथा सुने हुए समस्त विषयों के आश्रय का त्याग करके, सर्वत्र मेरी भावना से सम्पन्न हो, सर्वभूतान्तरात्मा मुझ एक की ही शरण-आश्रय सर्वात्मभाव से ग्रहण करो। क्योंकि मेरे शरणापन्न-मुझसे आश्रित हो जाने पर तुम निर्भय हो जाओगे। यही भगवान् अर्जुन से भी कह रहे हैं :—

"अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥" (श्री० गी० ८/१४)

जो अनन्यरूपेण अन्य आश्रयों से सर्वथा रहित एकनिष्ठ होकर नित्य निरन्तर मेरा स्मरण करता है उस नित्ययुक्त योगी के लिए मैं सुलभ हूँ। उन पर ही मेरी करुणा, वात्सल्य एवं कृपादृष्टि की अनवरत वृष्टि होती है, अन्यों पर नहीं। यही परमहंस शिरोमणि श्री शुकदेव जी ने भी श्रीमद्भागवत में कहा है कि :—

"येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥ (श्री मद्भा० १०/२/३२

कमल नेत्र ! जो आप की भक्ति से रहित पुरुष अपने को विमुक्त मानने वाले हैं उनकी बुद्धि शुद्ध नहीं होती। अतः वे अतिकष्ट से परम पद के मार्ग पर आरूढ़ होकर भी अधोगति को ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि उन्होंने जो आप के अच्युत पादपद्म का तिरस्कार किया है। स्वयं भगवान् ने भी यही कहा है:—

"कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना।
विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः॥" (श्री मद्भा० ११/१४/२३)

शरीर के बिना रोमाञ्च हुए, बिना चित्त के द्रवित हुए, बिना आनन्दाश्रु के प्रवाहित हुए एवं बिना अनन्य भक्ति के अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता। इस प्रकार भगवान् की ही कृपा से, उन्हीं के आश्रय से और उन्हीं की करुणा से अन्तःकरण शुद्ध होता है और उस शुद्धान्तःकरण में भगवान् स्वयं प्रकाशित हो जाते हैं। फिर तो उस भक्त की आंख सदैव भगवान् में ही लगी रहती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वह जहां कहीं भी दृष्टि डालता है वहीं-वहीं भगवान् उसकी दृष्टि का स्वागत करते, अपनी रूपमाधुरी का पान कराते। बस, भक्त इस रूपामृत के पान के द्वारा तृप्त, कृतकृत्य, हो जाता और उसकी दृष्टि सर्वत्र भगवन्मयी हो जाती। फिर ऐसी अवस्था में अन्य आश्रयों का स्वयमेव त्याग हो जाता है। क्योंकि,

"एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेहनानास्ति किंचन" † (अ० उ० ६३)
"सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" ‡ (नि० उ०)
"उपादानं प्रपञ्चस्य ब्रह्मणोऽन्यन्न न विद्यते।
तस्मात्सर्वं प्रपञ्चोऽयं ब्रह्मैवास्ति न चेतरत्॥ (यो० शि० उ० ४।३)

इस जगत् का उपादान कारण ब्रह्म से भिन्न न होने के कारण यह जगत भी ब्रह्मस्वरूप ही है। ब्रह्म से भिन्न अणुमात्र भी नहीं है।

'येन प्रकाशते विश्वम्" (प० ब्र० उ० २०)
"तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" (क० उ० २।२।१५)

उसी के प्रकाश से समस्त विश्व प्रकाशित हो रहा है। उसी से,

"बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एवं पृथग्विधाः॥" (श्री० गी० १०/४,५)

बुद्धि, ज्ञान, असम्मोह, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, भव, अभाव, भय, अभय, अहिंसा, समता, तुष्टि, तप, दान, यश, अयश आदि अन्तःकरण के नाना धर्मों का प्रकाश होता है। अतः अन्तकरण के इन सभी अनात्म धर्मों का आश्रय छोड़कर,

"सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः" (श्री० गी० १५/१५)
"वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः" (श्री० गी० १५/१५)

---

† ब्रह्म एक, अद्वितीय ही है इसमें नानात्व किंचित् भी नहीं है।
‡ यह सब निश्चय ही ब्रह्म है इसमें नानात्व लेश मात्र भी नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सबके प्रकाशक हृदय में विराजित, समस्त वेदों से वेद्य उस एक मात्र भगवान् का अनन्यरूपेण आश्रय ग्रहण करो उस प्रणतपाल परमानन्दगोपीनाथ गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र का ही,

"तं ध्यायेत् तं रसयेत् तं भजेत्" (गो० पू० उ०)

ध्यान करो, उन्हीं का रसास्वादन करो, उन्हीं का भजन करो। क्षणमात्र भी भगवान् के चिन्तन-स्मरण से खाली मत जाने दो। आलस्य, प्रमाद मत करो, संसार की ओर मत देखो, अन्य आश्रयों को मत स्वीकार करो, नहीं तो बड़ी हानि होगी। यही भगवान् ने स्वयं कहा भी है

"मामेव यः परित्यज्य वस्तुनोऽर्थेऽभिधावति।
विवेकरहितो मूर्खो दुःखमेवाभिपद्यते॥
तस्य त्रैकालिकी हानिर्भवत्येवान्यथा न हि!" (आ० पु० २८।१२,१३

जो मुझे छोड़कर किसी अन्यवस्तु के लिए दौड़ता है उस विवेकरहित और मूर्ख को केवल दुःख ही हाथ लगता है। उसकी तीनों काल में हानि होती है उससे भिन्न उसे कुछ नहीं मिलता। अन्यत्र भी कहा है:—

"सा हानिः तन्महच्छिद्रं सा चान्धडमूजढता।
यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवं न चिन्तयेत्॥"

यही हानि-महान दोष अन्धापना, जड़ता, तथा मूढ़ता है कि एक मुहूर्त या एक क्षण भी भगवान् के चिन्तन के बिना व्यर्थ खोया जाय। बस, जहां भी भगवान् के आश्रय का त्याग हुआ, जीव के स्वाभाविक दुर्जय काम क्रोधादि महान् शत्रु तुम्हें नष्ट कर देंगे, श्रेय-साधन से भ्रष्ट कर देंगे।

श्रुति भगवती भी यही कहती हैं:—

"न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः" (के० उ० २/५)

यदि उस परमात्मा को नहीं जाना, तो महान्हानि है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

अब इस सूत्र में भगवद्विरोधी भावों में उदासीनता का स्वरूप बतला रहे हैं।

लोके वेदेषुतदनुकूलाचरणंतद्विरोधिषूदासीनता ॥११॥

लौकिक-वैदिक क्रियाओं में भगवान् एवं भक्ति के अनुकूल आचरण करना ही भगवद्विरोधी भावों के प्रति उदासीनता है ॥११॥

वेदों में कर्म उपासना एवं ज्ञान का अधिकार भेद से उपदेश दिया गया है। अतः उसमें जो अपने साधन के अनुकूल हो, उन्हें ही ग्रहण करना चाहिए। अन्य प्रतिकूल साधनों को नहीं, उससे तो उदासीन ही रहना चाहिए। जिससे भक्त की निष्ठा परिपक्व होती जाय एवं भगवान् के चरणारविन्द का आश्रय तथा आस्वादन होता जाय। कहा भी है :—

"यस्मिञ्छास्त्रे पुराणे वा हरिभक्तिर्न दृश्यते।
श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ॥"

जिस शास्त्र एवं पुराण में भगवद्भक्ति न दिखाई दे, उसके वक्ता यदि स्वयं ब्रह्मा ही हों तो भी उसे न सुने। उससे भी उदासीन रहे। तथा लोक में जिन साधु-संन्यासियों के संग से भक्ति का विरोध हो उनसे भी उदासीन रहे। तथा संसार में भी नाना प्रकार की चेष्टायें हो रही हैं उनसे भी उदासीन होकर भगवान् के पादपद्म मकरन्दरस का रसिक होकर सर्वदा सर्वकाल में भगवान् पर ही निर्भर रहे। उन्हीं का एकमात्र आलम्बन हो, आशा हो, भरोसा हो, विश्वास हो, बल एवं आश्रय हो। वही माता, पिता, गुरु, ईश्वर, जीवन-सर्वस्व हों। क्योंकि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥"

के सिद्धान्त से, भक्त के भगवान् ही सर्वस्व हैं। जैसे नवजात बच्चे का आश्रय एकमात्र माता की गोदी ही है, वैसे ही उस मां की ही गोदी का एकमात्र आश्रय रहे, अन्य का नहीं। इसी में सर्वस्व निहित है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

अब इस सूत्र में शास्त्र रक्षा का आदेश दिया जा रहा है।

भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणम् ॥ १२ ॥

अन्यथा पातित्याशङ्कया ॥ १३ ॥

निश्चय दृढ़ होने के बाद शास्त्र रक्षा हो सकती है। परन्तु निश्चय दृढ़ होने के पूर्व शास्त्र रक्षण कर्तव्य नहीं है, नहीं तो पतित होने का भय है ॥१२,१३॥

भक्तिनिष्ठा की दृढ़ता के पूर्व ही शास्त्र रक्षा में लग जाने से भक्ति के स्थान से पतित--भ्रष्ट हो जाने की शंका है। भगवान् ने भी यही कहा है:—

"तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥" (श्रीमद्भा० ११/२०/९)

जब तक वैराग्य न हो जाय, जब तक मेरी कथा-श्रवण में श्रद्धा न हो जाय, तभी तक कर्म करणीय हैं और जिस काल में वैराग्य हो जाय अथवा मेरी कथा श्रवण में श्रद्धा हो जाय तब कर्म नहीं करना चाहिए। क्योंकि

"भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धया" (श्रीमद्भा० ११/१४/२१)
"जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत कर्मचोदनाम् ॥" (श्रीमद्भा० ११/१०/४)

मैं केवल श्रद्धा-भक्ति से ही ग्राह्य हूं। भगवान् के प्रति श्रद्धा हो जाने के पश्चात् लौकिक-वैदिक कर्मों का आदर नहीं देना चाहिए, अपितु

"सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रय"
"भक्तियोगो निरुपद्रवः"
"भक्तियोग एव प्रशस्यते"
"भक्तिनिष्ठो भव" (त्रि० म० उ० ८/१)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समस्त साधनों को छोड़कर निरुपद्रव एवं प्रशस्त भक्ति का आश्रय लेकर भक्तिनिष्ठा की परिपक्वता के लिए,

"कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्यम्" (ब्र० वै० पु०)

"कोटि कन्दर्प कमनीयं शोभाधामनोहरम्" (ब्र० वै० पु०)

"अमृत वपुः" (स्मृति)

करोड़ों पूर्णिमा एवं करोड़ों कामदेव के समान कमनीय, शोभा के धाम, अत्यन्त मनोहर, अमृतस्वरूप भगवान् का उत्कण्ठित-उल्लसित हृदय से तन्मय होकर, उनके नामामृत, गुणामृत, लीलामृत, धामामृम का पान करते हुए, नित्य निरन्तर अखण्ड भजन ही करना चाहिए। इस प्रकार,

"समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मताः [मुक्ति० उ० २/१०]

जब चिरकालिक भजन के द्वारा भगवान् की अहैतुकी दया से भक्तिनिष्ठा परिपक्व हो जाय और सर्वत्र सर्वदा परम प्रेमास्पद प्रभु का दर्शन होने लगे, उसके तन, मन, धन, सब भगवान् ही हो जांय एवं उसके रग-रग में, रोम-रोम में भगवान् रम जांय और वह भगवन्मय हो जाय, तब यदि शास्त्र-रक्षा हो तो कोई आपत्ति नहीं। ऐसे ही भगवत्प्रीति से नित्य तृप्त महात्मा, जिन्हें पतन का कोई भय नहीं है, लोकसंग्रह किया करते हैं। ऐसे ही कहा भी है:—

"धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह" [श्रीमद्भा० ११/२/३५]

दृढ़निश्चयी इस प्रशस्त, निरुपद्रव भक्ति मार्ग पर आंख बन्द करके दौड़ने पर भी न कहीं फिसलता है और न कहीं गिरता ही है। अथवा भगवान् नारद जैसे मंगलमूर्ति विरक्तशिरोमणि भक्तियोग के भास्कर कारक पुरु, जो

"निस्त्रैगुण्ये पथिविचरतां को विधिः को निषेधः"

"आत्मारामाश्च मुनयोः निर्ग्रन्थाप्युरुक्रमे" (श्रीमद्भा० १।७।१०)

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः" (मु० उ० २।२८)

आत्माराम हैं तथा जिनका परावरैकत्व विज्ञान दर्शन के द्वारा हृदयग्रन्थि एवं समस्त संशय-संदेह नष्ट हो चुका है तथा जिसके कर्म क्षीण हो गए हैं, वे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लोक-वेद की मर्यादा का अतिक्रमण किए हुए विधि-निषेध से अतीत आप्तकाम पूर्णकाम महाज्ञानी जीवन्मुक्त पुरुष भगवान् की चिन्मयी-मधुमयी अहैतुकी भक्ति करते हुये, लोक को भी पावन अर्थात् अमृताभक्ति से सिक्त करेने के लिए स्वच्छन्द पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं। कहा भी है:—

"अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमन्त्यातुरं जगत्॥ (श्रीमद्भा० १।६।३९)

अहा! धन्य हैं देवर्षि नारद, जो शार्ङ्गधन्वा भगवान् की कीर्ति अपनी वीणा पर प्रेमविह्वल हो, गान करते हुए, इस आतुर-दुःखग्रस्त जगत् को आनन्दित करते रहते हैं।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमदर्शिनी

इस सूत्र में लोक संरक्षण एवं भोजन आदि व्यापार की व्याख्या की जा रही है।

लोकोऽपि तावदेव किन्तुभोजनादि-व्यापारस्त्वाशरीरधारणावधि ॥१४॥

लोक व्यवहार भी दृढ़ निश्चय—भक्ति की प्राप्ति के पश्चात् ही होना चाहिए। परन्तु भोजन आदि का व्यापार तो शरीरधारणपर्यन्त होना चाहिए। भगवान् ने भी यही कहा है :—

"शारीरं केवलं कर्मकुर्वन्" [श्री० गी० ४।२१]
"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु" [श्री० गी० ६।१७]

केवल शरीर निर्वाह के लिए कर्म करता हुआ युक्त आहार—विहार एवं चेष्टा से युक्त हो, भगवान् के शरणापन्न हो, भक्तिनिष्ठा से सम्पन्न होकर सदैव भगवान् के रूपामृत, नामामृत, लीलामृत, धामामृत का पान करते हुए,

"मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः" (श्रीमद्भा० ११।२६।१६)

सर्वत्र समस्त प्राणियों में मन, वाणी एवं शरीर की सम्पूर्ण वृत्तियों से भगवद्-दृष्टि से होकर कालयापन करना चाहिए।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में विभिन्न मतानुसार निश्चय की दृढ़ता के लक्षण बतलाये जा रहे हैं।

तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् ॥१५॥

उस निश्चय के दृढ़ता के लक्षण नाना मतानुसार कहे जा रहे हैं। यहां पर 'तत्' का अर्थ भक्ति नहीं है। क्योंकि भक्ति का लक्षण तो पहले ही

"*सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा*" (*नारद भक्ति सूत्र*)

"*अमृतस्वरूपा च*" (*नारद भक्ति सूत्र*)

इन दो सूत्रों के द्वारा किया जा चुका है। अतः यहां 'तत्' शब्द का प्रयोजन निश्चय की दृढ़ता के लिए ही है और उस निश्चय के दृढ़ता के लक्षण महापुरुषों ने अपने-अपने मतानुसार नाना प्रकार के बतलाए हैं। क्योंकि,

"*भावग्राह्यमनीडाख्य*,, [*श्वे उ० ५।१४*]

भगवान् तो केवल भावग्राह्य हैं। अतः जिसका जैसा भाव होता है वैसे ही उसकी भक्ति भी होती है और वैसे ही उसको भगवान् का दर्शन भी होता है। अतः इसमें नाना मत होना स्वाभाविक ही है। इसीलिए भक्ति में निश्चय की दृढ़ता का महापुरुषों ने नाना लक्षण बताया है।

पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः ॥ १६ ॥

पूजा, कीर्तन आदि में अनुराग का होना ही निश्चय की दृढ़ता है। ऐसा महर्षि पराशरनन्दन भगवान् वेदव्यास का मत है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कथादिष्विति गर्गः ॥ १७ ॥

भगवत्कथा श्रवणादि में अनुराग का होना ही निश्चय की दृढ़ता है। ऐसा गर्गाचार्य का मत है।

आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः ॥ १८ ॥

आत्मरति का अविरोधी अनुराग ही निश्चय की दृढ़ता है। ऐसा महर्षि शाण्डिल्य का मत है।

पूजादिष्वनुरागः

स्वयं भगवान् ने भी यही कहा है :—

"योऽर्चयेत्प्रतिमां प्रीत्या स मे प्रियतरो भुवि" (गो० उ० उ० १५)

"श्रीविष्णोरर्चनं ये तु प्रकुर्वन्ति नरां भुवि।
ते यान्ति शाश्वतं विष्णोरानन्दं परमं पदम् ॥" (*विष्णु रहस्य*)

"जो प्रीतिपूर्वक मेरी प्रतिमा की पूजा करता है वह भूमण्डल में मेरा अतिशय प्रिय है। वह मेरे सनातन आनन्दस्वरूप परमपद को प्राप्त करता है।" इस सिद्धान्तानुसार, भगवान् की पूजा-क्रिया में प्रीति अर्थात् भगवान् के दिव्य चिन्मय विग्रह के पूजन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, धूप, दीप, आरती, वन्दन आदि में प्रेम का होना। स्तुति, नमस्कार, प्रदक्षिणा आदि में श्रद्धा का होना। जप, कीर्तन, पाठ एवं पुष्प, माला, वस्त्र, आभूषण आदि के चढ़ाने में प्रेम का होना, झाड़ू-बहारू लगाना, लीपना-पोतना तथा महोत्सव की यात्रा, महान् उत्साह—उत्सव से करना। तात्पर्य यह है कि बादल गरजता है, सुनते हैं सब, परन्तु आनन्दमग्न होता है केवल मोर। पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखते हैं सब, परन्तु उल्लास समुद्र को ही होता है। उसी प्रकार पुण्योपार्जित कोई महाभाग्यवान् भावुक भक्त जहां भगवान् के चिन्मय, अमृतवर्षी विग्रह का स्मरण करता है बस, वहीं आनन्द-प्रेम की बाढ़ में डूबने लगता है। यह धूप, दीप, नैवेद्य भगवान् के लिए है बस, यहीं से उसकी आर्द्री अवस्था

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रारम्भ होने लगती है। आरती स्पर्श, स्तुति, नमस्कार, प्रदक्षिणा में तो कहना ही क्या ? वह प्रेम विभोर हो उठता। कीर्तन—

श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे !
हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !

भक्तिमहादेवी के इस दिव्य अमृतस्वरूप अनिवर्चनीय नामों को सुनते ही दिव्योन्माद—महाभाव से सम्पन्न हो जाता। जिससे उसे नित्य नये-नये रस की स्फूर्ति, नये-नये अनुभवों की अनुभूति, नये-नये भाव, नया-नया उत्साह, नित्य नया-नया प्रकाश, नित्य नई-नई प्रीति—रति की अनुभूति होने लगती। उस काल में उस भक्त का जीवन दिव्य हो जाता। इसलिए कि वह दिव्य-चिन्मय का पुजारी है। अहा ! कैसा दिव्य अलौकिक जीवन है उसका। यह शरीर भगवान् की है, भगवान् के लिए है, उनकी पूजा की सामग्री है। आत्मवत् अपनी भूख उनकी भूख है, अपनी प्यास उनकी प्यास है, अपनी नींद उनकी नींद है, अपना विश्राम उनका विश्राम है—इस भाव से भक्त अपने अन्तरात्मा से, प्रेमपूर्ण हृदय से, प्रेम से, प्रेमास्पद प्रभु की आरती करता, भगवान् से प्रेमालाप करता, अपने प्रेमपूर्ण हृदय में उन्हें लिए रहता, अपनी त्रुटियों के ध्यान आने पर रोता एवं भगवान् की दयालुता-कृपालुता को सोचकर उनपर निछावर हो जाता और यह अनुभव करता कि मैं भगवान् की गोदी में बैठा हुआ हूँ, मुझे भगवान् कभी नहीं छोड़ते। हम्हीं अपनी कुटिलता, वंचकता, विषयलम्पटता एवं मोह के कारण प्रभु को भूले हुए हैं। उन्होंने तो अत्यन्त कृपा करके अपनी प्राप्ति के साधनभूत इस देव-दुर्लभ मानव शरीर को दिया। सो भी भुक्ति-मुक्ति के क्षेत्र भारत देश में। उस प्रभु ने, माता ने, पिता ने, जीवन सर्वस्व ने हमारे लिए सूर्य-चन्द्र, चित्रित आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी की व्यवस्था किया। भला, उसके उपकार का, निष्कारणवत्सलता का, दयालुता का कोई अन्त है ? परन्तु फिर भी, हम इतने कृतघ्न, नीच, पतित, लोलुप, दुर्मति, दुष्ट, दुष्कर्मी हैं कि उनका क्षणमात्र के लिए भी ध्यान नहीं करते। ओह ! भला, इस नीचता का, इस विस्मृति का, इस मोह का कोई अन्त है ? इस प्रकार भगवान् की अनन्त-अनन्त अहैतुकी दया की अनुभूति एवं अपनी कृतघ्नता, नीचता का विचार होने से जब चित्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान् की कृपा से भगवान् में आसक्त हो जाय, भगवान् के दर्शन एवं स्पर्श के बिना जीवन दूभर हो जाय। भगवान् में अनन्य अनुराग हो जाय, तब भक्ति का निश्चय दृढ़ हुआ समझना चाहिए। ऐसा पराशरनन्दन भगवान् वेदव्यास का मत है।

कथादिष्विति गर्गः—

कथा में रति-प्रीति का होना। क्योंकि परम प्रेम प्रमाणभूता गोपियों के कथनानुसार,

"तवकथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः।।" † [श्रीमद्भा० १०/३१/९]

इसी कथामृत के सेवन से संसारानल से सन्तप्त जीवों को अमृतत्व की प्राप्ति होती है। इसी से हृदय द्रवीभूत होगा, इसी से अन्तःकरण की शुद्धि होगी, इसी से भगवद्रस के रसिक बनेंगे, इसी से भगवान् की झांकी मिलेगी, इसी से मन श्यामरंग में रंग कर सर्वत्र श्याम को देखने लगता है, इसी से भक्ति-भागीरथी की प्राप्ति होती है, इसी से दिव्य नये-नये भावों की सृष्टि होती है, इसी से जीव दिव्यत्व-चिन्मयत्व को प्राप्त होता है, इसी से भगवान् की प्राप्ति का प्रधान साधन परम विरह—परम प्रेम एवं महाभाव की प्राप्ति होगी, इसी से रास के दिव्य रस की अनुभूति होती है, यही भव रोग की एक मात्र महौषधि है, इसी से संसार से वैराग्य होता है, इसी से जीव ज्ञान के द्वारा कृतकृत्य हो परमानन्द का अनुभव करता है, इसी से समस्त कामनाओं, वासनाओं, राग-द्वेष एवं शोक-मोह का अभाव होता है, इसी से शीघ्र ब्रह्मसाक्षात्कार होता है, इसी से भक्त भगवान् के साथ

---

† प्यारे श्यामसुन्दर! तुम्हारी कथा अमृत है, संसार के तप्त जीवों को जीवन दान करने वाली है। बड़े-बड़े भक्ति, ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न कवियों ने उसका गान किया है। क्योंकि वह समस्त पापों को नष्ट करने वाली है, केवल श्रवण मात्र से ही मंगल प्रदान करने वाली है, वह अनन्त श्री से परिपूर्ण है। संसार में वे सर्वश्रेष्ठ दाता हैं, जो तुम्हारी लीला कथा का गान करते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रति-प्रीति, क्रीडा, विनोद को प्राप्त करता है। इसी कथामृत रस से सिक्त पुरुष भगवान् से रास रचाने के योग्य बनता है, इसी से जीव आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्माराम बनता है, इसी से सगुण-निर्गुण, द्वैत-अद्वैत आदि वादों का भेद-भ्रम शान्त होता है, इसी कल्पवृक्ष से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है। कहां तक कहा जाय, इसी से सर्वस्व की प्राप्ति होती है। इस कथामृत में अपार आनन्द, अपार माधुर्य, अपार रस, अपार शान्ति है। इसकी महिमा का गान कौन कर सकता है? अरे, यह तो भगवद्वियोगजन्यसन्ताप को भी शान्त करने का सामर्थ्य रखता है। अतः महान् है। इसीलिए तो कथामृतरस के परम रसिक हनुमान जी मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के साकेत लोक—नित्यधाम जाते समय उनके वियोग होने पर ही भगवान् के आदेशानुसार कथामृत के लोभ से इस पृथ्वी पर रुक गए और भगवान् से कहा:—

"यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी।
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञानमनुपालयन्॥

जब तक लोक में आप की पतित पावनी कथा रहेगी, तब तक मैं आप की आज्ञा का पालन करता हुआ रहूंगा।

इसी कथामृत को पीने के लिए सम्राट् परीक्षित ने साम्राज्य का तृणवत् त्याग कर दिया और इसके श्रवणमात्र से मुक्त हुए। अन्य वेद, वेदान्त, सांख्य, योगादि साधनों से नहीं।

गोपियों ने इस कथामृत के महत्व के विषय में कहा भी है:—

"यदनुचरित लीला कर्णपीयूष विप्रुट् सकृददन विधूतद्वन्द्व धर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इव विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति॥"

(श्रीमद्भा० १०/४७/१८)

इसी कथामृत के आस्वादन से दुस्त्यज गृहपरिवार आदि को छोड़कर बड़े-बड़े परमहंस सुखदुःखात्मक द्वन्द्वों से मुक्त हो अकिंचन भिक्षाजीवी बन गए।

परमहंसशिरोमणि श्रीशुकदेव जी ने भी इस कथामृत के महत्ता के विषय में कहा है:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ।
कृष्णलीला प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेनवासरान् ॥" (श्रीमद्भा० १०/३५/१)

कृष्ण जब गोचारण के लिये ब्रज में चले जाते थे तब उनके प्रेम से द्रवित चित्तगोपियां उनकी लीला का गान करती हुईं उनके विरहजन्य दुःख से अपने को शान्त करती हुईं दिन व्यतीत करती थीं।

"वीणां करे मधुमतीं मधुर स्वरां तामाधायनागरशिरोमणि भावलीलाम् ।
गायन्त्यहो दिनमपारमिव स्रवन्ति दुःखान्नयत्य हह साहृदयेऽस्तु राधा ॥"

करकमलों में मधुर स्वर वाली मधुमती वीणा को लेकर नागरशिरोमणि आह्लादिनी वरीयसी परमान्तरंगभूता, कृष्ण-आराध्या, कृष्णस्वरूपा सर्वाद्या सर्ववंद्या, रासेश्वरी, सर्वेश्वरी, श्यामसुन्दर की भावमयी लीला को गाती हुई नेत्रों से अश्रु बरसाती हुईं दिन को अनन्त युग के समान किसी प्रकार काटती हैं। ऐसी वह वृन्दावनविहारिणी सत्यासत्यपरा, पूर्णा, परात्परतरा भुक्ति-मुक्तिप्रदा परमेश्वरी श्री राधा मुझ दीन के हृदय में दरिद्र के चिन्तामणिवत् निवास करें।

इस प्रकार,

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्" (श्रीमद्भा० ७/५/२३)

जब कथामृत, लीलामृत, के श्रवण, कीर्तन से रति-प्रीति, अनुराग हो जाय, तब दृढ़ निश्चय समझना चाहिए।

यह कथामृत श्रवण ही प्रथम भक्ति है।

आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः—

पूजा या कथा आदि में जो अनुराग हो, वह आत्मरति का अविरोधी अर्थात् विरोध करने वाला न हो यानी आत्मरति-सम्पन्न हो।

ऐसे ही महर्षि शाण्डिल्य ने कहा भी है—

"उभयपरां शाण्डिल्यः" (शा० भ० सू० २/३१)

भक्ति वह है जिसमें उभयात्मक प्रीति हो अर्थात् आत्मरति भी हो एवं परमात्मरति भी हो। तात्पर्य यह है कि जब पूजा-कथा में अपने को मस्ती,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आनन्द मिलने लगे। साथ ही साथ उस मस्ती-आनन्द में परमात्मा का विस्मृति भी न हो अर्थात् परमात्मा का भी ज्ञान बना रहे।

वाह्य वस्तुओं की अपेक्षा से रहित, निरपेक्ष, अपने अन्तरात्मा से रस—आनन्द आना चाहिए। हृदय में भगवान् के संस्पर्शज सुख का आस्वादन—अनुभूति होनी चाहिए। उसी में विभोर, तन्मय, तद्रूप होना चाहिए। उसी से रति-प्रीति, क्रीडा, विनोद होना चाहिए।

धूप, दीप, आरती, पुष्प, माला, सजावट, सुगन्ध, प्रसाद, स्वर वाद्य, संगीत, घण्टा, घड़ियाल, शंख, तुरही आदि में नहीं। इस प्रकार जब अनुराग हो जाय, तब दृढ़ निश्चय समझना चाहिए।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमदर्शिनी

अब देवर्षि नारद भगवान् वेदव्यास, गर्गाचार्य एवं महर्षि शाण्डिल्य का मत बताने के बाद अपने मत का प्रतिपादन कर रहे हैं।

नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ॥ १६ ॥

परन्तु नारद भगवान् को अपने समस्त कर्म अर्पित कर देने एवं उनके विस्मरण में परम व्याकुलता होने को दृढ़ निश्चय कहते हैं।

भक्ति के प्रधानाचार्य देवर्षि नारद का कथन है कि पूजा या कथा में आत्मरति का अविरोधी अनुराग होने पर भी दृढ़ निश्चय हो गया, ऐसा मान्य नहीं है। अपितु समस्त कर्मों को भगवान् को समर्पित कर दो, परिच्छिन्न मैं—जीव के लिए नहीं और न विकृत जड़ प्रकृति के लिए।

अथवा न विनाशी धर्म, कर्म, देश, स्त्री, पुत्र, धन आदि के लिए। यही भगवान् भी दृढ़ निश्चयी भक्त का लक्षण बता रहे हैं :—

"सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥" (श्री० गी० १२/१४)

जो सदा सर्वत्र सर्व अवस्थाओं में सन्तुष्ट रहता है, संयतचित्त तथा दृढ़निश्चयी है, तथा जिसने अपने मन-बुद्धि को मुझमें अर्पित कर दिया है वह भक्त मुझे प्रिय है। तात्पर्य यह है कि भक्त के मन एवं बुद्धि भगवान् में ही समर्पित होते हैं अर्थात् मन, बुद्धि के समर्पण के कारण उसके चित्त, अहं आदि के समस्त व्यापार भगवान् के ही अर्पण होते हैं अन्य के नहीं। यही "तदर्पिताखिलाचारिता" के द्वारा नारद जी भी कह रहे हैं कि अपने समस्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आचार—दिनचर्या को सुषुप्ति से उठकर सुषुप्ति पर्यन्त भगवान् के अर्पण कर दो अर्थात् तुम मत रह जाओ। तुम भगवान् के हाथ के यन्त्र—कठपुतली बन जाओ। वे जैसे नचावें वैसे नाचो, जैसे रक्खें वैसे रहो।

"सन्तुष्टः सततम्"   (श्री० गी० १२/१४)

ऐसा जब सतत सर्वदा सर्व अवस्था में सन्तोष हो जाय, जब तुम भगवान् के लिए ही स्वाभाविकरूप में नाचने लगो, उन्हीं के लिए समस्त क्रिया कलाप करने लगो, वे ही तुम्हारे सदा सर्वदा सर्वत्र लक्ष्य हों, उन्हीं सर्वेश्वर के ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य, सौहार्द, कारुण्य, वात्सल्य आदि गुणों पर बुद्धि मुग्ध हो। वे ही गति, मति, चेष्टा, निष्ठा में हों। उसी प्रियतम पर जीवन निछावर हो, उसी प॒ तन, मन, धन सब वारे गए हों तथा उसी रंक एवं सर्प के मणिवत् जीवनधन, प्राणधन, जीवनाधार, प्राणाधार, जीवन सर्वस्व के विस्मरण–विस्मृति में परमव्याकुलता, परमविरहातुरावस्था हो, जीवन-प्राण का रखना दूभर हो जाय, खाने-पीने आदि का व्यापार बन्द हो जाय। वह ग्रहग्रस्त-उन्मत्तवत् बेचैन हो उठे, करुणक्रन्दन चीत्कार मचाने लगे, असम्बद्ध बिना सिर-पैर की वार्ता—प्रलाप करने लगे। उसकी एक असाध्य रोगी जैसे महान् कृश एवं मलिन अवस्था हो जाय, नींद समाप्त हो जाय, जलरूपी कृष्ण के विस्मरण वियोग में मीनवत् तड़पता रहे, प्राण देने पर उतारू हो जाय, जीना न चाहे, उसके लिए संसार सूना हो जाय, तब निश्चय दृढ़ समझना चाहिए। सचमुच विस्मरण ही विष-मृत्यु है और स्मरण ही अमृत—जीवन है। ऐसे ही कहा भी है :—

"विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायण स्मृतिः"

भगवान् का विस्मरण ही विपत्ति एवं स्मरण ही सम्पत्ति है। ऐसे ही ब्रह्मवैवर्त एवं श्रीमद्भागवत पुराण में भी कहा गया है :—

"सर्वापदो विनश्यन्ति श्री हरेः स्मरणादपि।"   (ब्र०वै०पु०कृ०ख० ४/५/७९)

"हरिः स्मृति सर्वविपद् विमोक्षणम्"   (श्रीमद्भा०)

हरि–स्मरण समस्त विपत्तियों से विमुक्त करने वाला है।

"स्मर्तव्यं सततं विष्णुः विस्मर्तव्यो न जातुचित्।
सर्वेविधिनिषेधाः   स्युरेतयोरेव   किङ्कराः॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अतः भगवान् का नित्य-निरन्तर स्मरण ही करना चाहिए। कभी भी विस्मरण–विस्मृति नहीं होनी चाहिए। बस, इतना सा समस्त शास्त्रों का सार-सार संग्रह है। तात्पर्य यह है कि उस परमव्याकुलता विरहावस्था में भगवान् की विस्मृति–वियोग में प्राण कहता है कि प्राणेश्वर के वियोग में अब मैं नहीं रहूंगा क्योंकि अब मेरा कोई प्रयोजन नहीं रहा। मैं तो उन्हीं का हूं और उन्हीं के लिए हूं। अतः शीघ्र मिलाओ, नहीं तो चला। ऐसे ही मन भी कहता है कि ब्रह्म-सुख को भी तिरस्कृत करने वाले उस निखिल सौंदर्य माधुर्य-निधिसर्वस्व सौन्दर्यसार परमानन्द चिन्मूर्ति आनन्द वर्षी अमृतमूर्ति ने मुझे पागल-दीवाना बना दिया है, उसके वियोग में कैसे रहूं ? कहां रहूँ ? क्या करूँ ? अहं कहता है कि मैं तो उसी का हूं और वह मेरा है। भला, उस प्रणतपाल के विस्मरण-वियोग में मेरा क्या प्रयोजन ? हाथ कहता है कि मैंने उस वनमाली, कमलमाली, कमलनाभि, कमलनेत्र, कमलापति सर्वेश्वर को स्नान कराया, अङ्गराग लगाया, खिलाया, पिलाया, सुलाया, सजाया, अलङ्कृत किया, फिर मैं उसके विस्मरण-वियोग में क्या करूँ ? कान कहता है कि जिसकी वाणी अमृत से भी अधिक मधुर है, वह वेणुनादी, नृत्यशाली, मधुपति कहां गया ? आंख कहती है कि ओह ! जिसका एक-एक अङ्ग सच्चिदानन्दस्वरूप है, जिसके एक-एक अङ्ग पर कोटि-कोटि कामदेव की शोभा निछावर है, वह प्रियतम कालिन्दीकूली, लोलकुण्डली, मयूरमुकुटी, कहां है ? बस, वहीं चलो, जहां वह छलिया छिपा हुआ है। यही वाणी भी कहती है कि हां ! हां !! ठीक है, वहीं चलो। रसना का भी यही कथन है कि जिसके अधरामृत को पीकर तृप्त-तृप्त, कृतकृत्य होती थीं, हाय ! उसके विना अब कैसे रहूंगी ? पैर भी यही कहता है कि दौड़ो ! दौड़ो !! शीघ्रातिशीघ्र समस्त क्रियाओं एवं साधनाओं के लक्ष्यभूत परम प्रेमास्पद गोपीवल्लभ का दर्शन करो। इस प्रकार समस्त इन्द्रियां विकल हो शोर मचाने लगती हैं कि बस, उस प्रियतम के देश में चलो, जहां वह सदा रहता है जहां कभी भी उसका वियोग नहीं होता। इसी परम व्याकुलता-परम विरहातुरावस्था में भक्त भगवान् के विरहजन्य असह्य वेदना को न सह सकने के कारण जड़ों-वृक्षलता, आदि से भगवान का पता पूछता. उनके भी पैरों पड़ता कि जिस किसी भी प्रकार से

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उनका दर्शन हो। यह भक्त का महा दिव्य उन्माद है। यही महाविरह सुप्त जीवको महामोह रूपी घोर रात्रि से जगाकर जड़ देहाध्यास नष्ट कर, उसे चिन्मय बनाकर, चिन्मय भगवान् से नाता जोड़ता और समस्त ब्रह्माण्ड को चिन्मय बनाकर दिखा देता। अहा! नमस्कार है इन विरह देव को, जो जड़-चेतन के भेद भाव को मिटा देते हैं।

इस विशेष प्रेम में भगवद्विस्मरण नहीं होता और यदि होता है तो वह प्रेम ही कैसा? भक्त को प्रेमातिरेक-उत्सुकता के कारण ऐसा भ्रम होता है कि मुझसे भगवान् की विस्मृति हो गई। अतः वह उसके लिए परमव्याकुल हो उठता, करुण क्रन्दन करता, चीत्कार मचाता है। गोपियां तो नित्य कृष्ण की स्मृति कृष्णसागर में डूबी रहती थीं, फिर वहां विस्मरण का प्रश्न ही नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अस्त्येवमेवम् ॥ २० ॥

यह ठीक ऐसा ही है ॥ २० ॥

देवर्षि नारद अपने मत की विशेष दृढ़ता के लिए कहते हैं कि समस्त कर्मों का समर्पण एवं भगवान् के विस्मरण होने में परम व्याकुलता का होना—यह जो भक्ति का दृढ़ निश्चय बताया गया, यही ठीक है।

—·○·—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

अब इस सूत्र में नारद जी निश्चय की दृढ़ता के लिए परम प्रेम प्रमाण-भूता गोपियों का प्रमाण दे रहे हैं।

यथा व्रजगोपिकानाम् ॥ २१ ॥

जैसे परम प्रेम प्रमाणभूता व्रज की गोपियों की थी॥ २१॥

गोपियों की परम व्याकुलता—परमविरह दिव्यमहाभाव, तन्मयता के विषय में क्या कहा जाय। वह तो सर्वथा अलौकिक, अकथनीय, अनिर्वचनीय ही था। आकर्षक कृष्ण ने प्रेयसियों के हृदय में विरहाग्नि–वैराग्याग्नि को उद्दीप्त करने के लिए आकर्षक वंशी बजाई। बस, वंशी ध्वनि सुनते ही प्रेम दीवानी गोपियां पगली हो उठीं और महाबाढ़ से युक्त बरसाती नदी की भांति कगारों को तोड़ती-फोड़ती, काटती-पीटतीं, वृक्षों को ढहाती हुई, अपनी जोम--प्रबल प्रवाह में हू-हू शब्द करती हुई, पतिपुत्र, देह-गेह, वस्त्राभूषण आदि को छोड़ती, फेंकती हुई, प्रबल प्रचल प्रेम-प्रवाह--प्रबल वैराग्य की बाढ़ में, जोम में, वे अपहृतात्मायें कृष्णमिलनोत्सुका अपने प्रेमास्पद परम प्रियतम सागरस्वरूप कृष्ण से मिलने के लिए दौड़ पड़ीं।

"दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः॥
परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून पयः।
शुश्रूषयन्त्यः पतीन् कश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम्॥
लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने।
व्यत्यस्त वस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ (श्रीमद्भा० १०/२९/५-८)

हां ! तो कैसे दौड़ीं ? किस अवस्था में दौड़ीं ? दूध दुहना छोड़कर, दोहनी पटक कर, दूध आग पर चढ़ा हुआ छोड़कर, भोजन परसते समय हाथ का भोजन फेंककर, पुत्र को दूध पिलाते उसे भूमि पर डालकर, पति-सेवा छोड़ कर, भोजन छोड़कर, घर लीपना, वर्तन मलना छोड़कर, अञ्जन लगाना छोड़कर अरे, सर्व कर्मों को सर्वथा छोड़कर, जो जैसे जिस अवस्था में जहां थीं वैसे ही उसी अवस्था में वहां से अविलम्ब विना किसी को सूचित किए ही दौड़ पड़ीं उस मधुमयी वंशी के मधुमय मधुर स्वर को सुनकर। पति, पिता, बन्धु-बान्धवों ने बहुत रोकना चाहा, परन्तु अमृतमूर्ति गोविन्द मूर्ति ने जो उनके मन को अपहृत कर लिया था। इसलिए वे कृष्ण रूप पर मोहिता-मुग्धा न रुक सकीं। उनके वस्त्राभूषण अस्त-व्यस्त हो रहे थे, बुद्धि ठिकाने में नहीं थी। अतः पैर का आभूषण हाथ में और हाथ का कान में, एक नेत्र में अञ्जन, तो दूसरा अञ्जन रहित-कोरा। इस परवैराग्यावस्था में निर्भय हो, प्रियतम के मिलने की उत्सुकता-उत्कण्ठा-उल्लास में उन्होंने कृष्ण के प्रेम—महामिलन की उत्सुकता में अपने धर्म पति-पुत्रादि की सेवा, पति के अनुगमन से उस धर्म आर्यपथ लोक-परलोक सबको छोड़ा। ओह ! स्त्री होने पर भी ऐसा आश्चर्यजनक त्याग, वैराग्य एवं प्रेम,

"न भूतो न भविष्यति"

न तो सृष्टि में कभी हुआ, न है, न भविष्य में कभी होने वाला ही है। तभी तो उद्धव जी ने उनके लोकातीत प्रेम को देखकर उन पर अपने को निछावर करते हुए कहा:—

"आसामहोचरणरेणु जुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥"

(श्रीमद्भा० १०/४७/६१)

मैं चाहता हूं कि,

"जयति तेऽधिकम्" (श्रीमद्भा० १०/३१/१)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"गुह्याद् गुह्यतमं रम्यं मध्यं वृन्दावनं भुवि ।
अक्षरं परमानन्दं गोविन्द स्थानमव्ययम् ॥ (प० पु० पा० ख० ६९/७१)
गोविन्द देहतोऽभिन्नं पूर्णब्रह्म सुखाश्रयम् ।
मुक्तिस्तत्र रजः स्पर्शात् तन्माहात्म्यं किमुच्यते ॥ (प० पु० पा० ख० ६९/७२)

बैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ, गुह्योत्तमोत्तम, अनिर्वचनीय, अव्यय परमानन्द कृष्णस्वरूप, पूर्णब्रह्मसुख के आश्रयभूत मुक्तिप्रद

"धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च" (श्रीमद्भा० मा० १।६१)

धन्यातिधन्य वृन्दावन में, जिसके संसर्गमात्र से प्रेमा-प्रौढ़ा भक्ति नृत्य करती है, उस व्रज में कोई गुल्म, लता, औषधि बन जाऊं, जिस पर इन प्रेमावतार गोपियों की चरणरज पड़ती रहे। क्योंकि इन्होंने दुस्त्यज स्वजन तथा आर्यपथ को त्यागकर उस मुकुन्द को प्राप्त कर लिया, जिसको श्रुतियां भी अभी ढूंढ़ रही हैं, परन्तु पाईं नहीं।

"वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥" (श्रीमद्भा० १०/४७/६३)

उन नन्द के व्रज में रहने वाली गोपियों के चरणरज की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ जिनके द्वारा गाई जाती हुई हरिकथा त्रिभुवन को पवित्र करती रहती है।

सचमुच, भक्त स्वर्गापवर्ग किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं करता। वह तो यही चाहता है कि,

"नाथ योनि सहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वचलाभक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥"

मैं सहस्रों योनियों में जहाँ-जहाँ जाऊँ वहाँ-वहाँ भगवान् में मेरी अचल भक्ति हो।

"या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनुपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥" (वि० पु० १।२०/१९)

अविवेकियों की जैसी अनपायिनी प्रीति विषय में होती है वैसी ही प्रीति आपके स्मरण में मेरे हृदय में बनी रहे। गोपियों ने अपने नामानुसार इस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गोप्यतम प्रेमामृत को गोपन कर रखा था, इस प्रेम चिन्तामणि सुधा को छिपा रखा था कि कहीं किसी पर प्रकट न हो जाय, नहीं तो अनर्थ हो जायगा। इसीलिए परमेश्वरी श्रीराधा जी ने कहा है :—

"प्रेमाद्वयो रसिकयोरपि दीप एव
हृद्वेश्मभासयति निश्चलमेषभाति।
द्वारादयं वदनतश्च वहिर्गतश्चे-
न्निर्याति शान्तिमथवा तनुतामुपैति॥"

यह अद्वय प्रेम रसिकों के हृदय को दीपवत् प्रकाशित करता है और हृदय में भी निश्चलरूप से भासित होता है। परन्तु यदि वह मुख द्वार से बाहर आ जाय अर्थात् इसको प्रकट कर दिया जाय, तो यह प्रेम प्रदीप या तो बुझ जाता है या क्षीण हो जाता है।

इसी गोपन के कारण प्रेमियों को अपने प्रेम का अभिमान नहीं होता। इसीलिए रसिकेश्वरी कृष्णप्रिया सर्वेश्वरी श्री राधा जी कहती हैं :—

"न त्वांदीयानपि मम सखि प्रेमगन्धो मुकुन्दे"

सखी! मेरे हृदय में मुकुन्द के प्रेम का लेशमात्र भी गंध नहीं है। गोपियों के प्रेम के प्रति भगवान् स्वयं कहते हैं :—

"ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थेत्यक्त दैहिकाः।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः॥" (श्रीमद्भा० १०/४६/४)

वे मेरे में मन वाली, मेरे में प्राण वाली हैं, एवं मेरे लिए दैहिक समस्त धर्मों—सुखों को उन्होंने छोड़ दिया है तथा मैं ही उनका प्राणवल्लभ प्रियतम एवं आत्मा हूँ और मन से वे मेरे ही परायण हैं।

"ता नाविदन् मय्यनुषङ्गवद्धधियः स्वमात्मा मदस्तथेदम्।
यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे॥"(श्रीमद्भा०११/१२/१२)

गोपियों ने अपनी बुद्धि को मुझमें इस प्रकार लगा दिया था कि उनको अपने नाम-रूप, शरीर का एवं संसार का भी मान नहीं था। जिस प्रकार समाधिस्थ मुनि एवं समुद्र में प्रविष्ट हो जाने पर नदी का नाम-रूप नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रह जाता।

परमहंस शिरोमणि श्री शुकदेव जी ने भी गोपियों के प्रति यही कहा है—
"तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः।
तद्गुणानेव गायन्त्योनात्मागाराणिसस्मरुः॥" (श्रीमद्भा० १०/३०/४४)

गोपियां कृष्ण के मन वाली, उनके आलाप-चर्चा वाली, उन्हीं की चेष्टा वाली, कृष्ण की आत्मा वाली, उन्हों के गुणानुवाद को गाती हुई, प्रेम में तन्मय होने के कारण अपने शरीर तथा घर की सुधि-बुधि खो बैठी थीं।

भक्ति-प्रधानाचार्य देवर्षि नारद भी गोपियों के प्रेम की महत्ता के विषय में कह रहे हैं :—

"प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन्मनो धित्सवे।
बालेयं विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहन्ति मनः॥"
"यस्य स्फूर्ति लवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते।
मुग्धेयं किल तस्य पश्य हृदयान्निष्क्रामन्तिमाकाङ्क्षति॥ (विदग्ध माधव)

मुनिगण यम-नियम आदि साधन सम्पन्न हो बड़ी कठिनाई से मन का प्रत्याहार करके जिस श्रीकृष्ण में क्षण मात्र मन को लगाने का प्रयास करते हैं, आश्चर्य है यह बाला उल्टे ही उन्हीं कृष्ण से मन को हटाकर विषयों में लगाना चाहती है। योगी जन सदा उत्कण्ठित रहते हैं कि लव मात्र के लिए श्रीकृष्णचन्द्र के नखचन्द्र की चन्द्रिका की स्फूर्ति मेरे हृदय में हो जाय, तो मैं धन्य-धन्य हो जाऊँ, परन्तु यह मुग्धा उन्हीं नन्दनन्दन श्यामसुन्दर को हृदय से निकाल देना चाहती है किन्तु फिर भी इसके प्रयत्न करने पर भी वे इसके हृदय से निकलते नहीं, क्यों कि वे कृष्ण ही ठहरे। कृष्ण इनके हैं उनकी कृष्ण में तदीयता नहीं मदीयता है। यह है परमप्रेम प्रमाणभूता गोपियों का भगवान् में निरतिशय स्वाभाविक अलौकिक प्रेम, जिसकी ब्रह्माविष्णुमहेश आदि भी याचना करते हैं। जो निस्सीम, अगाध, अनन्त—अपार रस से परिपूर्ण अनन्त-अपार सुख-शान्ति से युक्त, अनन्त-अपार माधुर्य से सम्पन्न एवं अनन्त तृप्ति तथा अखण्ड स्मृति से युक्त है। जो कि समस्त वेदशास्त्र, ध्यान साधन का एकमात्र परिपक्व फल है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अतः ऐ परमप्रेम प्रमाणभूता गोपियों। माताओं! मुझ दीन-हीन को भी अपनी एक कृपादृष्टि के द्वारा अमृतमयी भक्ति का दान कर दो। मां! दोनों हाथ जोड़कर मुझ भिखारी की यही हार्दिक याचना है।

मां! दया! दया!! दया!!! चरण रज की
कृपा! कृपा!! कृपा!!!

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

अब इस सूत्र में गोपियों में माहात्म्यज्ञान की विस्मृति के अपवाद का निरसन करने के लिए कहते हैं।

तत्रापि न माहात्म्यज्ञान विस्मृत्यपवादः ॥२२॥

गोपियों में माहात्म्यज्ञान की विस्मृति का अपवाद-कलंक नहीं है, क्योंकि गोपियां रासस्थली में भगवान् कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर स्वयं उनके माहात्म्यज्ञान के विषय में कहती हैं :—

"न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
नाखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥" (श्रीमद्भा०१०/३१/४)

घनसुन्दर ! तुम केवल गोपी कुमार ही नहीं हो, तुम तो समस्त देह-धारियों के अन्तरात्मा एवं द्रष्टा-साक्षी हो। सखे ! ब्रह्मा जी की प्रार्थना पर विश्वरक्षार्थ तुम सात्वत् कुल में प्रकट हुए हो। इस प्रकार भगवान् के माहात्म्यज्ञान के हुए बिना भगवान् से प्रेम हो ही नहीं सकता और यह माहात्म्यज्ञान भगवान् के प्रति जितना ही अधिक होगा उतना ही प्रेमाधिक्य होगा। अतः भगवान् स्वाभाविक अनन्त अतिशय सौन्दर्य, माधुर्य, सौहार्द, सौशील्य, कारुण्य, वात्सल्य, शौर्य, वीर्य, सर्वज्ञत्व, सर्वकारणत्वादि अनन्त कल्याणमय गुणगणनिलय एवं समस्त अवगुणों के विरोधी अर्थात् सर्वगुण-सम्पन्न हैं। यह माहात्म्यज्ञान हो तो प्रेम की अभिवृद्धि—दृढ़ता होगी और प्रेम की वृद्धि से ज्ञान की वृद्धि होगी, क्योंकि ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं। एक दूसरे छोड़कर रह ही नहीं सकते। अतः जहां भक्ति होगी वहाँ ज्ञान अवश्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होगा। जैसे शालिग्राम या शिवलिङ्ग में जो भक्ति—प्रेम है, वह भगवान् के माहात्म्यज्ञान का ही है कि यह सर्वसमर्थ भगवान् ही हैं, उनके सौन्दर्य का नहीं। दूसरे, भगवान् स्वयं भक्त को ज्ञान देते भी हैं, यह उनकी प्रतिज्ञा है।

"तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेनभास्वता ॥" (श्री० गी० १०/११)

मैं प्रेमी भक्तों पर अनुकम्पा करने के लिए उनके आत्मभावस्थ होकर प्रकाशमय ज्ञान प्रदीप के द्वारा उनके अज्ञानानन्धकार को नष्ट कर देता हूँ। इस नियमानुसार भी उनको भगवान् का माहात्म्यज्ञान था।

दूसरे, अनन्त-अनन्त ब्रह्मादिक देवों, सद्‌गुरुओं एवं ऋषि-मुनियों के भी वन्दनीय गोपियों के परमाराध्य-परमाचार्य भगवान् श्रीकृष्ण ने उनको कुरुक्षेत्र में स्वयं अध्यात्मज्ञान का उपदेश दिया है।

"अध्यात्मशिक्षया गोप्यं एवं कृष्णेन शिक्षिताः।
तदनुस्मरण ध्वस्त जीवकोशास्तमध्यगन् ॥" (श्रीमद्भा० १०/८२/४८)

भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपियों को अध्यात्मज्ञान का उपदेश दिया, जिसके स्मरण से गोपियों का जीवकोश—जीवत्वभाव नष्ट हो गया और उन्होंने उनको आत्मरूपेण प्राप्त कर लिया। तब तो गोपियों में माहात्म्यज्ञान का प्रश्न ही नहीं रहा। अहा! कैसा सौभाग्य है गोपियों का, तथा कैसी महत्ता है गोपियों की? जिसको भगवान् स्वयं भक्ति-मुक्ति प्रदान करते हैं। हां! यह अवश्य है कि भगवान् के संयोग काल में आनन्द विशेष होने के कारण भगवान् के माहात्म्य ज्ञान की विस्मृति रहती है, परन्तु यह दोष-अपवाद नहीं अपितु यह प्रेम-भक्ति का भूषण, स्वभाव ही है। परन्तु वियोग काल में विस्मृति नहीं होती। इसीलिए गोपियों ने भगवान् के रासस्थली से अन्तर्धान होने पर उनके सर्वान्तरात्मत्व वं सन्नित्व का निरूपण किया है। इसीलिए गोवर्धनधारण के समय भगवान् को परमात्मा जानते हुए भी गोपकुमार माहात्म्यज्ञान को भूल बैठे और परम व्याकुल हो, कहने लगे।

"उन्निद्रस्य ययुस्तवात्र विरतिं सप्तक्षपास्तिष्टतो।
श्रान्त श्रान्त इवामि निक्षिप्य सखे श्री दामपाणौगिरिम् ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आधिर्विध्यति नस्त्वमर्पय करे किं वा क्षणं दक्षिणे ।

द्रोण्यास्ते कर वाम काममधुना संन्यस्य संवाहनम् ॥" (*हरिरसामृतसिंधु*)

कृष्ण ! तुम्हे विना निद्रा लिए यह पहाड़ उठाये सात दिन बीत गया। सखे ! तुम थके से मालूम होते हो, इससे मुझे बड़ा क्लेश हो रहा है। अतः इस पहाड़ को श्री दामा के हाथ पर रख दे। बड़ा हठी है तू, यदि नहीं दूसरे को देना है तो क्षण भर के लिए अपने ही दाहिने हाथ पर रख ले, तब तक हम तेरे बायें हाथ को दबा दें। तेरे इन सुकुमार हाथों को बड़ी पीड़ा होती होगी। यह है प्रेम की महिमा, कि इतने बड़े पहाड़ के उठाने पर भी, एक असंभव कार्य करने पर भी, उपस्थित गोप कुमारों को भगवान् के ऐश्वर्य का ज्ञान नहीं होता है।

दूसरे, स्वयं भगवान् भी उनके प्रेम का आस्वादन करने के लिए उनको अपने माहात्म्य ज्ञान की विस्मृति करा देते थे। जैसे मृद-भक्षण लीला में श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मां यशोदा जी को दिखाया। उस काल में उन्हें अपने लाढ़ले लाल के माहत्म्य का ज्ञान हो गया था।

दावाग्निपान के समय गोपकुमारों को भी श्रीकृष्ण के माहात्म्य का ज्ञान हो गया था।

नन्दबाबा को वरुण से मुक्त कराने तथा ब्रजवासियों को अपने दिव्य—चिन्मय धाम का दर्शन कराने पर उन्हें भगवान् के माहात्म्य का ज्ञान हो गया था, किन्तु वह माहात्म्यज्ञान माता यशोदा, गोपकुमारों, नन्द बाबा एवं ब्रजवासियों को बना रहता, तो क्या भगवान् को उनके प्यार-वात्सल्य प्रेम का आनन्द प्राप्त होता अथवा भगवान् से उनको होता।

ऐसे ही कहा भी है:—

"दुग्धं कियत् पिबसि भूयलमर्भकेति
वर्तिष्यमाण वचनां जननीं विभाव्य ।
विश्वं विभागि पयसो न हि केवलोऽह—
मस्मादवर्षि विभुना किल विश्वमास्ये ॥ (*हरिभक्ति रसायन*)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लाल, नन्हा-सा शिशु होने पर भी कितना दूध पीता है ? अरे अब तो रहने दे, यह बात मैया मानों कहने ही वाली है कि श्रीकृष्ण ने अपने मुख में समस्त विश्व को दिखाते हुए मानो कहा कि मैया ! मैं यह तेरा दूध अकेले ही थोड़े ही पी रहा हूँ, यह तो समस्त विश्व को वितरित कर रहा हूं। तेरे वात्सल्य से तो समस्त विश्व पोषित हो रहा है। इस प्रकार यशोदा जी भगवान् के मुख में समस्त विश्व को देखती हैं, परन्तु उनका वात्सल्य-स्नेह श्रीकृष्ण के इस ऐश्वर्य-माहात्म्यज्ञान को परास्त कर देता है।

यह है "रसो वैसः" रसस्वरूपरसराज महोदधि का अद्भुत रास-विलास, गुणातीत अनिर्वचनीय "प्रेम" धन्य है यशोदा महारानी के महाभाग्य को,

"नो शक्रो न स्वयम्भूर्न च मदनरिपुर्यस्य लेभे प्रसादं।
तत् पूर्णं ब्रह्म भूमौ विलुठति विलपत क्रोडमारोढुकामम् ॥"

कि जिसके कृपाकटाक्ष को इन्द्र, ब्रह्मा एवं शंकर आदि भी नहीं प्राप्त कर सके, वह पूर्ण ब्रह्म उनकी गोदी में चढ़ने के लिए रोता हुआ पृथ्वी पर लोट रहा है।

"न त्वेतज् ज्ञान सम्भ्राम्त्या वात्सल्य सुखदा भव"

भगवान् स्वयं अपने ऐश्वर्य माहात्म्य-ज्ञान की विस्मृति कराते हैं कि मैया को यह ऐश्वर्यज्ञान भ्रम में न डाले अर्थात् कहीं ऐश्वर्यज्ञान के द्वारा मुझे अपने सुखप्रद वात्सल्य स्नेह से वंचित न कर दे और स्वयं बालसुख से वंचित न हो जाय। दूसरे, भगवान् के अवतार काल में भी उनके माहात्म्य-ज्ञान के द्वारा ही भक्तिमुक्ति हो—यह नियम नहीं है, अपितु अवतार-अनवतार काल के लिये ही सम्भव है, क्योंकि अवतार अनवतार काल में यदि कोई अन्तर न हो तो भगवान् का अवतार धारण करना ही व्यर्थ हो जायेगा। इसीलिए अवधूत शिरोमणि श्री शुकदेव जी कहते हैं:—

"नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥" (श्रीमद्भा० १०/२६/१४)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परीक्षित ! अव्यय, अप्रमेय गुणात्मा होने पर भी निर्गुण भगवान् का अवतार ही मनुष्यों के निःश्रेयस--परमकल्याण के लिए होता है। इसीलिए अवतार काल में भगवान् के माहात्म्य का ज्ञान न होने पर भी अर्थात् उनको भगवान् न जानकर भी अज्ञानी जीवों का कल्याण हो जाता है।

जैसे पूतना, कंस, शिशुपाल, पौण्ड्रक, कुब्जा आदि का कल्याण हुआ। शिशुपाल का द्वेष तथा पाण्डवों का ममत्व से कल्याण हुआ। अतः इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि जीव की जिस किसी भी प्रकार से भगवान् से वृत्ति जुड़नी चाहिए, उससे कल्याण ही कल्याण है। इसी प्रकार गोपियों की भी वृत्ति श्री कृष्ण में जारबुद्धि से ही जुड़ी थी। अतः उन्हें माहात्म्य-ज्ञान की कोई अपेक्षा नहीं, वे तो मुक्त कृष्णस्वरूप ही हैं।

इसीलिए श्री शुकदेव जी ने गोपियों के प्रति कहा है किः—

"तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि सङ्गता ।
जुहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीण बन्धनाः ॥" (श्र मद्भा० १०/२९/११)

जारबुद्धि से भी उस परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र में आसक्तचित्त होने के कारण उन्होंने गुणमय देह को त्याग दिया एवं तत्क्षण उनके समस्त वन्धन नष्ट हो गए।

ध्रुव को भी भगवान् का माहात्म्य-ज्ञान बिल्कुल नहीं था, परन्तु जब भगवान् ने दिव्य वेदमय शंख से उनके कपोल को स्पर्श किया तब उन्हें भी माहात्म्यज्ञान हो गया और दिव्य वेदमयी वाणी से भगवान् की स्तुति करने में समर्थ हुए। अतः

"कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्"

जो सब कुछ करने में समर्थ है उस सर्वतन्त्रस्वतन्त्र सर्वशक्तिमान् भगवान् के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। उनके लिए ज्ञान-अज्ञान, जड़-चेतन, अस्ति-नास्ति, आदि द्वन्द्वों का कोई भी भेद नहीं है। अतः भगवान् के अवतार काल में माहात्म्यज्ञान के बिना भी उनके अनन्त अतिशय सौन्दर्य-माधुर्य को देखकर, उन्हें स्पर्शकर, उनकी अमृतमयी दिव्य वाणी को सुनकर एवं उनकी मधुमयी चेष्टाओं को देखकर जीव का कल्याण हो जाता है, क्योंकि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"न हि वस्तु शक्तिर्बुद्धिमपेक्षते"

वस्तु शक्ति बुद्धि की अपेक्षा नहीं रखती। यदि अनजान में भी अग्नि स्पर्श किया तो भी वह जलायेगी ही। विना जाने विषपान भी मृत्यु प्रदान करेगा। अनजान में भी अमृत पान अमर करेगा ही। इसी प्रकार गोपियों ने श्रीकृष्ण को भगवान् न जानकर भी उनसे जारबुद्धि से प्रेम किया, परन्तु फिर भी श्रीकृष्ण तो भगवान् ही हैं अतः उन्होंने अपनी वस्तु शक्ति अर्थात् सच्चिदानन्दमय विग्रह के द्वारा उनको भक्ति-मुक्ति प्रदान किया।

भगवान् ने भी स्वयं भागवत् में कहा है:—

"मत्कामा रमणं जारम्" एवं "कामाद् गोप्य." श्रीमद्भा०)

गोपियों का विना जाने जो केवल जार—कामबुद्धि से श्रीकृष्ण भगवान् से प्रेम था वह भी तो अन्ततोगत्वा भगवान् से ही था। गोपियों का तो ऐसा विलक्षण-अलौकिक प्रेम था कि कुरुक्षेत्र में भगवान् के द्वारा अध्यात्मज्ञान का उपदेश प्राप्त करने पर भी यानी आत्मा-परमात्मा का अभेद ज्ञान हो जाने पर भी, उन्होंने कहा है:—

"आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं गेहञ्जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः॥"

(श्रीमद्भा० १०/८२/४९)

कमलनाभ! सर्वत्र योगेश्वर भी अपने हृदय में आप के जिन कमलवत् चरणों का नित्य चिन्तन करते हैं एवं जो संसार कूप में पतितों के एकमात्र उद्धार के अवलम्ब हैं, वे ही चरण कमल हम गृहवासिनियों के मन में सदा प्रगट रहे अर्थात् मेरा मनमधुकर सदा सर्वदा तुम्हारे चरणारविन्द मकरन्द रस का रसिक बना रहे। सदा मुग्ध हो अतृप्त गति से उसे पीता रहे, उसी पर गुञ्जार करता रहे। उस विश्वविमोहिनी मुनिमन भाविनी निरतिशय रूप से सदा रति, प्रीति, क्रीडा, विनोद करता रहे, उसी में तन्मय तद्रूप होता रहे, कभी भी उससे एक क्षण के लिए भी अलग न हो। मूल प्रकृति—जगद्धात्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीराधा जी भी कुरुक्षेत्र में भगवान् के समागम--ज्ञानोपदेश के पश्चात् से कहतीं है:—

"प्रियं सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्र मिलितः
तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः संगम सुखम् ॥
तथाप्यन्तः खेलन्मधुरमुरली पञ्चमजुषे ।
मनो मे कालिन्दी पुलिन विपिनाय स्पृह्यति ॥"

सखी ! ये वही मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र में मिले हैं मैं भी वही राधा हूँ और हम लोगों का मिलन-सुख भी वैसे ही है, परन्तु फिर भी मेरा मन यमुना पुलिन के उस विपिन की स्पृहा करता है जिसमें पंचम स्वर में वंशी बजाते हुए धनसुन्दर क्रीड़ा करते हैं। क्यों न हो,

"आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्थाप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत गुणो हरिः ॥" (श्रीमद्भा० १/७/१०)

भगवान् का रूप एवं गुण ही ऐसा है कि अविद्याग्रन्थि से रहित आत्माराम मुनि तथा अनन्त-अनन्त ब्रह्माविष्णु महेशादि भी उस आनन्द वर्षी सच्चिदानन्दमयी परमानन्द चिन्मय अमृतमूर्ति पर मुग्ध रहते हैं, सदा उसके दर्शन के लिए उत्कण्ठित—लालायित रहते हैं।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में माहात्म्यज्ञान शून्य प्रेम की निन्दा करते हैं।

तद्विहीनं जाराणामिव ॥२३॥

उस माहात्म्यज्ञान के विना जो प्रेम होगा वह जारकामी पुरुष के सदृश होगा।

तात्पर्य यह है कि जो माहात्म्यज्ञान शून्य प्रेम होगा वह ऐहिक, ऐन्द्रिक सांसारिक भोग का ही सुख होगा, जो कि अज्ञानमूलक, कामात्मक, अन्तःकरण को दूषित करने वाला,

"ये हि संस्पर्शजाभोगा दुःखयोनय एवते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥" (श्री० गी० ५/२२)

दुःख की योनि, आद्यन्तवान्, क्षणभंगुर, रागद्वेष की वृद्धि करने वाला, सर्वानर्थ का मूल कारण ही होगा। अतः माहात्म्यज्ञान शून्य सांसारिक कामात्मक प्रेम जो कीट, पतंग आदि सबको अनायास ही प्राप्त है, उपेक्षणीय ही है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब नारद जी इस सूत्र में जार प्रेम में अर्थात् माहात्म्यज्ञान के अभाव में होने वाले प्रेम में दोष बतला रहे हैं।

नास्त्येव तस्मिंस्तत्सुखसुखित्वम् ॥ २४ ॥

उस जार प्रेम में अर्थात् माहात्म्यज्ञान के अभाव में उस प्रियतम के सुख में सुखी होना नहीं है ॥ २४ ॥

माहात्म्य-ज्ञान के अभाव में जो प्रेम होगा वह वैषयिक सांसारिक इन्द्रियों का भोग, इन्द्रियों की तृप्ति के लिए ही होगा, अपने सुख से सुखी होगा, वह कामुक प्रेम होगा, जिसका अन्तिम फल दुःख और विनाश ही है, परन्तु माहात्म्य-ज्ञान वाले प्रेम में प्रियतम प्रभु के सुख में सुखी होना है। उससे अपने सुखी होने की संभावना ही नहीं होती। गोपियों का प्रेम श्रीकृष्ण को सुख प्रदान करने के लिए था, न कि स्वयं सुख भोगने के लिए था। इसीलिए एक बार देवर्षि नारद ने भगवान् से गोपियों की बार-बार प्रशंसा सुनकर भगवान् से पूछा कि उनके प्रेम में कौन-सी बड़ी विशेषता है जिसकी बार-बार आप सराहना करते हैं जिससे रुक्मिणी सत्यभामा आदि पटरानियां दुःखी रहती हैं।

भगवान् ने कहा—अच्छा, इसका फिर कभी उत्तर देंगे। इस समय हमारे मस्तक में पीड़ा हो रही है।

नारद—आखिर, इसकी कोई दवा?

भगवान्—इसकी दवा किसी प्रेमी भक्त के चरण की धूलि है। बस, इतना सुनते ही नारद त्रैलोक्य में घूमे, परन्तु किसी ने पदधूलि देने का संकल्प

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तक भी नहीं किया, देना तो दूर रहा। यहां तक कि रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पतिव्रता पटरानियों ने भी नरक के भय से चरण धूलि नहीं दिया। परन्तु गोपियों ने नारकीय दुःख का तनिक भी ध्यान न देते हुए प्रेमावेश में बहुत-सा चरणरज नारद को देकर कहा कि हमारे प्राणप्यारे, प्राणवल्लभ प्राणाधार श्याम-सुन्दर के मस्तक की पीड़ा दूर हो, वे सुखी रहें, मेरे दुःख की कोई बात नहीं है। हम अनन्त-अनन्त काल तक नरक में निवास कर लेंगी। क्योंकि हमारा जीवन ही उनकी सुख-सुविधा एवं प्रसन्नता के लिए है। यह है अलौकिक, विशुद्ध गोपियों का प्रेम, जिसमें कामना के कलंक का नितान्त अभाव है।

जो निर्गुण निर्विशेष ब्रह्म को सगुण सविशेष बनाकर ताली पर एवं भृत्यवत् उससे चेष्टा कराता और परमात्मा भी नाचते एवं सेवा में आनन्दित होते।

बोलो ! प्रेमी, प्रेम एवं प्रेमास्पद भगवान् की जय !!

अरे भाई ! प्रेमी प्रेमास्पद के प्रेम को प्राप्त करके सम्राट् हो जाता है। दान देना उसका स्वभाव हो जाता, मांगना नहीं। इसी कारण से गोपियां कृष्ण को प्रेम देती थीं। इसीलिए भगवान् उनके निष्काम, निर्मल, प्रमाणभूत आदर्श प्रेम की बार-बार प्रशंसा करते हुए,

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' (श्री० गी० ४/११)

के सिद्धान्त से, उनके प्रेम में विभोर हो जाया करते थे, कभी भी उनको विस्मृत नहीं कर पाते थे। सर्वदा सर्वत्र सबके सामने बस, उन्हीं की चर्चा एवं गाथा गाते रहते थे, क्योंकि

"निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते ।
ताभ्यः परं न मे पार्थ ! निगूढ प्रेमभाजनम् ॥"
सहाया गुरवो शिष्या भुजिष्या बान्धवाः स्त्रियः ।
सत्यं वदामि ते पार्थ ! गोप्यः किं मे भवन्ति न ॥
मन्माहात्म्यं मत्सपर्या मच्छ्रद्धां मन्मनो गतम् ।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ ! नान्ये जानन्ति तत्त्वतः ॥" (आ० पु०)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्जुन ! गोपियां अपने शरीर को मेरी सेवा के लिए ही सुरक्षित रखती हैं, उनके अतिरिक्त मेरा निगूढ़ प्रेमपात्र अन्य कोई नहीं है। वे मेरी सहायिका हैं, गुरु हैं, शिष्या हैं, बन्धु एवं प्रेयसी हैं। मैं तुमसे सत्य कहता हूं।

अर्जुन ! गोपियां मेरी क्या नहीं होती हैं अर्थात् सब कुछ हैं।

पार्थ ! मेरी यथार्थ महिमा, मेरी पूजा, सेवा, मेरी श्रद्धा एवं मेरी मनोगत बात को तत्त्वतः केवल गोपियां ही जानती हैं, दूसरा कोई नहीं जानता। तभी तो भगवान् ने स्वयं उनके प्रेम के ऋण से ऋणी हो कर कहा है:—

"न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ; †
या मा भजन दुर्जरगेह शृंखलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ।।"

(श्रीमद्भा० १०/३२/२२)

मैं अमर शरीर से भी अनन्त समय तक तुम्हारे प्रेम त्याग एवं सेवा का बदला नहीं चुका सकता। मैं सदा सर्वदा के लिए तुम्हारा ऋणी रहूंगा। इसी कारण से ब्रह्मा, शंकर आदि ईश्वर तथा उद्धव, नारदादिक ऋषि मुनिगण उनके चरणरज के लिए लालायित रहा करते थे, क्योंकि जिसके चरणरज को अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड के अधीश्वर सर्वेश्वर भगवान् स्वयं ही धारण करते हैं उसके पदरज को कौन नहीं धारण करेगा ?

हां ! तो प्रेम का प्रसंग चल रहा था। प्रेमदीवानी गोपियां भगवान् के सुख में सुखी थीं। वे अपनी सारी चेष्टाओं से, तन से, मन से, उनकी थीं, उन्हीं के लिए थीं। बुद्धि को, अहं को, प्राण को, कृष्ण को समर्पित किए हुए थीं। उनका अपने जीवन से कोई प्रयोजन नहीं था। वे तो प्रेम की मूर्ति,

---

† मेरी प्यारी गोपियो ! तुमने मेरे लिये दुस्त्यज घर-गृहस्थी की कठिन बेड़ियों को तोड़ डाला है। तुमसे यह हमारा मिलन सर्वथा निर्दोष है। यदि मैं अमर शरीर से तुम्हारे प्रेम, सेवा एवं त्याग का बदला चुकाना चाहूँ तो नहीं चुका सकता। मैं जन्म जन्म के लिए तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभाव से, प्रेम से मुझे उऋण कर सकती हो, परन्तु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमास्पद प्रेम को ही सर्वत्र देखती, सुनती, समझती थीं। उसी में उनकी रति प्रीति थी तथा उसी प्रेमामृत को पीकर नित्य तृप्त रहती थीं। उन्होंने अपने हृदय हृदयेश्वर को, प्राण प्राणेश्वर को, जीव जीवेश्वर को एवं सर्वेन्द्रिय सर्वेश्वर भगवान् को समर्पित करके ससीम को निःसीम तथा अन्त को अनन्त में लीन करके अर्थात् सर्वस्व की आहुति देकर, जीते जी मरकर, प्रेम का अवतार धारण किया था। अतएव वे पांच भौतिक पिण्ड नहीं, अपितु प्रेम की मूर्तिमती चिन्मयी मूर्ति थीं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में भक्ति को कर्म, ज्ञान एवं योग से भी श्रेष्ठतर बतलाया जा रहा है।

सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा ॥ २५ ॥

वह परमप्रेमा अमृतस्वरूपा अकामयमाना पूर्व कथित भक्ति कर्म, ज्ञान एवं योग से भी श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

महर्षि शाण्डिल्य ने भी कहा है:—

"तदेव कर्मिज्ञानियोगिभ्य आधिक्य शब्दात्" (शा० भ० सू० १/२२)

वह भक्ति कर्मज्ञान एवं योग से भी अधिक है ऐसा शास्त्रादेश होने से। भगवान् ने भी गीता में यही कहा है:—

"तपस्विभ्योऽधिकोयोगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाऽधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥" (श्री० गी० ६/४६,४७)

अर्जुन ! तपस्वी, ज्ञानी और कर्मी से योगी श्रेष्ठ है। अतः तुम योगी हो, किन्तु समस्त योगियों में भी जो मुझे अपने अन्तरात्मा से श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करता है वह श्रद्धालुभक्त मेरे मत में श्रेष्ठ है।

"मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥
तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ (श्री० गी० १०/९,१०)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिनका चित्त तथा प्राण मुझमें लगा हुआ है तथा जो परस्पर मेरी कथा कहते हुए मुझमें ही सन्तुष्ट रहते तथा मुझमें ही रमण करते हैं उन सतत प्रेम पूर्वक भजन करने वाले भक्तों को मैं स्वयं बुद्धियोग—ज्ञानयोग प्रदान करता हूं।

तथा गीता के अठारहवें अध्याय में जो भगवान् ने

"निष्ठाज्ञानस्य या परा" (श्री० गी० १८/५०)

ज्ञान की परानिष्ठा का विवेचन किया है और उसके अंत में

"ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्" (श्री० गी० १८ ५४)

जो ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा जीवन्मुक्त महात्मा शोक, मोह एवं कामनाओं से मुक्त है, वह समस्त प्राणियों में समदर्शी पुरुष ज्ञानोत्तर मेरी प्रेमलक्षणा पराभक्ति को प्राप्त करता है। इसीलिए

"आत्मारामाश्च मुनयो: निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥" (श्रीमद्भा० १/७/१०)

अविद्या ग्रन्थि से रहित आत्माराम जीवन्मुक्त महात्मा भी भगवान् की अमृतमयी मधुमयी अहैतुकी भक्ति करते हैं, क्योंकि भगवान् के गुण ही ऐसे हैं जिससे सबको बलात् आकृष्ट होकर भक्ति करनी ही पड़ती है। सच पूछिए, तो समस्त कामनाओं से रहित आत्माराम जीवन्मुक्त मुनि ही भगवान् की भक्ति के विशेषाधिकारी हैं। यही समस्त वेदान्त के समन्वय करने वाले ब्रह्मसूत्र—वेदान्तदर्शन में भी भगवान् वेदव्यास ने कहा है :—

"मुक्तोपसृप्य व्यपदेशात्" (वे० द० १/३/२)

मुक्त पुरुष भी सर्वेश्वर भगवान् का सेवन—आश्रय ग्रहण करते हैं। इसी कारण से वेदव्यास ब्रह्मनिष्ठ जीवन्मुक्त होने पर भी खिन्न रहे और जब नारद जी ने चतुश्लोकी भागवत का उपदेश दिया तो भागवतामृत के पान के द्वारा-भक्ति से ही सन्तुष्ट-कृतार्थ हुए। इससे सिद्ध है कि खिन्नता विना परमा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नन्दप्रदा रसरूपा अमृतस्वरूपा भक्ति के नष्ट नहीं होती। दूसरे, भगवान् की प्राप्ति के जितने भी साधन हैं उनमें भक्ति ही सर्वोपरि एवं भगवान् को प्रिय भी है। भगवान् ने उद्धव जी से स्वयं कहा भी है :—

"न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथाभक्तिर्ममोर्जिता ॥" (श्रीमद्भा० ११/१४/२०)

उद्धव ! जैसे मैं ऊर्जित भक्ति से शीघ्र साध्य एवं प्रसन्न होता हूँ वैसे योग, सांख्य, स्वाध्याय, तप, त्याग से नहीं। श्रुति भी यही कहती है।

"यं सर्वे नमस्यन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनः"

जिस भगवान् को समस्त मुमुक्षु एवं ब्रह्मवादी श्रद्धाभक्ति से नमस्कार करते हैं।

"हिरण्यरूपः स हिरण्य संदृक् अपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः (ऋ० सं० १/३५/१०)
"पदं देवस्य" (सा० सं० उत्त० ७२/१४/३)

हिरण्य—सुवर्णवत् जिसका अति रमणीय दिव्य रूप है, चक्षुरादि इन्द्रियाँ भी जिसकी हिरण्यवत् दिव्य हैं। वर्ण अर्थात् वर्णनीय साकार विग्रह भी हिरण्वत् अति रमणीय लावण्यनिधि सौन्दर्यसारसर्वस्व है। उस क्षीरशायी भगवान् नारायण देवदेव प्रभु के पादपद्म को भक्ति पूर्वक नमस्कार है। तात्पर्य यह है कि जब ज्ञानोत्तर काल में किसी भी लौकिक-वैदिक कर्म को करता हुआ ज्ञानी मुक्त रह सकता है तो भक्ति क्यों नहीं कर सकता, और जो ज्ञानी एवं योगी ऐसा कहते हैं कि भगवान् को नमस्कार करने तथा द्वैतबुद्धि से भक्ति करने से ज्ञान में न्यूनता आती है तो वे,

"यस्याभिमानो मोक्षेऽपि देहेऽपि ममता तथा।
न च ज्ञानी न वा योगी केवलं दुःखभागसौ ॥ (अ० गी० १६/१०)

न ज्ञानी ही हैं और न योगी ही हैं अपितु दुःख की मूर्ति अज्ञानी ही हैं। उन मिथ्याज्ञानाभिमानियों से लोक की बड़ी क्षति होती है। अतः जीवन्मुक्त महात्मा चाहे भक्ति करे अथवा निर्विकल्प समाधि में स्थित रहे, उसे दोनों तुल्य हैं। परन्तु शास्त्रों में भक्ति विशिष्ट ज्ञान को ही महत्व दिया गया है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ति हीन शुष्क ज्ञान एवं योग का कोई महत्व, कोई शोभा नहीं है। इसीलिए ब्रह्माविष्णु, महेश, वसिष्ठ, व्यास, शुक, सनकादि, नारद, हनुमान्, भीष्म, जनक, प्रह्लाद, वाल्मीकि, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज आदि-ज्ञान विज्ञान सम्पन्न जितने भी महापुरुष हुए हैं वे सब भक्ति से सम्पन्न रहे हैं अन्यों की गणना ही क्या ?

जीवन्मुक्त पुरुषों का तो भक्ति करने का स्वभाव हीं होता है। वे तो स्वरूपा भक्ति के विना जी ही नहीं सकते।

'सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा" (नारद भक्ति सूत्र २५)

वह भक्ति निष्काम कर्म—धर्म से श्रेष्ठ है। यहां पर निषिद्ध एवं काम्यकर्म से प्रयोजन नहीं है क्योंकि वे इस स्थल में सर्वथा त्याज्य हैं। निष्काम कर्म-धर्मानुष्ठान का कार्य है अन्तःकरण की शुद्धि करना और भक्ति का कार्य है शुद्धान्तःकरण को परमात्मा में जोड़ना-लगाना। भक्ति माता है वह भक्त को शुद्ध, सुसज्जित, अलंकृत करके परमात्मपिता के पास ले जा कर के उनकी गोदी में उठाकर बिठा देती है। धर्म-कर्म में द्रव्य मन्त्रादि अनेक वस्तुओं एवं उनकी शुद्धि की अपेक्षा है और कष्ट से संपादित भी होता है। दूसरे, उसका फल भविष्य के गर्भ परलोक में प्राप्त होने वाला है। अतः भक्ति कर्म-धर्म से श्रेष्ठतर है। तथा वह भक्ति ज्ञान-शास्त्रज्ञान से भी श्रेष्ठतर है। अथवा,

"कुशलाब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीना सुरागिणः।
तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यान्ति च ॥" ‡ (तै० वि० उ० १/४६)

जो ब्रह्माकार वृत्ति से हीन, सुरागी, केवल ब्रह्मवार्ता में ही कुशल, मिथ्या ज्ञानाभिमानी हैं उनके ज्ञान से भक्ति श्रेष्ठतर है। यहां पर ज्ञान से, सम्यग्ज्ञान से प्रयोजन नहीं है तथा वह योग से भी श्रेष्ठतर है क्योंकि योग में यम,

---

‡ जो ब्रह्मवार्ता में कुशल, ब्रह्माकार वृत्ति से रहित और अत्यन्तरागी हैं, वे भी अज्ञान के कारण निश्चितरूप से वार-वार आवागमन को प्राप्त होते रहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन अष्टांगों की पूर्ति में बड़ी कठिनाई होती है। साधन की पूर्णता प्राप्त होने पर,

"*योगश्चित्तवृत्ति निरोधः*" (यो० द० १/२)

समाधि में चित्तवृत्ति का नितान्त निरोध हो जाने के कारण उसमें रसाभाव हो जाता है तथा अभेद ज्ञान में भी द्वैताभाव होने के कारण रसाभाव—हो जाता है। दूसरे, ज्ञान में भगवान् का आश्रय न होने के कारण अहंकार की वृद्धि एवं वैराग्य के नष्ट होने का भय रहता है। इसीलिए पूर्व के समस्त ज्ञानियों एवं योगियों ने

"*भक्तियोगो निरुपद्रवः*"

"*सर्वेषामधिकारिणामनधिकारिणां भक्तियोग एव प्रशस्यते*" (त्रि० म० उ० ८/१)

निर्विघ्न, निरुपद्रव प्रशस्त, समीचीन, सर्वसम्मत, रसस्वरूपा परमानन्द-प्रदा अमृतस्वरूपा भक्ति का आश्रय ग्रहण किया है। स्वयं भगवान् भी भक्ति की श्रेष्ठता एवं पावनता के विषय में कह रहे हैं:—

"*भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात्*" (श्रीमद्भा० ११/१४/२१)

मुझमें परिनिष्ठित भक्ति जन्मजात अपवित्र चाण्डाल को भी पवित्र कर देती है। अतः अत्यन्त पावनस्वरूपा, सर्वग्राह्य, सर्वसुलभ, निरुपद्रव, सर्व-शास्त्र सम्मत, कर्म, ज्ञान, योग आदि से श्रेष्ठतर प्रशस्त भक्ति का ही सबको सर्वदा एकमेव आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में फलस्वरूपा भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन कर रहे हैं।

फलरूपत्वात् ॥ २६ ॥

यह भक्ति फलस्वरूप होने के कारण

"*कर्मज्ञान योगेभ्योऽप्यधिकतरा*" (नारद भक्ति सूत्र)

कर्म ज्ञान एवं योग से अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि

"*रसो वै सः*" (तै० उ० २/७)

"*रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति*" † (तै० उ० २/७)

इस रसमात्र छिलका-गुठली रहित अर्थात् बाह्याभ्यन्तर-पूर्वापर रहित

"*सर्वगन्धः सर्वरसः*" (छा० उ० ३/१४/२)

सर्वगन्ध से परिपूर्ण रसस्वरूप रसघन अमृतस्वरूपा परमानन्दप्रदा भक्तिरूप महाफल को प्राप्त कर भक्त परमानन्द में मग्न रसस्वरूप रसराज-रासेश्वर के साथ रसोन्मत्त हो रास रचाता हुआ, रस हो रस से रसस्वरूप क्रीडा, विनोद, रति, प्रीति करता हुआ, दिव्य महाभाव से सम्पन्न,

"*स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा*" ‡ (क०उ० १/२/१३)

दिव्य रस-रासासव को पीकर दिव्य मधुमयी अमृत स्वरूपा महाभक्ति का आलिंगन—आस्वादन करता हुआ, उसको चूसता, चाटता, खाता, पीता हुआ "अमृतोभवति" अमृत हो, अमृत को ही सर्वत्र देखता, सुनता, समझता हुआ, अमृतालाप-प्रेमालाप करता हुआ निहाल कृतकृत्य हो जाता है। इसी

† इस रसस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करके ही आनन्दी होता है।

‡ उस मोदनीय को प्राप्त करके ही वह मुदित होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिव्य महाभाव एवं परमविरहावस्था में भक्त यह अनुभव करता है कि इस क्षणमात्र के अनिर्वचनीय अक्षय अतुलनीय सुखशान्ति एवं परमानन्द की तुलना विश्व के किसी भी सुख से नहीं की जा सकती है। ऐसे ही कहा भी गया है:—

"ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्धं गुणीकृतः ।
नैति भक्तिसुखाम्भोधेः परमाणु तुलामपि ॥" (भक्तिरसामृत सिन्धु)

यदि ब्रह्मानन्द सुख को परार्ध संख्या से गुणा किया जाय, तो भी वह सुख भक्तिसुधासिंधु के एक परमाणु की भी समता नहीं कर सकता। परन्तु यदि उसके सम्बन्ध में कुछ कहा ही जाय तो त्रैलोक्य में योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तप त्याग, आदि के द्वारा जो सुख प्राप्त होता है, वह उस प्रेमार्णव के एक बूँद के भी बराबर नहीं है क्योंकि समस्त साधनों में प्रेम-श्रद्धा की अपेक्षा है और समस्त साधन उस प्रेमार्णव के

"एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानिमात्रामुपजीवन्ति" (बृ० उ० ४/३/३२)

एक बूँद प्रेमानन्द से सम्पन्न होते हैं, उसी से जी रहे हैं, उसी के लिए जी रहे हैं और वही होने के लिए जी रहे हैं।

"अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥" (श्री० गी० १७/२८)

लोक-वेद का यज्ञ, दान, तप एवं कर्म सम्बन्धी कोई भी व्यापार प्रेम के अभाव में असत्–व्यर्थ हो जाता है। उस अखण्ड प्रेम-रूपी "सूत्रेमणिगणा-इव" ब्रह्मसूत्र में ही समस्त ब्रह्माण्ड गूँथा—पिरोया हुआ है। प्रेमाभाव में विश्व या विश्व का कोई भी व्यापार सिद्ध-सम्पन्न नहीं हो सकता और उसके अभाव में संसार बिखर [नष्ट भ्रष्ट हो] जायेगा। सब एक स्वर से, एकमत से, प्रेमस्वरूप ब्रह्म की ही उपासना कर रहे हैं। उसी के लिए विश्व का सारा संघर्ष, सारा व्यापार, सारा साधन है, एवं वही समस्त शास्त्रों का सार-सार प्राप्तव्य फलरूप लक्ष्यभूत एक तत्त्व है। इसी लिए प्रेमस्वरूप भगवान् कहते हैं कि मुझ प्रेम को प्रेम से ही प्राप्त किया जा सकता है, अप्रेम से नहीं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतपं ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥" † (श्री० गी० ९/३)
"श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्" ‡ (श्री० गी० ४/३९)
"भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धया" § (श्रीमद्भा० ११/१४/२१)

भगवान् सनक भी यही कह रहे हैं:—

"श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरिः" *
"श्रद्धावान् मोक्षमाप्नुयात्"+ (बृ० ना० पु० ४/६)

वेद भगवान् भी यही कहते हैं:—

"श्रद्धया सत्यमाप्यते" (य० सं १९/३०)

श्रद्धा—प्रेम से ही सत्य-प्रेमस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति होती है। इसीलिए भगवान् अपने श्रीमुख से प्रेम की महिमा के प्रति स्वयं कहते हैं:—

प्रेमैव कर्त्तव्यमतो मयि स्वतः प्रेम्णा समानं भुवि नास्ति किंचित्"
(ग० सं० मथु० ४/२२)

अतः जीवों को मुझसे केवल एक प्रेम ही करना चाहिए, क्योंकि प्रेम के सदृश निर्मल निर्विकार पवित्र एवं श्रेष्ठ संसार की अन्य कोई वस्तु नहीं है। इसी अद्वितीय प्रेमसागर के अङ्क में अद्वितीयरूप सागर की अनूपरूप श्यामा-श्याम पूर्णचन्द्र की अभिन्न दो चिन्मयी तरंगें क्रीडार्थ उल्लसित हो-हो अन्तर्धान होकर, प्रेमसागर के हृदय को प्रतिक्षण उल्लसित आनन्दित, परिवर्द्धित—विस्तीर्ण करती रहती हैं। इसी विस्तीर्ण—व्यापक प्रेमस्वरूप परमात्मा के लिए

---

† इस धर्म में श्रद्धा न रखने वाले पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्यु रूप संसार चक्र में भ्रमण करते रहते हैं।

‡ श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान को प्राप्त करता है।

§ मैं अनन्य श्रद्धा एवं अनन्य भक्ति से ही पकड़ में आता हूं।

* श्रद्धा से सब सिद्ध किया जाता है तथा श्रद्धा से हरि तुष्ट होते हैं।

+ श्रद्धावान् मोक्ष को प्राप्त करता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं
भवत्यात्मनस्तुकामाय सर्वं प्रियं भवति" (बृ० उ० २/४/५)

समस्त ब्रह्मांण्ड प्रियं है। यह प्रेम ज्ञान, वैराग्य, योग, जप, तप, तीर्थ, यज्ञ, दान, व्रत, धर्म, कर्म आदि समस्त विश्व के कर्मों एवं विश्व का आधार है। इसी के लिए सब प्रिय हैं अन्य के लिए नहीं। इसी के एक बूंद उपस्थिति में सबकी सार्थकता है, अन्यथा सब व्यर्थ हैं। कहाँ तक कहा जाय, इसी में समस्त विश्व की समस्त सुख-शान्ति निहित है। यही सबका सार-सर्वस्व है। अतः इस पूर्ण प्रेमामृतसागर से वैसे ही किसी साधन से तुलना नहीं की जा सकती है जैसे अमृत से विष। यह प्रेम ही जीवन का सर्वोपरि एवं अन्तिम महालाभ है। कहा भी है :—

"साधुसङ्गाद्धि विमलाभक्तिर्भवति नैष्ठिकी।
भक्तिरेव परोलाभस्ततोऽन्यन्नास्ति किंचन ॥" (आ० पु० २६/४४)

साधु के संग से प्राप्तव्य निर्मला नैष्ठिकी अनपायिनी भक्ति ही इस संसार का सर्वोपरि लाभ है। इससे बढ़कर अन्य कोई लाभ

"न भूतो न भविष्यति"

न हुआ, न है, न होगा। जो कि,

"जन्मान्तर सहस्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः।
नराणांक्षीणपापनां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥" (वि० ध०)

सहस्रों जन्मों के तप, ज्ञान, समाधि आदि साधनों के पश्चात् ही फलरूप से प्राप्त होती है।

"कृष्णभक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम्।
श्रेष्ठापञ्चविधा मुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी ॥
ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि।
अमृतात् सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम् ॥" (ब्र०वै०पु०कृ०६७/८,६)

इसी सुदुर्लभ प्रेम को प्राप्तकर महात्मा प्रेम से प्रेमसागर में प्रेम का गोता लगाकर तृप्त-तृप्त कृतकृत्य आत्मकाम पूर्णकाम, आत्माराम गलितेन्द्रिय-निरेन्द्रिय हो जाता। इस स्तब्धी अवस्था में इन्द्रियों का व्यापार समाप्त हो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाता। आंख के देखने, कान के सुनने, वाणी के बोलने का व्यापार बन्द हो जाता। हाथ एवं पैर क्रियाशून्य हो जाते, बुद्धि का व्यापार समाप्त हो जाता। मन का मनन, चित्त का चिन्तन एवं अहं का अहं शान्त हो जाता। शरीर का भान नहीं रहता, क्योंकि अन्तरेन्द्रिय एवं बाह्येन्द्रिय प्रेमामृत को पीकर तृप्त, प्रेम की मूर्ति हो गए हैं। कामनाओं का अशेषतः निःशेषतः अभाव है। ऐसी अवस्था में मुक्तियां भी उस प्रेम में तन्मय,

"अकिंचनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः" (श्रीमद्भा० ११।१४।१३)

देह-गेह से रहित, अकिंचन, शान्त, दान्त, समदर्शी प्रेमैकनिष्ठ भक्त की दर्शन की स्पृहा से लालायित उस पर मुग्ध रहती हैं, और यह प्रतीक्षा करती रहती हैं कि यदि कहीं मुझ पर इस अमृतमूर्ति की अमृत दृष्टि पड़ जाती तो मैं भी कृतार्थ हो जाती, परन्तु वहां तो इच्छा का मूल मन ही दग्ध हो चुका है। अतः ऐसी परिस्थिति में कौन कैसे और क्यों किसी को देखे? भला, जिस

"भक्तिवशः पुरुषः" [श्रुति]
"क्रीतोऽहं तेन चार्जुन" [आ० पु०]
"अनुव्रजाम्यहं नित्यम्" [श्रीमद्भा० ११/१४/१६]

भक्ति के वशीभूत होकर, प्रेमसूत्र में बँधकर मुक्ति प्रदाता ब्रह्म भी भक्त के प्रेम के कारण उसकी रूपमाधुरी पर मुग्ध हो, उसके पीछे-पीछे नित्य-निरन्तर दर्शन एवं सेवार्थ घूमा करता है, वहां फिर मुक्ति का क्या स्थान? तात्पर्य यह है कि भक्ति भगवान् से भी श्रेष्ठ वन्द्य है। अतः उस अनिर्वचनीय की महिमा का निर्वचन कैसे हो?

ज्ञान के क्षेत्र में शम, दम, उपरति तितिक्षा आदि साधनों से सम्पन्न होकर,

"सजातीय प्रवाहश्च विजातीय तिरस्कृतिः" (ते० वि० उ० १/१८)

सजातीय प्रत्यय— ब्रह्माकार वृत्ति के द्वारा विजातीय-जगदाकार-प्रत्यय के निरसन के लिए सालों सतत् अभ्यास करने पर ही कुछ हो पाता है, परन्तु उससे कई गुनी समता, शान्ति, तृप्ति उपरति आदि की अनुभूति केवल एक आनन्दाश्रु-प्रेमाश्रु से तत्क्षण हो जाती है। (यह हमारा हजारों बार का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुभव किया हुआ है। इसीलिए प्रेमियों से कहते भी हैं कि भक्ति जैसी कामधेनु एवं भगवान् जैसे कल्पतरु को छोड़कर अन्यत्र भटकने से क्या लाभ ?) फिर विरहावस्था तथा तज्जन्य दिव्यमहाभाव की तो बात ही अलग है। वह तो सबका सम्राट् सार सर्वस्व है। यह वाणी का विषय नहीं, केवल अनुभवगम्य है परन्तु उसका भी उल्लेख यत्र-तत्र यथा संभव किया गया है। फिर इस अतुलनीय अप्रमेयस्वरूप भक्ति की तुलना किससे की जाय ?

भक्ति मुक्ति एवं भगवत्प्राप्ति के लिए नहीं होती, अपितु

"भक्त्या संजातया भक्त्या" [श्रीमद्भा० ११/३/३१]

भक्ति, भक्ति-सेवा, भगवत्सेवा के लिए होती है। इसीलिए भगवान् इस दुर्लभ अविरल प्रेमाभक्ति को,

"मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम्" (श्रीमद्भा० ५/६/१८)

सहसा सबको नहीं देते, मुक्ति ही देकर अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं।

ऐसे कहा भी गया है:—

"मुक्ति भुक्ति स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते ।
तावद् भक्ति सुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत् ॥ (भक्ति रसामृत सिन्धु)

जब तक मोक्ष प्राप्ति की कामना रूपी पिशाचिनी हृदय में निवास करती है तब तक भक्तिसुख का अभ्युदय कैसे हो सकता है ? वस्तुतः यह जीवन्मुक्तों की वस्तु है इसी लिए तो कहा है:—

"आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥" (श्रीमद्भा० १/७/१०)

इस फलरूपा पराभक्ति के विशेषाधिकारी परम रसज्ञ, अविद्या से मुक्त आत्माराम मुनि ही हैं तभी तो इसकी मधुरिमा पर मुग्ध हो मधुपवत् इस मधुमयी अमृतरसा का सदैव अतृप्त होकर पान करते रहते हैं।

सचमुच, वह धन्य, धन्य है,

"सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या
निवसति हृदि एषां श्रीहरिभक्तिरेका ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ।

जिस भक्तिसूत्र से बंधकर भगवान् भी अपने धाम वैकुण्ठ को छोड़कर निर्धन के भी हृदय में निवास करते हैं।

यही नहीं, इससे तो,

"नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मान्तरशतैरपि ।
तद्भक्त्या तद् वहु स्वल्पं विपरीतमभक्तितः ॥ † (आ० पु० २०/६६)

प्रारब्ध कर्मभोग भी शिथिल पड़ जाता है।

"एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।
वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्म जन्मभिरनन्त कथा रसस्य ॥"
(श्रीमद्भा० १०/४७/५८)

इस पृथ्वी पर शिक्षादीक्षा शून्य एवं सर्व संस्कार रहित होने पर भी उन गँवार अबलाओं—गोपियों का ही जन्म सार्थक, श्रेष्ठ एवं धन्य है जो कि भगवान् के चरणारविन्द मकरन्दरस की रसिका प्रेम की सर्वोच्च अवस्था परम दिव्य महाभाव से सम्पन्न हैं और समस्त वेदों के वक्ता एवं विश्व के स्रष्टा होने पर भी यदि ब्रह्मा भी इस महान् फलरूपा अमृतस्वरूपा पराभक्ति से रहित हैं तो उनका ब्रह्मत्व भी व्यर्थ ही है क्योंकि जीव की महत्ता एवं शोभा केवल भक्ति से ही होती है, पद, वहुज्ञता आदि गुणों से नहीं।

यह फल रूपा प्रेमा—पराभक्ति जड़ को चेतन एवं चेतन को जड़—परमशान्त करने में समथ है, क्योंकि इसका अनुगमन सर्व समर्थ भगवान् भी करने को बाध्य रहते हैं।

---

† विना भोग के सौ जन्मों तक भी कर्मों का नाश नहीं होता है परन्तु मेरी भक्ति से महान् कर्मराशि भी शीघ्र समाप्त हो जाती है और मेरी भक्ति के विना थोड़े कर्म भी जल्दी नहीं क्षीण होते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अतः इस निरुपद्रवा, सर्वसमर्था, शक्तिसारसर्वस्व, अमृतस्वरूपा प्रेमा—पराभक्ति का,

"सर्वोपायान्परित्यज्यभक्तिमाश्रयः"

"भक्तियोगो निरुपद्रवः" (त्रि० म० उ० ८/१)

ही समस्त उपायों को छोड़कर एकमेव आश्रय ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि इसी में सबका स्वार्थ एवं परमार्थ निहित है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमदर्शिनी

इस सूत्र में भी भक्ति की श्रेष्ठता का और भी कारण बता रहे हैं।

ईश्वरस्याभिमानद्वेषित्वाद्दैन्य प्रियत्वाच्च ॥ २७॥

ईश्वर के भी अभिमान से द्वेष एवं दीनता प्रिय होने के कारण भी भक्ति श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥

भक्ति में दैन्य होने के कारण सर्वानर्थ का मूल कारण अभिमान नहीं होता, क्योंकि अभिमान की प्रवृत्ति-निवृत्ति ईश्वर से ही होती है। ज्ञान, योग, धर्म आदि साधनों में दैन्याभाव होने के कारण अर्थात् ईश्वर की कृपा का अभाव होने के कारण अभिमान की प्रवृत्ति बलात् होती है, जिसका परिहार करना जीव की शक्ति के बाहर है और भक्ति में दैन्यभाव ईश्वर को प्रिय होने से उनकी कृपा के कारण अभिमान नहीं होता, अर्थात् माया का आक्रमण नहीं होता। क्योंकि

"भक्तवत्सलः स्वयमेव सर्वेभ्यो मोक्षविघ्नेभ्यो
भक्तिनिष्ठान्सर्वान्परिपालयति ।" (त्रि० म० उ० ८/१)

"योगक्षेमं वहाम्यहम्" (श्री० गी० ६/२२)

ईश्वर भक्त का रक्षक है। उसके योग के समस्त विघ्नों को नष्ट कर भक्ति की रक्षा करता है। दूसरे,

"भक्तिरेव विष्णुप्रिया"

"यत्राहं त्वं सदा तत्र विश्लेषो न हि चानयोः" † (ग०सं०मथु० २०/१६)

भक्ति माधव की प्रिया नित्य सहचरी एवं सर्वदा अनुकूल होने से

---

† जहां मैं रहता हूँ वहां तुम्हारा भी निवास स्थान है। हम दोनों में कभी भी वियोग नहीं होता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अत्यन्त प्रिय है। इससे भी नर्तकी माया भक्ति से डरती है। तीसरे, भक्ति एवं माया—ये दोनों ही स्त्रीवर्ग हैं। अतः स्त्री, स्त्री पर मुग्ध नहीं हो सकती। इसी कारण से भक्तिमान् माया से मुग्ध नहीं होता। माया का भक्त के ऊपर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु ज्ञान, योग, धर्म—ये पुरुषवर्ग हैं, अतः इन पुरुषवर्ग की साधनाओं से सम्पन्न पुरुष स्त्रीरूपी माया पर मुग्ध होते हैं अर्थात् इनको माया पथ भ्रष्ट करती है तथा जो केवल अपने पुरुषार्थ के बल पर ही,...

"अहो दुरत्यया माया लोकस्यार्थप्रणाशिनी । ‡
यया विमोहितं सर्वं जगद् भ्रमति नित्यशः ॥ (आ० पु० २८/८)

"अजेया वैष्णवी माया" (कू० उ० ५)

"मम माया दुरत्यया" (श्री० गी० ७/१४)

सर्वश्रेयोविनाशिनी, अजेया, लोकविमोहिनी दुरत्यया माया का अतिक्रमण करना चाहता है भगवत्कृपा की अपेक्षा नहीं रखता वह आश्रयरहित कर्तृत्वाभिमानी पुरुष भगवान् की अवहेलना के कारण बार-बार श्रेय साधन से भ्रष्ट होता रहता है, क्योंकि

"एतां महामायां तरन्त्येव ये विष्णुमेव भजन्ति
नान्ये तरन्ति कदाचन" (त्रि० म० उ० ४/१)

इस महामाया को वही तरता है जो विष्णु का भजन करता है, अन्य नहीं। दूसरे,

"यमेवैषवृणुते तेन लभ्यः" (मु० उ० ३/२/३)

वह परमात्मा पुरुषार्थ साध्य नहीं, अपितु कृपा साध्य है। अतः भगवत् कृपा के अभाव में अर्थात् भक्ति से रहित अन्य साधनों से परमात्मा का दर्शन सम्भव नहीं और जो अज्ञान एवं हठ वश सर्वोपद्रवशून्य शीघ्र कल्याणप्रदा भक्ति का आदर नहीं देते, वे माया से आक्रान्त होने के कारण दुःख के ही बार-बार शिकार बनते हैं। अन्त में उन्हें भी भक्ति मार्ग का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ता है।

---

‡ अहो ! लोगों के समस्त श्रेयों को नष्ट करने वाली यह माया बड़ी दुरत्यय है जिससे मोहित होकर यह सारा संसार प्रतिदिन इधर-उधर भटकता रहता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अभिमान अपने से दूसरों में धन, बल, विद्या, कीर्ति आदि एवं त्याग, वैराग्य, ज्ञान आदि में न्यूनता देखने से होता है और संसार में इसी की सर्वत्र उपासना हो रही है। इस अभिमान को ही दूसरों में हेय बुद्धि के द्वारा पुष्ट किया जाता है, जो संसार के दुःखों का मूल कारण है, परन्तु भक्ति के क्षेत्र दैन्यभाव में,

"मनसैतानिभूतानि प्रणमेद्बहुमानयन्।
ईश्वरोजीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥" (श्रीमद्भा० ३/२६/३४)

सबको ईश्वर रूप देखना है और सबको ईश्वर समझकर सादर प्रणाम करना है।

"अयं हि सर्वकल्पनां सध्रींचीनो मतो मम।
मद्भाव सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥" (श्रीमद्भा० ११/२९/१९)

समस्त प्राणियों में मन, वाणी एवं शरीर की समस्त वृत्तियों के द्वारा भगवद्भाव ही करना है। अतः इस भक्ति के क्षेत्र में अभिमान रह ही नहीं सकता और जहां अभिमान है वहां परमात्मा नहीं, संसार है, जो

"अहकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥" (श्री० गी० १६/१८)

इस भगवदादेशानुसार, किसी से, अहंकार, बल, काम, क्रोध से युक्त हो, परमात्मा की विस्मृति—तिरस्कार करके द्वेष करता है, वह परमात्मा से द्वेष करता है। इसीलिए भगवान् उस द्वेषी के दण्ड का विधान करते हुए कहते हैं कि :—

"तानहंद्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥" (श्री० गी० १६/१९)

वेद भगवान् भी यही कहते हैं :—

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥" § [य० सं० ४०।३]

§ वे असुर सम्बन्धी लोक आत्मा के अदर्शरूप अज्ञान से अच्छादित हैं। जो कोई भी आत्मा का हनन करने वाले लोग हैं, वे मरने के अनन्तर उन्हें प्राप्त होते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उन मुझसे विमुख धन, बल, विद्या के अभिमान से अन्धे आत्म-हत्यारे पुरुषों को मैं बार-बार अशुद्ध-अशुभ आसुरी योनियों में डालता रहता हूँ, जिससे उनका अभिमान शान्त हो और भविष्य में मेरी कृपा के पात्र बन सकें। यह अज्ञानात्मक अभिमान इस असत् जड़ शरीर के जड़ाभिनिवेश के कारण सत् ईश्वर की उपेक्षा करके असत् की ओर, और चेतन की उपेक्षा करके जड़ जगत् की ओर, नित्य सुख से मोड़कर अनित्य दुःखस्वरूप संसार की ओर तथा कल्याण के एकमात्र साधन धर्म से मोड़कर अधर्म—पापाचार की ओर लगाता है। यह अभिमान ही शोक-मोहग्रस्त जन्म,मृत्यु, जरा, व्याधि तथा रागद्वेषादि समस्त शुभाशुभ योनियों, अनर्थों का मूलकारण, संसार सागर को विस्तीर्ण करने वाला एवं जगत् का पोषक है। यही विपरीत दर्शन के द्वारा अपना, संसार एवं ईश्वर का शत्रु हो जाता है। कहा भी है—

"नाहंकारात्परो रिपुः" (म० उ० ३/१६)

अहंकार–अभिमान से बढ़कर कोई प्रबल शत्रु,

"न भूतो न भविष्यति" ,

न कोई हुआ, न है, न होगा। यदि मनुष्य अभिमान से युक्त है तो उसे दुःखी करने के लिए अन्य साधनों की क्या आवश्यकता? अभिमान समस्त दुःखों का बीज है। इसी से काम, क्रोध, लोभ आदि समस्त दुःखों की सृष्टि होती है। सचमुच अभिमानी व्यक्ति सर्वदा सर्वकाल में सर्वत्र जलता ही रहता है। वह स्वतः अपना प्रबल शत्रु है। भगवान् ने भी कहा है:—

"आत्मैव रिपुरात्मनः" (श्रा० गी० ६ ५)

परन्तु जो अभिमान से रहित है उसको किसी बाह्य सुख-शान्ति की अपेक्षा नहीं, क्योंकि अहंकाराभाव में उसे अक्षय सुखशान्ति का कोष ही मिल जाता है या यों कहिए कि वह स्वयं सुख शान्ति का अक्षय रूप बन जाता है।

इसीलिए भगवान् ने कहा है:—

"योऽन्तः सुखोऽन्तरारामः" (श्री० गी० ५।२४)

अहंकार रहित अपने आत्मा में ही सुखी—आराम वाला होता है, बाह्य वस्तु से नहीं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तात्पर्य यह है कि जब तक जीव को अपने इस जड़ शरीर का अभिमान एवं बल रहता है तब तक वह समस्त वेद-वेदान्त एवं शास्त्रों का महापण्डित होने पर भी मूर्ख, जड़ एवं निर्बल ही है। इसीलिए द्रौपदी को दुःशासन वस्त्रापहरण के द्वारा जब नग्न करने लगा और जब तक द्रौपदी भीष्म, गुरु एवं पतियों के बल के अभिमान से युक्त थी कि ये मेरी रक्षा कर लेंगे तथा जब तक अपने शरीर के भी हाथ दांत के बल का अभिमान था तब तक भगवान् नहीं आये, क्योंकि अभिमान भगवान् का बहिष्कार करता है तो फिर भगवान् वहां आवें कैसे ? परन्तु जिस क्षण द्रौपदी अपने शरीर के बल के अभिमान को छोड़कर अनाश्रित हो एकमात्र,

"*प्रियपतिम*" [य० सं० २३।१६]

"*पतिं पतीनाम्*" (श्वे० उ० ६।७)

समस्त ब्रह्माण्ड के वास्तविक पति परमात्मा को अपना परमपति समझ कर अति दीन, व्यथित, व्यग्र, बेचैन, शरणागत हो, अति व्याकुल होकर आर्तनाद किया—करुणैकसिन्धो ! भवभीत वन्धो ! प्रणतपाल विष्णो ! बस, एकमात्र आप ही मेरे जीवन सर्वस्व हैं। रक्षा कीजिए, नहीं तो पतिदेव पति गई। बस, क्या था, उसके हृदय-द्रावक आर्तनाद ने, करुण क्रन्दन ने, ...त्कार ने,

"*येयथा मां प्रपद्यन्ते*" (श्री० गी० ४।११)

के सिद्धान्त से, कृष्ण को व्याकुल बेचैन, पागल बना दिया। वे द्वारिका से अविलम्ब दौड़ पड़े और उस शरणागत भक्ता के रक्षार्थ एक अद्भुत नवीन वस्त्रावतार धारण कर लिया। जिससे दस हजार हाथी का बल रखने वाला दुःशासन भी पराजित हो गया।

तात्पर्य यह है कि अभिमान प्रेम-भक्ति का शत्रु है और भगवान् केवल प्रेम से ही प्राप्त होते हैं। अतः कल्याणकामियों को चाहिए कि सबको ईश्वर का रूप समझकर सादर सबको नमस्कार करते हुए, परम प्रेमास्पद प्रभु से प्रेम करके अपना कल्याण संपादन करें, क्योंकि यह मानवजीवन बड़ा ही दुर्लभ है। इस शरीर से केवल एक ही लाभ है कि,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम" (श्री० गी० ६/३३)

(इस असत् दुःखस्वरूप शरीर से) सत् सुखस्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लिया जाय। यह शरीर भोग के लिए नहीं मिली है, क्योंकि भोग तो शूकर-कूकर, पशु, पत्ती, कीट, पतंगादि सबको बिना प्रयास ही प्राप्त है। यह तो परमात्मा के योग—मिलन महा विवाहोत्सव के लिए मिली है। उनसे रति-प्रीति, क्रीडा विनोद के लिए मिली है। अतः हमें चाहिए कि भगवान् के द्वेषी अभिमान ग्रस्त समस्त क्रियाओं को शीघ्रातिशीघ्र छोड़कर, भगवान् को प्रिय दैन्यभाव—भक्तिभाव से युक्त होकर, शीघ्रातिशीघ्र अपना कल्याण कर लें।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब अभिमान के विरोधी भक्ति के साधनों का वर्णन कर रहे हैं।

तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके ॥ २८ ॥

कोई एक आचार्य ऐसा कहते हैं कि भक्ति का साधन ज्ञान ही है। भगवान् अचिन्त्य अनन्त, अखिल गुणगणनिलय सर्वगुण सम्पन्न हैं। उनके एक एक अंग पर कोटि-कोटि कामदेव की शोभा निछावर है। उनके सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य, सौहार्द, शौर्य वीर्य, आदि अनिर्वचनीय गुणों का निर्वचन संभव ही नहीं। वे भक्त वाञ्छाकल्पतरु, अकारणहितू, निष्कारणवत्सल सबके,

"सुहृदं सर्वभूतानाम्" (श्री० गी० ५/२६)

सुहृद, माता, पिता, गुरु, आत्मा, ईश्वर, जीवन सर्वस्व हैं। इस प्रकार भगवान् के गुणों का परिज्ञान होने पर उनके प्रति स्वाभाविक अभिरुचि, सहज स्नेह—प्रेम—भक्ति उत्पन्न होती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में भक्ति का दूसरा मत प्रदर्शित कर रहे हैं।

अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये ॥ २९ ॥

अन्य आचार्यों का मत है कि ज्ञान एवं भक्ति अन्योन्याश्रित हैं अर्थात् ज्ञान का साधन भक्ति है एवं भक्ति का साधन ज्ञान है— ऐसा मानते हैं। तात्पर्य यह है कि भगवान् की सेवा [भजन—प्रेम] करने से,

"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥" (श्री० गी० १०/१०)

भगवान् स्वयमेव ज्ञान प्रदान करते हैं और ज्ञान के द्वारा,

"इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः" (श्री० गी० १०/८)

बुधजन भक्तिभाव से भरितान्तःकरण,

"मच्चित्ता मद्गत प्राणा" (श्री० गी० १०/९)

हो तन्मय--तदाकार होकर प्राणप्रण से भगवान् से रमण, क्रीडा, तुष्टि को प्राप्त करते हुए सम, शान्त, निरीह, निरपेक्ष होकर भजन करते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में नारद जी अपने आचार्य सनत्कुमार के मतानुसार उसके अन्तर्भूत अपने मत का भी प्रतिपादन कर रहे हैं।

स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः ॥ ३० ॥

ब्रह्मा जी के मानस पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार एवं नारद जी के मत में भक्ति स्वयं फलरूपा है।

यह भक्ति साधन- साध्य उभयरूपा है।

"भक्त्या संजातया भक्त्या" (श्रीमद्भा० ११/३/३१)

इस सिद्धान्तानुसार, भक्ति से भक्ति की ही सृष्टि होती है (अतः पहले साधनात्मिका भक्ति करनी चाहिए अर्थात् भगवान् के रूप नाम, लीला, गुणरूपमणियों का अभ्यास—साधन किया जाय अर्थात्

"नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरस विग्रहः" (प० पु०)

नाम भगवान्-चैतन्य चिन्तामणि रस विग्रह का रसास्वादन-सेवन-भजन करना चाहिए।

"जकारो जन्मविच्छेदः पकारः पापनाशकः।
तस्माज्जप इति प्रोक्तो जन्मपापविनाशकः॥" (अ० पु०)

जकार जन्म का विच्छेदक एवं पकार पाप का नाशक है। इस प्रकार

"यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि" (श्री० गी० १०/२५)

जब अहिंसात्मक जप यज्ञ—जपामृत के पान से पाप शनैः शनैः नष्ट हो जायेगा, तब नाम जप में विशेष अभिरुचि होती जायेगी। फिर नाम के रसार्णवत्व–अमृतत्व का स्वयमेव अनुभव होने लगेगा। नाम भगवान के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रस विग्रह से रस झरने लगेगा,—रस मिलने लगेगा—रसास्वादन होने लगेगा। फिर तो प्रह्लादवत् उस महानामामृत का त्याग असंभव हो जायेगा। चाहे हजारों आपत्तियां आती जांय, उसका त्याग संभव नहीं। उस नामामृत-परमानन्दामृत के पान के अनन्तर प्राण का भी कोई महत्व-मूल्य नहीं रह जायेगा। फिर तो,

"उन्मादवन्नृत्यति लोकवाह्यः" (श्री मद्भा० ११/२/४०)

उन्मत्तवत्--ग्रहग्रस्तवत् प्रेम की सर्वोच्च लोकातीतावस्था को प्राप्त दिव्य महाभाव से सम्पन्न, सर्वथा निर्भय, निर्द्वन्द्व हो जायेगा। इस प्रकार यह साधनात्मिका भक्ति ही साध्या-पराभक्ति के फलरूप में फलीभूत हो जायेगी—जिसकी प्राप्ति पर समस्त कामनाओं की निःशेषतः परिसमाप्ति—परमसिद्धि की प्राप्ति हो जायेगी।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में नारद जी भगवान् की प्रसन्नता का साधन बतला रहे हैं।

राजगृहभोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात् ॥३१॥

राजभवन एवं भोजनादि में ऐसा ही देखा जाता है। केवल राजभवन के राजा का ज्ञान होने मात्र से राजा को नहीं प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि राजा की विशेषताओं का सामान्य ज्ञान तो सबको है, परन्तु राजा का परिचय न होने के कारण केवल ज्ञान मात्र से उसे कोई लाभ नहीं हो सकता। यदि उसकी सेवा की जाय तो बिना उसके महत्वज्ञान के ही उसकी प्रसन्नता का पात्र हो जायेगा। ऐसे ही भोजन का विशेषज्ञ होने पर भी यदि भोजन नहीं किया तो क्षुधा की शान्ति नहीं होगी। उसके कथनमात्र से तृप्ति नहीं होगी परन्तु भोजन करने पर क्षुधा की निवृति एवं तृप्ति स्वयमेव हो जायेगी। ऐसे ही भगवान् की सेवा-भक्ति करने से,

"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥" [श्री० गी० १०/१०]

भगवान् स्वयं अपना ज्ञान प्राप्त कराते जाएंगे और भक्ति की निष्ठा का परिपालन—वृद्धि भी करते जाएंगे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र से पूर्व सूत्र का स्पष्टीकरण किया जा रहा है।

न तेन राजपरितोषः क्षुधाशान्तिर्वा ॥३२॥

उस केवल ज्ञान से न राजा की तुष्टि होगी, न क्षुधा की निवृत्ति होगी, न क्षुधा की शान्ति ही ॥ ३२ ॥

राजा के गुणों के ज्ञान होने मात्र से राजा किसी पर प्रसन्न नहीं होगा और न भोजन का ज्ञान होने मात्र से क्षुधा की शान्ति ही होगी। अपितु राजा के अनुकूल व्यवहार—सेवा करने से राजा की प्रसन्नता प्राप्त होगी और भोजन करने से ही क्षुधा की शान्ति होगी।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सगुणोपासना के क्षेत्र में इस सूत्र में मुमुक्षुओं को भगवान् की भक्ति के लिए आदेश दिया जा रहा है। केवल ज्ञानमात्र से कोई लाभ नहीं।

तस्मात्सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः ॥ ३३ ॥

इसलिए जो मुमुक्षु मुक्त होना चाहते हैं, उन्हें भक्ति का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

"रागद्वेषविहीनो यः शमादिगुणसंयुतः।
हरिध्यानपरो नित्यं मुमुक्षुरभिधीयते ॥ (बृ० ना० पु० १/३३/५२)

जो रागद्वेष से रहित शमदमादि गुण संपन्न एवं नित्य भगवत् ध्यानपरायण है, उसे मुमुक्षु कहते हैं।

"चतुर्मुखादीनां सर्वेषांमपि विनाविष्णुभक्त्या
कल्पकोटिभिर्मोक्षो न विद्यते। (त्रि० म० उ० ८/१)

चतुर्मुख ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं की भी विना विष्णु की भक्ति के करोड़ों कल्प में मुक्ति नहीं हो सकती—इस सिद्धान्त से मुमुक्षुओं को भक्ति का ही एकमेव आश्रय ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि विष्णु की माया अजेय है, उसको जीतना संभव नहीं। इसीलिए भगवान् कहते हैं कि—

"अजेया वैष्णवी माया" (कृ० उ० ५)

"दैवी ह्येषागुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥" (श्री० गी० ७/१४)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"एहां महामायां तरन्त्येव ये विष्णुमेव भजन्ति
नान्ये तरन्ति कदाचन ।" (त्रि० म० उ० ४/१)

मेरी दैवी वैष्णवी माया अत्यन्त दुरत्यय है। अतः जो विवेकी पुरुष मेरे शरणापन्न होकर मेरा भजन, मेरी भक्ति करता है वही मेरी कृपा से मेरी माया को तर पाता है, अन्य नहीं ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में मुमुक्षुओं से ग्राह्य भक्ति का प्रकार बतला रहे हैं।

तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः ॥३४॥

उस भक्ति के साधनों का आचार्यगण गान—उपदेश करते हैं, अर्थात् वे अपने को भक्ति से भावित—परिपूरितान्तःकरण हो, भगवान् में तन्मय—तद्रूप होकर, रति, प्रीति, क्रीड़ा, विनोद करते, हुए

"रसो वै सः" (तै० उ० २/७)

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार, रसस्वरूप भगवान् में रसासक्त होकर रासोत्सव के उल्लास में दिव्य महाभाव से सम्पन्न हो,

'*मच्चित्ता मद्गतप्राणाः*" [*श्री० गी० १०/९*]

प्राणेश्वर के चित्त और प्राण से युक्त तन्निष्ठ, तृप्त, तुष्ट होकर, हृदय के उद्गार को गाते—सुनाते, प्रेमालाप करते–उपदेश देते हैं। तथा

उन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः" (*श्रीमद्भा० ११/२/४०*)

कभी लोकातीतावस्था में दिव्यमहाभाव से सम्पन्न होकर, उपदेश की मूर्ति बनकर, मूक वाणी से गान–उपदेश देते हैं। जिस अवस्था को देखकर मुमुक्षु कृतार्थ–धन्य, धन्य हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में भक्ति की प्राप्ति का उपाय बतला रहे हैं।

तत्तु विषयत्यागात् सङ्गत्यागाच्च ॥३५॥

यह भक्ति विषयों के त्याग एवं संग के त्याग से प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥

यह अमृतस्वरूपा भक्ति विषयों के त्याग से प्राप्त होती है। क्योंकि,

"विषं विषयवैषम्यं न विषं विषमुच्यते।
जन्मान्तरघ्ना विषया एक देहहरं विषम् ॥" (यो० वा० १/२९/१३)
भोगा भव महारोगा,, (यो० वा० १/२६/१०)
"विषमो ह्यतितरां संसाररागो भोगीव दशति असिरिव
छिनत्ति कुन्त इव वेधयति रज्जुरिवाऽऽवेष्टयति
पावक इव दहति रात्रिरिवान्धयति अशङ्कित तरिपतित
पुरुषान् पाषाण इव विवशीकरोति हरति प्रज्ञां
नाशयति स्थितिं पातयति मोहान्धकूपे तृष्णा
जर्जरी करोति न तदस्ति किञ्चिद् दुःखं संसारी
यन्न प्राप्नोति ॥ दुरन्तेयं किल विषय विषूचिका यदि
न चिकित्स्यते तन्नितरां नरकनगरनिकर फलानुबन्धिनी
तत्तत्करोति ॥" (यो० वा० २/१३/१४)

यह भगवद्विरोधी विषय विष से भी अधिक भयंकर, नाना दुर्योनियों को प्रदान करने वाला महारोगस्वरूप है। यह सर्प के समान डँसने वाला, तलवार के समान काटने वाला, भाले के सदृश छेदने वाला, रस्सी के समान बाँधने वाला, अग्नि के सदृश दाहक, रात्रि के समान दृष्टि को नष्ट करने वाला, मर्यादा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का शत्रु, मोहान्ध कूप में पतित करने वाला, तृष्णा के द्वारा जर्जरित करने वाला है।

यह नरकनगररूप शरीर रूप फल में बांधने वाली विषय विषूचिका अत्यन्त भयंकर—असाध्य है। यदि इसकी भलीभांति चिकित्सा नहीं की गई तो हजारों नारकीय दुर्गतियों को प्रदान करती है। अतः,

"*विषमिव विषयादीन्*" (बृ० उ० २/३७)

विषयों को विषवत् दूर से ही त्याग कर अर्थात् भगवान् से भिन्न जो भी

"*दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्*" (यो० द० १/१५)

दृष्ट एवं श्रुत इह लोक एवं पर लोक के विषय हैं, उन समस्त विषयों को त्यागकर यानी उससे विरक्त होकर,

"*मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः*"

सर्वत्र सर्वभूतों में भगवद्भाव करने से, अर्थात्

"*समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषय गोचरे।*

यद्येवं ब्रह्मणि स्यात्तत्को न मुच्येत बन्धनात्॥" † (मैत्रा० उ० ६/३४)

विषयवत् भगवान् में तन्मय होने से एवं संगत्याग से—

"*असत्सङ्गो विषाधिकः*" (ब्र० वै० पु०)

विष से भी अधिक भयंकर असत्—दुष्ट पुरुषों के संग के त्याग के द्वारा होती है क्योंकि,

"*सङ्गादशेषा प्रभवन्ति दोषाः*" (वि० पु० ४/२/१२४)

दुःसंग से ही समस्त दोष सृष्ट होते हैं।

अतः दुःसंग का सर्वथा त्याग कर देने से तथा

---

† जैसे मनुष्य का चित्त विषयों में आसक्त होता है, वैसे ही यदि परमात्मा में आसक्त हो, तो बन्धन से कौन नहीं मुक्त हो सकता है?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"सन्तः सङ्गस्य भेषजम्" (ग० पु० २/४६/५६)

संग-दोष के भेषज—औषधि सत्पुरुषों के संग से ही भक्ति प्राप्त होती है। ऐसे ही कहा भी है:—

"साधुसङ्गाद्धि विमलाभक्तिर्भवति नैष्ठिकी"

साधु संग से ही विमला—निर्मला भक्ति होती है।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में भक्ति का परमावश्यक साधन बतलाते हैं।

अव्यावृत भजनात् ॥३६॥

आवरण रहित—अखण्ड भजन से भक्ति की प्राप्ति होती है ॥३६॥

भगवान् से कोई किसी भी प्रकार का आवरण न हो अर्थात् अपने और भगवान् के बीच में विषय वासना, अहं-मम आदि का जो पर्दा है, उसको हटाकर अर्थात् भगवान् का दीदार—दर्शन करके, उनपर प्राणों की बाजी लगाकर, प्राणों की आहुति देकर, प्राणेश्वर के प्रेम में पागल दीवाना बनकर, अर्थात् विषय वासनाओं को सर्वथा त्याग करके,

"मय्यासक्तमनाः पार्थ" (श्री० गी० ७/१)

इस भगवदादेशानुसार, केवल भगवान् में आसक्तचित्त हो, भगवान् को विषय-लक्ष्य बनाकर, उन्हीं के त्रैलोक्य सुन्दर त्रिभुवनविमोहन अमृतमूर्ति पर मुग्ध हो, उन्हीं पर अपने तन, मन, जीवन को निछावर कर, उन्हीं की गति, मति, निष्ठा से युक्त हो, उन्हीं के रूपमाधुरी का पान करते हुए, उन्हीं के संयोग-वियोग में सुखी-दुःखी, रोते-गाते, हँसते हुए, उन्हीं को जीवनाधार प्राणाधार-सर्वाधार सर्वस्व समझकर उत्कण्ठित हृदय से,

"योगिनामपिसर्वेषां मद्‌गतेनान्तरात्मना" (श्री० गी० ६/४७)

अन्तरात्मा से परमप्रेम पूर्ण हृदय - श्रद्धा से विरहातुर हो, सदैव उन्हीं की दृष्टि से युक्त हो, नित्यनिरन्तर उस प्रियतम के प्रेम में तड़पते-विकल होते हुये, करुण क्रन्दन करते हुये, दिन-रात को एक कर देने से, उनके गले में गला मिलाकर, उनके दामन को पकड़कर, उनके सन्निधि से युक्त हो,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारसेवितोदृढभूमिः" (यो० द० १।१४)

दीर्घकालपर्यन्त निरन्तर श्रद्धाभक्तिभरित अन्तःकरण से तैलधारावत् अविच्छिन्न-अखण्डरूपेण अखण्ड भजन करते हुए,

"रसौ वै सः" (तै० उ० २/७)

उस रसस्वरूप परमात्मा का रसास्वादन करते हुए, उन्हीं में सन्तुष्ट क्रीड़ा-विनोद करते हुए, भजन करने से अर्थात् कभी भी कामिनी-काञ्चन आदि सांसारिक वस्तु के चिन्तन के द्वारा भगवान् के विस्मृति का अवसर न देते हुए,

"अनन्यचेताः" (श्री० गी० ८/१४)

अनन्य चिन्तन करने से केवल भगवान् के क्रीतदास बनकर,

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" (श्री० गी० १८/६६)

इस भगवदादेशानुसार, उन्हीं के शरणापन्न हो समस्त धर्मों की उपेक्षा करके, केवल भगवान् की कृपा का भिखारी बनकर, कृपा की भीख मांगते हुए, गुणामृत, लीलामृत, धामामृत, नामामृत का पान करते हुए, नाम की रट लगाते हुए, नाम के शरणापन्न हो, जीवन व्यतीत करते हुए, नामरूपी चैतन्य चिन्तामणि को दरिद्रवत् अपने विशुद्धान्तःकरण में लिए हुए, नाम-सागर में गोता लगाकर सुसज्जित, अलंकृत हो, उस प्रियतम के साथ रास रचाने से, क्रीड़ा करने से, विनोद करने से सकल कलिकलिषु विध्वंसिनी भगवत्प्रिया भक्तिभागीरथी का दर्शन होता है अर्थात् भक्ति महादेवी की प्राप्ति होती है।

:::

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में व्यवहार में रहते हुए भक्ति का प्रकार बतला रहे हैं।

लोकेऽपिभगवद्गुणश्रवण कीर्तनात् ॥ ३७ ॥

लोक-समाज में भी भगवद्गुणों के श्रवण कीर्तन से भक्ति की प्राप्ति होती है ॥ ३७ ॥

भगवान् ने भी कहा है:—

"मद्वार्ता यात् यामानां न बन्धाय गृहामताः" (श्रीमद्भा० ४/३०/१९)

मेरी वार्ता-चर्चा-कथा-कीर्तन से जो दिन व्यतीत करते हैं, उनके लिए गृह बन्धन का हेतु नहीं होता।

"यास्या श्रवणमात्रेण हरिश्चिरं समाश्रयेत्" (श्रीमद्भा० मा० ३/२५)

भगवत्कथामृत के श्रवणमात्र से भगवान् हृदय में निवास कर जाते हैं। कथा से सत्यस्वरूप परमात्मा का ज्ञान और उसका प्रकाश प्राप्त होता है इसी से जीव,

"ईश्वरप्रणिधानाद्वा" (यो० द० १/२३)

ईश्वर के शरणापन्न होता है। तथा इसी से,

"यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्त्यादिकं व्रजेति" (श्रीमद्भा० मा० ३/९)

भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य की प्राप्ति होती है। स्वयं भगवान् भी यही कहते हैं:—

ता ये शृण्वन्ति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः।
मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥ (श्रीमद्भा० ११/२६/२९)

जो सादर श्रद्धापूर्वक मेरी कथा एवं गुणों को सुनते, गाते एवं अनुमोदन करते हैं, वे मुझ में भक्ति प्राप्त करते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"य एतद् देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च ।
कीर्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥"

जो देवदेवेश्वर भगवान के दिव्य कर्म और जन्मों का श्रद्धापूर्वक कीर्तन करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

"भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते" (श्री मद्भा० ११/२६/३०)

और जिसको भक्ति प्राप्त हो गई उसके लिए क्या अवशिष्ट रह गया।

"भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत" (श्री मद्भा० ११/३१/२७)

वह तो परमहंसों की अन्तिमगति पराभक्ति को प्राप्त हो जाता है। ऐसे ही परीक्षित ने कहा भी है—

"त्वं भावयोगपरिभावित हृत्सरोजे ।
आस्ते श्रुते क्षित पथो ननु नाथ पुंसाम ॥"
"प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् ।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥" (श्री मद्भा० २।८।५)

प्रभो ! आप निश्चय हीं भावयोग— भक्तियोग से परिमार्जित विशुद्ध पुरुषों के हृदय-कमल में कथामृत के द्वारा कर्ण मार्ग से प्रविष्ट करते हैं।

जैसे शरद् ऋतु जल के दोष को नष्ट कर देती है वैसे ही कृष्णचन्द्र अपने भक्तों के भावात्मक हृदय कमल में कर्णरन्ध्र के द्वारा प्रविष्ट होकर मनोविकार को नष्ट कर देते हैं। इसी कथामृत भगवद्गुण श्रवण के द्वारा,

"कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ।
विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्या विनाऽऽशयः ॥" (श्रीमद्भा० ११/१४/२३)

रोम-रोम कृष्णानन्द–परमानन्द में पुलकित-आनन्दित होता है, इसी से हृदय द्रवीभूत होकर पूर्णरूपेण शुद्ध होता है, इसी से प्रेमानन्दाश्रु नेत्रों से छलकते रहते हैं, इसी से प्रेम के भी सार विरहावस्था की प्राप्ति होती है और इसी के द्वारा जीवन भगवान् के आत्यन्तिक प्रेम—पराभक्ति को प्राप्त हो जाता है। अतः,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा (श्रीमद्भा० मा० ३।२५)

कथामृत भगवद्गुण श्रवणामृत का सदा सर्वदा सेवन करना चाहिए, कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए, कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए।

भगवन्नाम संकीर्तन के विषय में अर्थवाद की कल्पना करना महापाप है। इसके विषय में भगवान् स्वयं कहते हैं :—

यन्नामकीर्तनफलं विविधं निशम्य
नो श्रद्धाति मनुते यदुतार्थवादम्।
यो मानुषस्तमसि दुःखचयेक्षिपामि
संसारघोरपरितापनिपीडिताङ्गम्॥" (ब्र० सं०)

नाम-संकीर्तन के विविध फलों को सुनकर जो उसमें श्रद्धा विश्वास नहीं करता, अर्थवादमात्र मानता है, उस मनुष्य को मैं नाना प्रकार के दुःखगर्तों में डाल देता हूँ।

"विधिवाक्यमिदं सर्वं नार्थवादः शिवात्मकम्।
लोकानुग्रहकर्ता यः स मृषार्थं कथं वदेत्॥" [शि० ध०]

भगवन्नाम महिमा का वर्णन अर्थवाद—कोरी प्रशंसामात्र नहीं, यह विधि—सत्यवाक्य है क्योंकि लोकों पर अनुग्रह करने वाले भगवान् एवं ऋषिगण झूठ कैसे कह सकते हैं? इस प्रकार १) सत्पुरुषों की निन्दा, (२) भगवन्नाम में भेद बुद्धि, (३) गुरु का अपमान, (४) शास्त्र निन्दा, (५) नाम में अर्थवाद, (६) नामालम्बन के पश्चात् पापाचरण, (७) धर्म, व्रत, दान, यज्ञादि से नाम की तुलना करना, (८) अश्रद्धालुओं को नामोपदेश करना, (९) नाममाहात्म्य में प्रेमभाव, (१०) अहंकार, ममता, भोगादि विषयों में आसक्ति —इस दश नामापराधों से मुक्त होकर,

"संकीर्तनं नाम भगवद्गुणकर्मनाम्ना स्वयमुच्चारणम्" [वीरमित्रोदय]

भगवान् के गुण, कर्म एवं नामों का संकीर्तन करने के लिए,

"मनसैतानि भूतानि प्रणमेद् बहुमानयन्।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति॥" (श्रीमद्भा० ३/२९/३४)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सबको भगवत्स्वरूप समझकर, सादर नमस्कार करते हुए, निरहम् एवं निर्मम होकर,

"नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः ।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः ॥" † (प० पु०)

चिन्ताहरण चैतन्य चिन्तामणि रस विग्रह, कृष्ण स्वरूप नाम भगवान् का तन्मय होकर गान करना चाहिए ।

'रसो वै सः" (तै० उ० २/७)

रसस्वरूप भगवन्नाम का पान—रसास्वादन करना चाहिए ।

वेद भगवान् का भी कीर्तन के प्रति यही आदेश है:—

"भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम्" (सा० सं० उ० २१/१/२)
"भद्रं श्लोकं श्रूयासम्" (अथ० सं १६/२/४)

'कानों से मंगलमय भगवन्नाम सुनें'। "कल्याणकारी भगवान् के यश को सुनें ।"

"मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाममनामहे" (ऋ० सं० ८/११/५) (य० सं० १६/३०)

'हे प्रभो ! मृत्युग्रस्त हम लोग आप के अमर, अविनाशी नाम का विशेषरूप से कीर्तन करते हैं ।

"यस्येमेहिभवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" (ऋ० सं० १०/१२१/४)

अहो ! जिस मधुपति के मधुर महिमा का गान हिमाच्छन्न महान् शिखर वाले पर्वत कर रहे हैं एवं जिसकी भक्ति का राग रसपति समुद्र अपनी रसमयी नदियों के साथ अलाप रहा है और ये विशाल दिशायें, जिसकी विशाल भुजाओं का परिचय दे रही हैं उस आनन्द स्वरूप परमात्मा का हम लोग स्तुति पूर्वक विशेष भक्ति करें ।

---

† कृष्ण नाम चैतन्य चिन्तामणि रसविग्रह स्वरूप, पूर्ण, शुद्ध, नित्यमुक्त नामी से अभिन्न है ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वोपनिषदिक गीता शास्त्र में भी भगवान् संकीर्तन के प्रति आदेश दे रहे हैं:—

"सततं कीर्तयन्तो माम्" (श्री० गी० ९।१४)
"कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति चरमन्ति च" (श्री० गी० १०।९)

भक्त सतत् कीर्तन करते हुए, मेरी उपासना करते हैं। नित्य मेरा ही कथन-कीर्तन करते हुए सन्तुष्ट-आनन्दित होते हैं। अवधूत शिरोमणि श्री शुकदेव जी संसार से विरक्त पुरुषों के लिए भी कीर्तन को ही मोक्ष का सर्वोत्तम साधन बतला रहे हैं:—

"एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्॥" [श्रीमद्भा० २।१।११]

हे परीक्षित ! संसार से विरक्त, मोक्षाभिलाषी योगियों के कल्याण के लिए यह हरिकीर्तन ही अनुभवी पुरुषों ने निर्णय किया है। गरुड़ पुराण में भी यही कहा गया है:—

"यदीच्छसि परं ज्ञानं ज्ञानाच्च परं पदम्।
तदा यत्नेन महता कुरु गोविन्द कीर्तनम्॥" [ग० पु०]

यदि आत्मज्ञान की इच्छा है और आत्मज्ञान से परम पद पाने की इच्छा है, तो प्रयत्नपूर्वक गोविन्द का कीर्तन करना चाहिए।

नामसंकीर्तन जैसा अद्भुत एवं उत्तम कल्याण का कोई साधन

"न भूतो न भविष्यति"

नहीं है। कहा भी है:—

"अशेष जगदंहसां किमपि नाम निर्णेजनम्" (श्रीभगवन्नाम कौमुदी)

अशेष जगत् के समस्त पापों को नष्ट कर देने वाला भगवान् का नाम अद्भुत साधन है। यही नहीं, पावनातिपावन नाम भगवान् का कीर्तन जैसे भी किया जाय, लाभ ही लाभ है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"साङ्केत्यं परिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनाम ग्रहणमशेषाघहरं विदुः ।। (श्रमद्भा० ६।२।१४)
"पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशोब्रुवन ।
हरये नाम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ।।" (श्रीमद्भा० १२।१२।४६)

वे संकेत में, परिहास में, तान अलापने में, अवहेलना में, गिरते हुए, फिसलते हुए, आर्तावस्था में, क्षुधातुर होते हुए अथवा विवश होकर भी "हरये नमः" उच्चारण करने मात्र से समस्त पापों से मुक्त करके,

"अजामिलोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु ।
प्राप्तवान परमं धामं तं वन्दे लोकसाक्षिणम् ।।" † (प० पु०)

परम पद प्रदान करने में समर्थ हैं। इसके लिए अजामिल प्रबल प्रमाण है। तो फिर जो सादर नामामृत का पान करते हैं उनका कहना ही क्या ? नाम भगवान् तो समदर्शी नहीं, अपितु समवर्ती हैं। वे तो अपवित्रों को भी पवित्र करने में समर्थ हैं। ऐसे ही परमहंस संहिता में कहा भी है:—

"अहोवत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानुचुर्नाम गृणन्ति ये ते ।।" (श्रीमद्भा० ३/३३/७)

जन्मजात अति अपवित्र चाण्डाल भी नामोच्चारण से अतिपवित्र-श्रेष्ठ हो जाता है। जिसने जिह्वा से भगवन्नाम कीर्तन किया, वह तप, यज्ञ, तीर्थ, स्नान, वेदाध्ययन आदिक समस्त शुभ कर्म कर चुका, अर्थात् समस्त निष्काम शुभ कर्मों का नाम में अन्र्भाव है। नाम तो भगवान् से भी श्रेष्ठ है। तभी तो भगवान् ने कहा है:—

---

† पापात्मा अजामिल भी जिसके नामोच्चारण के प्रभाव से परमधाम को प्राप्त किया, उस लोक साक्षी परमात्मा को नमस्कार है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"मद्भक्तायत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद" (आ० पु० १६/३४)

मैं वैकुण्ठ में, योगियों के हृदय में नहीं रहता, अपितु मेरे भक्त जहां मेरे नाम का कीर्तन करते हैं, मैं उससे परवश होकर नामामृत को श्रवण करने के लिए अपने भक्तों की मण्डली में आ जाता हूँ। कहां तक कहा जाय, नाम महिमा का गान तो नामी-भगवान् भी गाने में असमर्थ हैं।

इसीलिए तो भगवान् स्वयं नाम महिमा के प्रति अपने अनन्य भक्त अर्जुन से कहते हैं :—

"नामैव परमामुक्तिर्नामैव परमागतिः।
नामैव परमाशक्तिर्नामैव परमामतिः॥
नामैव परमाभक्तिर्नामैव परमाधृतिः।
नामैव परमाप्रीतिर्नामैव परमास्मृतिः॥
नामैव परमंपुण्यं नामैव परमं तपः।
नामैव परमोधर्मो नामैव परमोगुरुः॥
नामैव परमं ज्ञानं नामैव चाखिलं जगत्।
नामैव जीवनं जन्तोर्नामैव विपुलं धनम्॥
नामैव जगतां सत्यं नामैव जगतां प्रियम्।
नामैव जगतां ध्यानं न।मैव जगतां परम्॥
नामैव शरणं जन्तोर्नामैव जगतां गुरुः।
नामैव जगतां वीजं नामैव पावनं परम्॥
नामैव जगतां बन्धुर्नामैव जगतां प्रभुः।
नामैव जगतां जन्म नामैव सचराचरम्॥
नामैव धार्यते विश्वं नामैव पाल्यते जगत्।
नामैव नीयते नाम नामैव भुंजते फलम्॥
नामैव गृह्यते नाम परं गोप्यं परात्परम्।
नामैव कार्यते कर्म नामैव नीयते फलम्॥
नामैव चांगशास्त्राणां तात्पर्यार्थं वरंमतम्।
नामैव वेद सारांशं सिद्धान्तं सर्वदा शिवम्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नाम्नैव नीयते मेधापरे ब्रह्मणि निश्चला।
नाम्नैव चंचलं चित्तं मनस्तस्मिन्प्रलीयते॥
न नाम सदृशं ध्यानं न नाम सदृशो जपः।
न नाम सदृशस्त्यागो न नाम सदृशी गतिः॥
न नाम सदृशं तीर्थं न नाम सदृशं तपः।
न नाम सदृशं कर्म न नाम सदृशं शमः॥
न नाम सदृशी मुक्तिर्न नाम सदृशः प्रभुः।
ये गृह्णंति सदा नाम त एवंजितषड्गुणाः॥ (आ० पु०)

नाम ही परम मुक्ति और परम गति है। नाम ही परम शान्ति एवं परम गति है। नाम ही पराभक्ति एवं परम धृति है। नाम ही परम प्रीति-रति एवं नाम ही परमस्मृति है। नाम ही परम पुण्य एवं नाम ही परम तप है। नाम ही परमधर्म एवं परम गुरु है। नाम ही परम ज्ञान एवं समस्त ब्रह्माण्ड है। नाम ही जीव का जीवन एवं अक्षय धन है। नाम ही जगत् का सार सत्य है। नाम ही जगत् का प्रिय तत्त्व है। नाम ही जगत् में ध्यान के योग्य है। नाम ही जगत् से परे है। नाम ही जीव का शरण है, नाम ही जगत् का गुरु है। नाम ही जगत् का बीज-मूल कारण है तथा नाम ही परमपावन है। नाम ही जगत् का बन्धु एवं नाम ही जगत् का प्रभु है। नाम ही जगत् का जन्म एवं नाम ही चराचर जगत् है। नाम ही विश्व को धारण किए हुए है, और नाम ही जगत् का पालन करता है नाम ही से नाम का रहस्य ज्ञात होता है और नाम ही फल भोगता है। नाम ही परम गोप्य परात्पर नाम को ग्रहण कराता है, नाम ही कर्म कराता एवं फल प्रदान करता है। नाम ही समस्त शास्त्रों का तात्पर्यार्थ श्रेष्ठ मत है। नाम ही समस्त वेद शास्त्रों का सर्वदा शिवस्वरूप सार सिद्धान्त है। नाम के द्वारा ही मेधा परब्रह्म परमात्मा में निश्चलता को प्राप्त करती है। नाम से ही चंचल चित्त ब्रह्म में लीन करता है। नाम के सदृश ध्यान एवं अन्य कोई जप नहीं है। नाम के सदृश त्याग एवं अन्य कोई गति नहीं है। नाम के सदृश तीर्थ एवं तप नहीं है। नाम के सदृश कर्म एवं शम भी नहीं है। कहां

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तक कहा जाय, नाम के सदृश तो मुक्ति एवं मुक्ति प्रदाता स्वयं प्रभु नहीं हैं, क्योंकि प्रभु भी सदैव नाम के वश में ही रहा करते हैं। यह नाम ही

"अन्धानां नेत्रमुत्कृष्टं स्वच्छं श्रीनाम मंगलम् ।
वधिराणां यथा कर्णौ पंगूनां हस्तपादकम् ॥" (बृहद्व० सं०)
"आश्रमः सर्वभूतानामाधाररहितात्मनाम् ।
जननीतातवन्नित्यं पोषकं सर्वदेहिनाम् ॥" (गा० सं०)
"प्राणानां प्राणमित्याहुर्जीवानां जीवनं परम् ।" (का० पु०)

अन्धों का उत्कृष्ट स्वच्छ नेत्र है, बहरों का कान अथवा लूले-लँगड़ों का हस्त एवं पाद है। समस्त प्राणियों का आश्रय और आधाररहितों का परमाधार है और मातृवत् समस्त प्राणियों का नित्य पोषक है, प्राणों का प्राण, जीवधारियों का परम जीवन है। इसी से,

"ज्ञानविज्ञानसम्पन्नं वैराग्यं विषयेष्वनु ।
अमलां प्रीतिमुनीन्द्राणां लभते नामकीर्तनात् ॥" (याज्ञ० स्मृ०)

मुनीन्द्रों को भी ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य एवं निर्मला-पराप्रेमा भक्ति की प्राप्ति होती है। ये प्रत्यक्ष नाम भगवान् तो गणिका, गज, गीध, अजामिल जैसे अनन्त-अनन्त पापियों का उद्धार किये, अब भी कर रहे हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे। कलियुग में जीवों के कल्याणार्थ नाम भगवान् का प्रत्यक्ष अवतार है। ये प्रत्यक्ष चिन्तामणि, कामधेनु एवं कल्पवृक्ष रूप त्रिमूर्तिधारी भगवान् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सब कुछ प्रदान करने में समर्थ हैं। इनकी सुगमता एवं श्रेष्ठता के विषय में तो कहना ही क्या ?

"सुगमं भगवान्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी ।
तथापि नरके घोरे पतन्तीत्येतदद्भुतम् ॥

भगवान् के नाम अति सुगम, सरल एवं श्रेष्ठ हैं और जिह्वा भी वश में है। अतः भगवन्नाम उच्चारण के द्वारा नरक के द्वार को बन्द कर देना चाहिए। ऐसे ही कहा भी है:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"अहो चित्रमहोचित्रमहो चित्रमिदं द्विजाः ।
हरिनाम्नि स्थिते लोकः संसारे वर्तते पुनः ॥" ‡ (वृ० ना० पु०)

यह महान् आश्चर्य का विषय है कि समस्त जीवों के उद्धारार्थ नाम नृसिंह भगवान् का प्रत्यक्ष नित्य अवतार होने पर भी लोग हिरण्यकशिपु रूपी कलिकाल से डरते हैं। अतः नाम भगवान् का संकीर्तन करते हुए भवसागर से निर्भय निश्चिंत होकर अनायास मुक्त हो जाना चाहिए।

"संकीर्तन ध्वनिं श्रुत्वा ये च नृत्यन्ति मानवाः ।
तेषां पादाजः स्पर्शात्सद्यः पूता वसुन्धरा ॥ „ (वृ० ना० पु०)

जो भगवान् की मधुरातिमधुर मधुमयी ध्वनि सुनकर प्रेमोन्मत्त हो आनन्दातिरेक के कारण तन्मय होकर नृत्य करते हैं, उनके पादरज से वसुन्धरा तत्क्षण पवित्र हो जाती है। धन्य है महिमा नाम भगवान् की जिसके स्पर्शमात्र से भक्त महान् पावनों को भी पावन करने वाला महान पावन बन जाता हैं। कलियुग में

"कलौ केशव कीर्तनात् „

भगवन्नाम संकीर्तन ही जीवों के उद्धार के लिये एक मात्र सर्वोपरि साधन है। अथर्वणोपनिषद में भी यही कहा है कि :—

जपत्तेनैव देवता दर्शनं करोति कलौ नान्यैषां भवति ।„ [अथ० उ०]

कलियुग में केवल नाम-जप से ही परमात्मदर्शन संभव है अन्य साधनों से नहीं। तथा भाल्लेय श्रुति भी यही कहती है कि :—

„ रामनाम जपादेव मुक्तिर्भवति„ (भा० उ०)

केवल रामनाम जप से ही मुक्ति होती है।

---

‡ यह महान् आश्चर्य का विषय है कि लोग हरि नाम के स्थित होने पर भी बार-बार संसार में आवागमन को प्राप्त होते रहते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"हरे राम हरे कृष्ण कृष्ण कृष्णेति मङ्गलम् ।
एवं वदन्ति ये नित्यं न हि तान् वाधते कलिः ॥" (प० पु० ४।८०।२-३)

जो हरे राम ! हरे कृष्ण !! कृष्ण !!! सदा कहता रहता है, उसे कलियुग बाधा नहीं डाल सकता । अर्थात् भयभीत नहीं कर सकता ।

"कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।
जलं भित्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम्"॥ (स्क० पु० वैष्ण०)

जो हे कृष्ण ! हे कृष्ण !! हे कृष्ण !!! ऐसा कह कर मेरा स्मरण प्रतिदिन करता है उसे जिस प्रकार कमल जल को भेदकर ऊपर निकल आता है उसी प्रकार मैं नरक से निकाल लाता हूँ ।

"इदं शरीरं शतसंधिजर्जरं
पतत्यवश्यं परिणामी पेशलम् ।
किमौषधैः क्लिश्यसि मूढदुर्मते
निरामयं कृष्ण रसायनं पिब ॥"

सचमुच भवार्णव में मग्न इस मृत्युग्रस्त, जर्जरित, परिणामी शरीर के लिए निरामय कृष्ण रसायन ही एक दिव्य महौषधि है। अतः उसी को प्रयत्नपूर्वक प्रेम से पीना चाहिये । कहा भी है-

"वज्रं पापमहीभृतां भवगदोद्रेकस्य सिद्धौषधं
मिथ्याज्ञान निशाविशाल तमसस्तिग्मांशु विम्बोदयः ।
क्रूर क्लेश महीरुहामुरुतरज्वाला जटालः शिखी
द्वारं निर्वृति सद्मनो विजयते कृष्णेति वर्णद्वयम् ॥"

यह पाप रूपी पर्वत का वज्र, महान् भवरोग का एक सिद्ध औषध, मिथ्याज्ञान रूपी रात्रि के विशाल अंधकार का उदित सूर्य विम्ब, कठिन क्लेश रूपी वृक्ष का अत्युग्र ज्वालाओं से प्रचण्ड पावक तथा मोक्ष मन्दिर का द्वार "कृष्ण" वर्णद्वय सर्वोत्कृष्ट है । इसीलिए अनन्य भक्त बिल्वमङ्गलाचार्य कहते हैं :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"आत्यन्तिक व्याधिहरं जनानां
चिकित्सकं वेदविदो वदन्ति ।
संसारतापत्रयनाश बीजं
गोविन्द दामोदर माधवेति । (श्री गोविन्द दामोदर स्तोत्र)

वेदवेत्ता विद्वान्, 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इस नाम को ही लोगों की बड़ी से बड़ी विकट व्याधि को विच्छेद करने वाला वैद्य और संसार के त्रैताप के नाश का मूलकारण बतलाते हैं । सचमुच,

"विषं तस्य सुधा प्रोक्तं शत्रुस्तस्य सुहृदभवेत् ।
सर्वेषां प्रेमपात्रं सः य स्वनाम्नी सदा रुचिः ॥" (नृ० पु०)

भगवन्नामामृत जापी के लिए तो महाकालकूट विष भी अमृत हो जाता है तथा महा शत्रु भी परम मित्र हो जाता है एवं चराचर के समस्त जीवों की उन पर परम प्रीति हो जाती है । अतएव,

"सुखावसाने त्विदमेवसारं
दुःखावसाने त्विदमेव गेयम् ।
देहावसाने त्विदमेव जाप्यं
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥" (श्रीगोविन्द दामोदर स्तोत्र)

सुख के अंत में यही सार है, दुःख के अंत में केवल यही एक गेय—कीर्तन करने योग्य है, शरीरान्त काल में भी, हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !—यही मन्त्र जपने के योग्य है ।

सर्वेषामेव यज्ञानां लक्षाणि च व्रतानि च ।
तीर्थस्नानि सर्वाणि तपांस्यनशनानि च ॥
वेदपाठ सहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवः शतम् ।
कृष्णनाम जपस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥" [ब्र० वै० पु०]

लाखों यज्ञ, समस्त व्रत, सम्पूर्ण तीर्थों का स्नान, अनशनादि तप, सहस्रों वेद पाठ, पृथ्वी की सौ परिक्रमायें—ये सब कृष्ण नामजप की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"कृष्ण नाम्नः परंनाम् न भूतं न भविष्यति ।
सर्वेभ्यश्च परं नाम कृष्णेति वैदिका विदुः ।।
कृष्णेति मङ्गलंनाम यस्य वाचि प्रवतते ।
भस्मीभवन्ति सद्यस्तन्महापातककोटयः ।।'

वेद वेत्ताओं का कथन है कि 'कृष्ण, नाम से श्रेष्ठ दूसरा नाम न हुआ और न होगा। "कृष्ण" नाम सभी नामों में सर्वोपरि है। जिसकी जिह्वा पर 'कृष्ण' यह मंगलस्वरूप नाम विराजमान है, उनके करोड़ों महापाप तत्क्षण भस्म हो जाते हैं। यही नहीं, पावनातिपावन महामहिम नाम-भगवान् का कीर्तन जैसे भी किया जाय, लाभ ही लाभ है। कलिसंतरणोपनिषद् में भी कलियुग से मुक्त होने के लिये नारद जी के ब्रह्माजी से प्रश्न करने पर श्रुतियों के गोप्यतम रहस्य को ब्रह्माजी ने इस प्रकार कहा है:—

"भगवत आदि पुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति"
[कलि० उ०]

भगवान् आदि पुरुष नारायण के नाम-उच्चारणमात्र से कलि से मुक्त हो सकते हैं। इससे श्रेष्ठ अन्य कोई उपाय चारों वेदों में नहीं है। इसीलिये नारद जी ने भी कहा है:—

"हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।। ‡ (बृ०ना० पु०)

कलियुग में भगवन्नाम मात्र से ही जीव का उद्धार हो सकता है, अन्य, कर्म, धर्म, तप, योग, ज्ञानादि से नहीं। तथा नारद जी के परम गुरू सनक भगवान् भी यही कहते हैं:—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्" (बृ० ना० पु० ४१/११५)

---

‡ कलियुग में केवल हरि का नाम, हरि का नाम, हरि का नाम ही एकमात्र जीवों की अंतिम गति है, इससे भिन्न कोई गति नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान् का नाम ही, नाम ही, नाम ही, एक मात्र मेरा जीवन है। इतना सुगम, सरल, सर्वोपरि साधन होने पर भी जो भगवत्कथा-कीर्तन के परायण नहीं होता, वह पापात्मा

नूनं दैवेन विहता ये चाच्युत कथा सुधाम्।
हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः॥" [श्रीमद्भा० ३।३२।१९]
"श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः॥"
बिले बतोरुक्रम विक्रमान् ये
न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगाय गाथाः॥ (श्रीमद्भा० २।३।१९-२०)

विधाता का मारा हुआ अभागा विष्ठाभोजी सूकर-कूकर के सदृश भगवत्कथामृत को छोड़ करके विष्ठारूपी निन्दित विषयवार्ता का ही सेवन करता है, वह नर-पशु कुत्ते, सूकर एवं, गधे से भी नीच है और उसका कान सांप के बिल के समान है, जीभ मेढक के जीभ के समान व्यर्थ ही टर्र-टर्र करने वाली है।

"न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह।
यतो विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः॥" (श्रीमद्भा० ११/५/३७)

कलियुग में संकीर्तन से बढ़कर देहधारियों का अन्य कोई लाभ नहीं है। इससे संसार का नाश होता एवं परम शान्ति-मोक्ष की प्राप्ति होती है। इन्हीं नाम भगवान् की महिमा से महिमान्वित होकर, भक्त नामामृत को पीकर,

"विलज्ज उद्गायति नृत्यते च" (श्रीमद्भा० ११/१४/२४)

प्रेमोन्मत्त हो, लोकातीतावस्थामें दिव्य महाभाव सम्पन्न हो उच्चस्वर से आनन्दातिरेक के कारण आनन्द से कीर्तन की किलकारी मारता हुआ,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वैकुण्ठ से वैकुण्ठ को धराधाम पर लाकर, वैकुण्ठ बनाकर तन्मय हो वैकुण्ठ के साथ नृत्य करता हुआ, रास रचाता हुआ त्रिभुवन को पावन कर देता, सबके लिये मुक्ति का द्वारा खोल देता है।

धन्य है, नाम भगवान् को, जो जड़ को चेतन एवं चेतन को जड़ करने में समर्थ हैं। ऐसे सर्वसमर्थ सर्वतन्त्रस्वतन्त्र नाम भगवान् के परायण होने की कौन स्पृहा नहीं करेगा ? अतः एकमत से, एक स्वर से, नाम भगवान् के शरणापन्न होकर, नामामृत का पान करते हुये, इस देवदुर्लभ मानवशरीर को सार्थक बना लेना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में भक्ति की प्राप्ति के असाधारण साधन का निरूपण कर रहे हैं।

मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा ॥ ३८ ॥

मुख्यतया भक्ति की प्राप्ति महापुरुषों की कृपा से ही होती है। अथवा भगवान् की लेशमात्र कृपा कटाक्ष से ॥ ३८ ॥

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र समस्त सुखों एवं ज्ञान-विज्ञान की जननी अनन्य फलरूपा पराभक्ति की प्राप्ति,

"*अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः*" (*श्रीमद्भा० ११/१४/१३*)

भगवत्प्रेम में तन्मय, अकिंचन, शान्त, दान्त, समदर्शी,

"*अखिलजीववत्सलाः*" (*श्रीमद्भा० ११/१४/१७*)

अखिल जीववत्सल, सर्वभूतहितैषी, भगवच्चरणारविन्द-मकरन्दरस के रसिक महापुरुषों की कृपा कटाक्ष से ही होता है। उन सुदुर्लभ महापुरुषों के प्रति भगवान् स्वयं कहते हैं:—

"*सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि वहिरर्कः समुत्थितः।*
देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ॥" (*श्रीमद्भा० ११/२६/३४*)

सन्त सूर्यवत् भगद्दर्शनार्थ दिव्य दृष्टि प्रदान करते हैं। सचमुच, सन्त ही देवता, बन्धु, आत्मा तथा मेरे एवं सबके स्वरूप—जीवनसर्वस्व हैं, क्योंकि उनकी शरीर की समस्त चेष्टाओं से भक्ति भागीरथी की अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती है।

"*मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति*" (*श्रीमद्भा० ११/१४/२४*)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वे अपनी पावनातिपावन भगवन्मयी विशुद्ध दृष्टि के द्वारा अनायास ही स्वाभाविक रूप से त्रिभुवन को सुख-शान्ति एवं पावनता प्रदान करते रहते हैं। वे अपनी उन्मुक्त दृष्टि से समस्त चराचर जगत् को मुक्त कर देते हैं। उनकी दृष्टि एवं वाणी से सदैव अमृत की वृष्टि होती रहती है। वे सदैव भक्ति-मुक्ति का प्रसाद वितरित करते रहते हैं। उनकी प्रत्येक क्रियाओं से भक्ति एवं भगवान् का दिव्य संदेश मिलता रहता है। अतः ऐसे महापुरुषों की ही कृपा से भक्ति की प्राप्ति होती है।

"अनुव्रजाम्यहं नित्यम्" *(श्रीमद्भा० ११।१४।१६)*

के सिद्धान्त से, भगवान् भी अपने को पवित्र करने के लिए उस महापुरुष का सेवन करते हैं। अतः भगवत्कृपालभ्य मुक्ति को भी मुक्ति प्रदान करने वाले उन प्रेमैकनिष्ठ महापुरुषों का एकमेव प्रयत्नपूर्वक सेवन करना चाहिए। वेद भगवान् का भी आदेश है कि:—

"यश्चाण्डालोपि रामेति वाचं वदेत्तेन सह संवदेत्तेन सह संवसेत्तेन सह संभुञ्जीयात्"
(अथ० सं०)

चाण्डाल भक्त के साथ भी बोलना चाहिए, निवास करना चाहिए और उसके साथ भोजन करना चाहिए क्योंकि उसके संग से लाभ ही लाभ है हानि नहीं।

इसीलिए भगवान् स्वयं सत्संग की महिमा के विषय में अपने अनन्य प्रेमी भक्त उद्धव से कह रहे हैं:—

"न रोधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपो त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्॥" *(श्रीमद्भा० ११।१२।१२)*

हे उद्धव! जिस प्रकार मैं समस्त सङ्गों को नष्ट करने वाले सत्संग से वश में होता हूं उस प्रकार मैं योग, ज्ञान, धर्म, जप, तप, त्याग, इष्टापूर्त, व्रत, यज्ञ, वेदाध्ययन, तीर्थ, यम, नियम के द्वारा वश में नहीं होता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यही वसिष्ठ जी भी सत्संग की महत्ता के प्रति भगवान् राम से कह रहे हैं।

"विवेकः परमो दीपो जायते साधु संगमात्।
मनोहरोज्ज्वलो नूनमासेकादिव गुच्छकः॥
निरपायं निराबाधं निर्वृतिं नित्य पीवरीम्।
अनुत्तमां प्रयच्छन्ति साधुसंग विभूतयः॥
अपि कष्टतरां प्राप्तैर्दशा विवशतां गतैः।
मनागपि न संत्याज्या मानवै साधुसंगतिः॥" (यो० वा० २/१६/६-८)

जैसे उद्यान को सींचने से फल-फूलों के गुच्छे प्राप्त होते हैं वैसे ही साधु-संगम से मनोहर और निर्मल विवेक रूपी परमदीप उत्पन्न होता है। साधु-संगति रूपी विभूतियां नित्य बढ़ने वाले अविनाशी और अबाध शाश्वत सर्वोत्तम सुख को देती हैं। कैसी ही बड़ी आपत्ति को प्राप्त क्यों न हों और कितनी ही बड़ी पराधीनता को प्राप्त क्यों न हों, फिर भी मनुष्यों को क्षण भर के लिए भी साधुसंगति का त्याग नहीं करना चाहिए।

"साधु संगतयो लोके सन्मार्गस्य च दीपिकाः।
हार्दान्धकारहारिण्यो भासो ज्ञान विवस्वतः॥
यः स्नातः शीतसितया साधु सगति गङ्गया।
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः॥ (यो० वा० २/१६/६-१०)

लोक में साधु संगति सन्मार्ग का दीपक है और हृदयान्धकार को दूर करने वाली सूर्य की प्रभा है। जिसने शीतल और स्वच्छ साधुसंगति रूपी गंगा में स्नान किया है उसको दानों से, तीर्थों से, तपस्याओं से और यज्ञों से क्या प्रयोजन ?

"नीरागश्छिन्न सन्देहा गलित ग्रन्थयोऽनघ।
साधवो यदि विद्यन्ते किंतपस्तीर्थ संग्रहै॥
तेनाऽमल विचारस्य पदस्याऽप्रावचूलिता।
प्रथिता येन धन्येन न त्यक्ता साधुसंगतिः॥" [यो० वा० २/१६/११, १४]

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिनके राग नष्ट हो गये हैं, सन्देह कट चुके हैं एवं चिदचिद्ग्रन्थि नष्ट हो चुकी है ऐसे साधु पुरुष यदि विद्यमान हैं तो तप और तीर्थ से क्या प्रयोजन ! जिस धन्य पुरुष ने साधुसंगति का परित्याग नहीं किया, ब्रह्म की प्राप्ति के लिये प्रयत्न कर रहे लोगों में ब्रह्म की प्रथम प्राप्ति से वह अपनी शिरोभूषणता-सर्वोत्कृष्टता प्रसिद्ध कर लेता है।

" *त एते नरकाग्नीनां संशुष्केन्धनतां गताः।*
यैर्दृष्टा हेलया सन्तो नरकानल वारिदाः॥" (यो० वा० २/१६/१६)

जिन लोगों ने नरकरूपी अग्नि को बुझाने के लिये जलबरसाने वाले मेघ-रूप सन्त महात्माओं को तिरस्कार की दृष्टि से देखा, वे लोग नरकरूपी अग्नि की सूखी लकड़ी बन गये अर्थात् सूखी लकड़ियों की नाईं नरकाग्नि ने उन्हें जला डाला। सचमुच

"सत्सङ्ग परमगति" (यो० वा० २/१६/१६)

सत्संगही परम गति है। जड़ भरत ने भी राजा रहूगण को उपदेश देते हुये सत्संग की महिमा के प्रति यही कहा है।:—

" *रहूगणैतत्तपसा न याति*
न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
न च्छ दसा नैव जलाग्निसूर्यै
विना महत्पादरजोऽभिषेकम्" ॥ (श्री मद्भा० ५/१२/१२)

यह ज्ञान न तप से, न यज्ञ से, न गृह का त्याग करने से और न वेदाध्ययन से, न जल अग्नि सूर्य आदि की उपासना से ही होता है। केवल महापुरुषों के पादरज के अभिषेक से ही प्राप्त होता है। सूत जी भी यही कहते हैं:—

" *तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।*
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः "॥" (श्री मद्भा० ४/३०/३४)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्तों के संग के सामने विनाशशील स्वर्ग को कौन कहे, अविनाशी अपुनरावृत्ति-मोक्ष का भी कोई स्थान नहीं है फिर क्षुद्र मानवी भोगों की तो बात ही क्या ! भगवान् कपिल ने भी यही कहा है :—

"स उत्तमश्लोकपादारविन्दयोर्निषेवया सङ्गलब्धया (श्रीमद्भा० ७/४/४२)

भगवान् के चरण कमलों की यह अव्यवहिता -अनपायिनी भक्ति अकिंचन भगवत्प्रेमी भक्तों से ही प्राप्त होती है।

"सा च श्रीकृष्णभक्तेश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
श्रीकृष्णभक्तसङ्गेन भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ।। (ना० पा० २/१/२)

भक्त के संग से ही मुक्ति को भी तिरस्कृत करने वाली नैष्ठिकी पराभक्ति होती है। परमेश्वर शंकर का भी पार्वती के प्रति यही आदेश है:—

"अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः" (श्रीमद्भा० १२/१०/७७)

मनुष्यों के लिये साधु पुरुषों का समागम ही परम लाभ है और भी इसकी महिमा के विषय में कहा है:—

साधुसङ्गाद्धि विमला भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ।
भक्तिरेव परो लाभस्ततोऽन्यन्नास्ति किञ्चन ।।" (आ० पु० २६/४४)

साधु पुरुषों के संग से नैष्ठिकी विमला भक्ति होती है। यह भगवान् को भी वशीभूत करने वाली भक्ति ही जीवन का परम लाभ है। इससे बढ़कर अन्य कोई लाभ नहीं है। भगवान् ने तो उन महामहिम आत्मस्वरूप स्वरूपभूत सन्तों की महिमा के प्रति ब्रह्मा जी से यहां तक कह डाला कि:—

"दर्शनान्मम भक्तानां मृत्युमाप्नोति यः क्वचित् ।
विना मत्स्मरणात् पुत्र मुक्तिमेति स मानवः ।।"

जो मेरे भक्तों का दर्शन करके जहां कहीं भी मृत्यु को प्राप्त होता है, वह मनुष्य मेरा स्मरण किए बिना भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार महापुरुषों के सेवन से ही समस्त मुक्तियों से भी श्रेष्ठ सुदुर्लभ भक्ति महादेवी की प्राप्ति होती है। जिसको,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"भक्ति लब्धवतः साधो किमन्यदवशिष्यते" (श्रीमद्भा० ११/२६/३०)

प्राप्त करके कुछ भी पाना अवशिष्ट नहीं रह जाता अर्थात् जीव कृतकृत्य, जीवन्मुक्त हो जाता है। अतः अपने कल्याणार्थ भक्ति-प्राप्ति के सर्वोत्कृष्ट साधन उन महापुरुषों का सेवन,

"यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ" (श्वे० उ० ६।२३)

[इस श्रुति सिद्धान्तानुसार] ईश्वरवत् सादर श्रद्धा-भक्तिसमन्वित अन्तःकरण से करना चाहिए।

भगवत्कृपा लेशाद्वा:—अथवा

"सगुणा साधनापन्ना सिद्धावस्था तु निर्गुणा।
केषांचिदेव सा साक्षात् प्रसादान्मुरवैरिणः ॥ (शा० सं० ७।३३)

"यस्य प्रसादेन विमुक्तसङ्गाः
शुकादयः संसृति बन्धमुक्ताः।
तस्य प्रसादो बहुजन्मलभ्यो
भक्त्येकगम्यो भवमुक्तिहेतुः ॥ (सर्व वेदान्त सिद्धान्त सारसंग्रह)

सर्वशक्तिसम्पन्न, करुणावरुणालय, निष्कारणवत्सल, अचिन्त्य, अनन्त, अपार कृपासिन्धु मुरारी की एक बूँद कृपा कटाक्ष से क्षण मात्र में ही शुकदेव आदि एवं गोपियों की भांति,

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" (मु० उ० ३।२।३)

[के सिद्धान्तानुसार] बहुत जन्मों में इस कृपा साध्य साध्या परम प्रेम-लक्षणा परा-निर्गुणा भक्ति की प्राप्ति किसी विरले को होती है। जिसको प्राप्त कर जीव भवबन्धन से मुक्त-कृतकृत्य हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में महा पुरुषों के संग की विशेषता बतला रहे हैं।

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ॥ ३९ ॥

महा पुरुषों का संग प्राप्त होना दुर्लभ है एवं प्राप्त होने पर भी उनको पहचानना अगम्य–कठिन है और जान लेने पर रामबाणवत् कभी भी व्यर्थ न जाने वाला अमोघ-अचूक है। भगवान् स्वयं उन दुर्लभ महात्माओं के प्रति कहते हैं:—

"मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥" (श्री० गी० ७।३)

"स महात्मा सुदुर्लभः (श्री० गी० ७।१९)

हजारों शास्त्र-ज्ञान-सम्पन्न पुरुषों में कोई एक विरला पुरुष मेरी प्राप्ति का प्रयत्न करता है और उन विवेक वैराग्यादि साधन सम्पन्न हजारों साधकों में से कोई एक विरला मुझे तत्त्वतः जानने वाला महात्मा अति दुर्लभ है। इस प्रकार भगवान् स्वयं उस महापुरुष के दुर्लभत्व के प्रति कह रहे हैं। तथा राजराजेश्वर विदेह ने भी उसके दुर्लभत्व के प्रति यही कहा है:—

"दुर्लभं मन्ये वैकुंठ प्रियदर्शनम्" (श्रीमद्भा० ११/२/२९)

अर्थात् महात्मा, साधु संन्यासी समाज में भी रत्नवत् न्यूनतम संख्या में ही हैं अतः वे दुर्लभ हैं और यदि वे साधु-संन्यासी समाज में हैं भी तो वे,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"निस्तुतिर्निनमस्कारो निःस्वधाकार एव च ।

चलाचल निकेतश्च यतिर्यादृच्छिको भवेत् ।।" † [ना० प० उ० ६/३८]

स्तुति, नमस्कार, स्वागत, सत्कार आदि लौकिक व्यवहारों से रहित उदासीन, राजा-रङ्क आदि में सम, परम निःस्पृह, परम स्वतन्त्र हैं। अतः वे विरक्तों को छोड़कर अन्यों की दृष्टि के विषय नहीं बनते। दूसरे,

"संदिग्धः सर्वभूतानां वर्णाश्रमविवर्जितः ।

अन्धवज्जडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत् ।।" ‡ (ना० प० उ० ४/३६)

"यन्न सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ।

न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित् स ब्राह्मणः ।।" § (ना० पा० उ० ४/३४)

वे समस्त प्राणियों के लिए संशय-संदेह के विषय बने हुए, वर्णाश्रम से रहित, अन्धे, जड़, मूक की भांति अपने विद्या, आचार एवं ज्ञान आदि को छिपाए हुए प्रच्छन्न रूप से पृथ्वी पर विचरण करते हैं, इसलिए भी उनका मिलन दुर्लभ है और यदि कहीं मिल भी जांय, तो उनका पहचानना अगम्य—कठिन है। उनमें महात्मा की बुद्धि हो ही नहीं पाती। उन पर संशय सृष्ट हो जाता है कि यह तो पागल है। इसीलिए राजा रहूगण जैसे विद्वान् एवं जिज्ञासु पुरुष भी प्रच्छन्न वेषधारी अवधूत शिरोमणि जड़भरत को पालकी में जोड़ दिए। उन्हें पहचान नहीं सके, परन्तु कुछ प्रश्नोत्तर के पश्चात् जब वे उनको

---

† संन्यासी स्तुति और नमस्कार से दूर रहे। श्राद्ध और तर्पण से भी अलग रहे। चल और अचल निकेतन वाला तथा यदृच्छा लाभ सन्तुष्ट होवे।

‡ समस्त प्राणियों के लिये सन्देह का विषय बना हुआ वह वर्ण और आश्रम से रहित हो अन्ध, जड़ और मूक की भांति पृथ्वी पर विचरण करे।

§ जिसके विषय में कोई भी यह नहीं जानता कि यह साधु है या असाधु, मूर्ख है या बहुत बड़ा विद्वान् अथवा सदाचारी है या दुराचारी, वही ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहचान कर उनके शरणापन्न हुए, तो उनका संग राजा के लिए अमोघ हुआ। अर्थात् उनके उपदेश से वे कृतकृत्य हो गए।

इसी प्रकार 'दत्तभार्गव संवाद' में दत्तात्रेय जी ने सत्संग की अमोघ महिमा के विषय में कहा है कि व्याघ्रपाद नामक ऋषि के संग से एक 'हेमलेखा' नाम की शिक्षा-दीक्षा शून्य, सर्व-संस्कार रहित कन्या केवल सतसंग मात्र से महाज्ञान सम्पन्न हो गई और उस कन्या के अमोघ संग से उसका कामुक विषयी पुरुष भी महाज्ञान सम्पन्न हो गया और दोनों के संग से उस नगरी के सब नर-नारी ज्ञान सम्पन्न कृतकृत्य हो गए। ऐसे ही महाविदुषी मदालसा के संग से उसके नवजात अबोध बच्चे कल्याण को प्राप्त कृतकृत्य हो गए।

इस प्रकार महापुरुषों का संग रामबाणवत् अमोघ-अचूक है। बिना लाभ दिए रह ही नहीं सकता है। परन्तु महापुरुषों का संग अनन्त जन्मों के पुण्योदय से किसी महाभाग्यवान् को भगवत्कृपा से ही प्राप्त होता है।

तात्पर्य यह है कि भगवान् की कृपा से भक्त का दर्शन एवं भक्त की कृपा से भगवान् का दर्शन होता है, अर्थात् ये दोनों एक ही रूप हैं। इसीलिए दोनों अपने एक रूप के द्वारा दूसरे रूप का दर्शन कराते रहते हैं और इस चिन्मयी दिव्य लीला से शरणागतों का उद्धार करते रहते हैं।

वे प्रेम की मूर्ति अपनी परमानन्दामृत दिव्यदृष्टि के द्वारा अधिकारियों को परम प्रेम - परभक्ति प्रदान करते रहते हैं, यह उनका स्वभाव ही होता है। उनके स्मरण मात्र से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इसीलिये पातञ्जलि योग-दर्शन में भी मन को वश में करने के लिये,

"वीतरागविषयं वा चित्तम्,, (यो० द० १/३७)

वीतराग महात्माओं के चिन्तन का आदेश दिया गया है। एकान्त में बैठकर भगवान का चिन्तन करने से अधिकतर चित्त चंचल हो जाता है, परन्तु महापुरुषों के केवल,

"दर्शनादेव साधवः,, [श्रीमद्भा० १०/८४/११]

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दर्शनमात्र से ही चित्त का चाञ्चल्य शान्त हो जाता है। इसीलिये सत्संग की इतनी महान् महिमा शास्त्रों में गाई गई है। यहां तक कि उन महापुरुषों की महिमा का गान करने में तो ब्रह्माविष्णुमहेशशेषशारदादि भी असमर्थ हैं।

वराहोपनिषद में भी कहा है :—

"यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिस्तत्त्वे प्रवर्तते। (व० उ० ४/४३)
तद्दृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्वपातकैः॥ * [सू० सं० २/२०/४४]
खेचराभूचरा सर्वे ब्रह्मविद् दृष्टिगोचरा:।
सद्यएव विमुच्यन्ते कोटिजन्मार्जितैरघैः॥ (व० उ० ४/४४)

ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों की दृष्टिमात्र से खेचर, भूचर, समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणी मुक्त हो जाते हैं। तो जो शरणापन्न है उनका कहना ही क्या? भगवान् ने भी कहा है:—

"ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" (श्री० गी० ७/१८)

ज्ञानी मेरा आत्मा-स्वरूप है और मैं ज्ञानी का आत्मा-स्वरूप हूं। अतः ज्ञानी अपने आत्मा के रूप में मेरा दर्शन कराता और मैं अपनी आत्मा के रूप में ज्ञानी महापुरुष का दर्शन कराता हूँ अर्थात् मुझमें और उसमें अभेद है। इसी कारण से महापुरुषों का संग अमोघ बतलाया गया है, क्योंकि सन्तदर्शन भगवद्दर्शन ही है।

---

* (सर्वपातकैः) पाठ० (सर्व किल्विषैः)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में संत की प्राप्ति भगवान् एवं संत की कृपा पर ही अवलम्बित है। — यह बताया जा रहा है।

लभ्यतेऽपितत्कृपयैव ॥ ४० ॥

वे सन्त महापुरुष भगवान् की कृपा से ही प्राप्त होते हैं। क्योंकि,

"ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" (श्री० गी० ७/१८)

इस भगवद्वचनानुसार, ज्ञानी भगवान् का स्वरूप है। अतः वे जिस पर कृपा करना चाहते हैं उसके पास अपने स्वरूपभूत सन्त को, अपने दिव्य प्रेम-सन्देश को अपने स्वरूपभूत प्रेम-पराभक्ति को प्रदान करने के लिये भेज देते हैं। अथवा सन्त अपने अमृतस्वरूप स्वरूपभूत परमप्रेमलक्षणा पराभक्ति को प्रदान करने के लिये जब किसी पात्र विशेष पर कृपा करता है, तब उसकी प्राप्ति होती है,। क्योंकि उसकी कृपा भगवान् की ही कृपा है। इसीलिये प्रह्लाद को भी नृसिंह भगवान् के दर्शन—कृपा के पश्चात् प्रच्छन्नरूपधारी भगवान् दत्तात्रेय का दर्शन हुआ और तब वे उनके उपदेश से पूर्ण ज्ञान-विज्ञान से युक्त हो कृतार्थ हुये हैं।

इसीलिये भगवान् ने उद्धव को लोकातीत प्रेमधाम, प्रेमराज्य प्रेमलोक की अति गुह्यतम रहस्यात्मक दिव्य प्रेम की शिक्षा के लिये प्रेमावतार,

"निगूढ प्रेमभाजनम्" (आ० पु०)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपनी निगूढ प्रेम-प्रेमिका प्रेममूर्ति, प्रेमविह्वला परमातुरा दिव्य-महाभावसम्पन्ना परम प्रेमप्रमाणभूता गोपियों के वहां भेजा। जिनकी भगवत्संयोगवियोगजन्य ब्रह्मानन्द को भी तिरस्कृत करने वाली परमानन्दमयी अतिहर्षोल्लास एवं परमविरहावस्था को देखते ही उद्धव अपने को भूल बैठे, आपे में न रह सके, प्रेमोन्मत्त हो उठे और गोपियों के चरणरज पर निछावर हो, कृतकृत्य हो गये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमदर्शिनी

अब इस सूत्र में भक्त एवं भगवान् में अभेद बताया जा रहा है।

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात् ॥ ४१ ॥

क्योंकि भगवान् एवं भगवान् के भक्त में भेद का अभाव अर्थात् अभेद है। भगवान् ने स्वयं कहा भी है:—

"सहाया गुरवो शिष्या भुजिष्या बान्धवाः स्त्रियः।
सत्यं वदामि ते पार्थ! गोप्य किं मे भवन्ति न॥ (आ० पु०)

अर्जुन! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, वे परम प्रेम प्रमाणभूता गोपियां मेरी सहायिका, गुरू, शिष्या, बन्धु, प्रेयसी एवं आत्मा आदि सब कुछ हैं। गीता में भी भगवान् ने कहा है:—

"ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" (श्री० गी० ७/१८)
"प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यथमहं स च मम प्रियः" (श्री० गी० ७/१७)

ज्ञानी मेरा आत्मा—स्वरूप ही है। इसीलिये मैं उसे अतिप्रिय हूँ और वह मुझे अतिप्रिय है। क्योंकि,

"आत्मनस्तुकामाय सर्वं प्रियं भवति" (वृ उ० २।४।५)

इस सिद्धान्तानुसार आत्मा ही सबको प्रिय होती है। श्रीमद्भागवत में भी भगवान् ने कहा है:—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥" [श्रीमद्भा० ९/४/६८]

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साधु मेरे हृदय हैं, मैं साधुओं का हृदय हूं। वे मुझमें तन्मय तल्लीन होने के कारण मुझसे भिन्न कुछ नहीं जानते, क्योंकि वे सदा, सर्वदा, सर्वत्र, सर्वरूपों में मुझे ही देखते, सुनते एवं समझते हैं और मैं भी,

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते" (श्री० गी० ४।११)

के सिद्धान्त से, उनको सदा सर्वत्र सर्वरूपों में देखता हूँ अर्थात् वे मुझ व्यापक, अखण्ड, अनन्त परमात्मा को देखते हैं, तो मैं भी उनको व्यापक रूपसे व्यापक दृष्टि से देख कर उन्हें व्यापक परमात्मा, अपना स्वरूप बना लेता हूँ। इसीलिये भी मुझमें एवं मेरे भक्त में अन्तर नहीं है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी भगवान ने यही कहा है:—

"अहं प्राणाश्च भक्तानां भक्ताः प्राणा ममापि च।
ध्यायन्ति ये च मां नित्यं तां स्मरामि दिवानिशम्॥"

(ब्र० वै० पु० कृ० ४।६।५४)

मैं भक्तों का प्राण हूँ और भक्त हमारे प्राण हैं अर्थात् हमारा प्राण उनका प्राण है और उनका प्राण हमारा प्राण है। यानी मैं भक्त हूँ और भक्त मैं हूँ। इस प्रकार भगवान् एवं भगवान् के भक्तों में कोई भी भेद-अन्तर नहीं हैं।

"पुत्रान्पौत्रान्कलत्रांश्च राज्यं लक्ष्मीं विहाय च।
ध्यायन्ते सततं ये मां को मे तेभ्यः परः प्रियः॥
पराभक्तान्न मे प्राणा न च लक्ष्मीर्न शंकरः।
न भारती न च ब्रह्मा न दुर्गा न गणेश्वरः॥
न ब्राह्मणा न वेदाश्च न वेदजननी परा।
न गोपी न च गोपाला न राधाप्राणतः प्रिया॥
इत्येवं कथितं सर्वं सत्यं सारं च वास्तवम्।
न प्रशंसापरं तेषां ते च प्राणाधिकाः प्रिया॥

(ब्र० वै० पु० कृ० ४।२५।११४ – ११७)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जो पुत्र, पौत्र, राज्य, कलत्र, लक्ष्मी, को छोड़कर सतत मेरा स्मरण करते हैं भला, उनसे प्रिय मेरा कौन हो सकता है ? भक्त से प्रिय न मेरा प्राण है न लक्ष्मी हैं, न शंकर हैं, न भारती हैं, न ब्रह्मा हैं, न दुर्गा हैं, न गणेश हैं, न ब्राह्मण हैं, न वेद हैं, न वेदमाता गायत्री है, न गोपियां प्रिय हैं न गोपाल और न प्राणाधिका राधा ही प्रिय हैं। इस प्रकार मेरे द्वारा कथित यह सब सत्य, सार एवं वास्तविक है। यह भक्तों की कोरी प्रशंसामात्र नहीं है। सचमुच, वे मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं।

"ये दारागारपुत्राप्तान प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ *

(श्री मद्भा० ९।४।६५)

भला मैं उन सर्वस्वत्यागियों का त्याग करने में कैसे समर्थ हो सकता हूँ?

---

* जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, स्वजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक सबको छोड़कर केवल मेरी शरण में आ गये हैं, उन्हे छोड़ने का संकल्प भी मैं कैसे कर सकता हूँ!

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्ति की प्राप्ति के लिये सत्पुरुषों के सेवन का आदेश दे रहे हैं।

तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम् ॥ ४२॥

अतः उन महापुरुषों की साधना करो, उन्हीं की आराधना करो। इसीलिये भक्ति की प्राप्ति के लिये भगवत्-प्रेमातुर दिव्य महाभाव से सम्पन्न महापुरुषों की उपासना करो। उन्हीं की कृपा दृष्टि के लिये आतुर रहो। उनकी जड़ को भी द्रवीभूत करने वाली परमातुर विरहावस्था, प्रेमावस्था, लोकातीत तन्मयावस्था, करुणक्रन्दन, अति हर्षोल्लास की परमानन्दमयी स्थिति, सम, शान्त, निस्पृह, मूक-स्तब्धीअवस्था को मूक, सचेष्ट होकर देखते रहो। बस, उनके दर्शनमात्र से तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। तुम्हें प्रेम-भक्ति की सक्रिय, स्वाभूत प्रत्यक्ष अनुभूति हो जायेगी। तुम्हें भी प्रेमोद्रेक, आनन्दातिरेक होने लगेगा। तुम भक्ति भागीरथी की बाढ़ में डूब जाओगे, गोता लगाने लगोगे, क्योंकि वें महापुरुष तो भक्ति भागीरथी के उद्गम श्रोत ही हैं। वहीं से कलिकलुष विध्वंसिनी भक्ति भागीरथी की अजस्रधारा प्रवाहित होती रहती है। वे अकारणहितू भक्तवत्सल भक्त भगवान् अपनी प्रेममयी, अमृतमयी कृपा दृष्टि से तुम्हारे सर्वाङ्ग को पुष्ट कर देंगे और वे,

"देवता बान्धवाः सन्तः आत्माहमेव च" (श्रीमद्भा० ११/२६/३४)

के सिद्धान्त से, तुम्हारे माता, पिता, गुरु, ईश्वर, जीवन सर्वस्व, तुम्हें अपनी करुणामयी गोदी में लेकर, प्रेम से प्रेम की घूंटी पिलाकर कृतकृत्य कर देंगे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुम उनके शरणापन्न हो जाओ। वे कृपा-प्रेम की मूर्ति, प्रेम-कृपा की दृष्टि से तुम कृपापात्र को कृपा-प्रेम की मूर्ति बनाकर निहाल कर देंगे। क्योंकि उनका तो,

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत् ॥" §

के सिद्धान्त से, चराचर समस्त प्राणियों को अपनी प्रेममयी दिव्य दृष्टि के द्वारा परमप्रेमास्पद—प्रियतम भद्र-प्रभु को दिखलाकर सुखी निरामय—निर्विकार बनाने का स्वभाव ही है। यह उनके हृदय का अबाधित, अखण्ड दिव्य उद्गार है। वे सदा सर्वदा समस्त प्राणियों को अपना तथा प्रभु का स्वरूप समझ कर अकारण यही आशीर्वाद देते रहते हैं कि किसी को भी, कभी भी किसी भी अवस्था में लेशमात्र दुःख न हो।

"यो वै भूमा तत्सुखम्" (छा० उ० २३/७/१)

सब सुखस्वरूप परमात्मा को देखकर नित्य सुखी हो जांय। वह महापुरुष केवल अपनी मुक्ति से अपने को मुक्त नहीं मानता, अपितु बन्धन में पड़े हुये अन्य जीवों की मुक्ति में अपनी मुक्ति मानता है। इसीलिये

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ‡ (श्री० गी० ६।३२)

---

§ सभी सुखी हों, सभी निरोग रहें, सब लोग शुभ का दर्शन करें, किसी को भी दुःख का भाग न मिले।

‡ अर्जुन! जो योगी अपने सदृश सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सबमें (अपने सदृश ही) सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के सिद्धान्त से, सर्वात्मदृष्टि से सबके दुःख को अपना दुःख एवं सबके सुख को अपना सुख मानता है।

अतः वह यही चाहता है कि विश्व के समस्त प्राणी भगवद्दर्शन के द्वारा रागद्वेषात्मक समस्त दोषों से मुक्त होकर सदा सर्वदा के लिए सुखी कृतकृत्य हो जांय। अतः उस महापुरुष का, जो अपना आत्मा, गुरु, ईश्वर एवं जीवन सर्वस्व है भक्ति की प्राप्ति के लिए श्रद्धाभक्ति से युक्त हो अवश्यमेव उपासना करनी चाहिए!

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब इस सूत्र में भक्ति की रक्षा के लिये दुःसंग के त्यागने का आदेश दिया जा रहा है।

दुःसङ्ग सर्वथैव त्याज्यः ॥ ४३ ॥

दुःसंग सर्वथा ही त्याज्य है ॥ ४३ ॥

अतः भक्तों को,

"असत्सङ्गो विषाधिकः" [ब्र० नी० पु०]

"नानार्येण सहावसेत्" (मु० उ० ४/२२)

"यात्येवाभक्त संसर्गाद् दुष्टात् सर्पाद् यथा नरः।
आलापाद् गात्र संस्पर्शाच्छयनात् सहभोजनात्" ॥ (ना० पा० २/२/६)

विष से भी अति भयंकर असत्, अनार्य, विषयलम्पट, शिश्नोदर परायण भोगैश्वर्य में प्रसक्त, कामिनी काञ्चन के उपासक, आसुरी बुद्धि से युक्त दुष्ट पुरुषों का कभी भी संग नहीं करना चाहिये, क्योंकि दुःसंग सर्वानर्थ का मूल कारण है। जैसा संग होगा, वैसी बुद्धि बनेगी और जैसी बुद्धि होगी, वैसी ही क्रिया होगी। और जैसी क्रिया होगी वैसी ही,

"या मति सा गतिः"

गति भी होगी। अतः सर्वानर्थ के मूल कारण दुःसंग को सर्वथा सर्व

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकार से सर्व काल में सर्वत्र दूर से ही नमस्कार कर लेना चाहिये, अर्थात् भक्ति के विपरीत जो भी व्यक्ति, वस्तु, देश हो, उन सबका बिना सोचे-विचारे त्याग कर देना चाहिये। और

"*सत्सङ्गमः सुखमयः*" (ब्र० वै० पु०)

सुखमय भक्तिप्रद सत्पुरुषों का सेवन करते हुये सर्वसुखप्रदायिनी भक्ति महादेवी की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रमदर्शिनी

इस सूत्र में दुःसंग को ही सर्वानर्थ का मूल कारण बतलाया जा रहा है।

कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाशसर्वनाश-कारणत्वात् ॥ ४४ ॥

वह दुःसंग काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाश का कारण है। इसीलिये भगवान् ने भी गीता में यही कहा है:—

"सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥" [श्री० गी० २/६२,६३]

दुःसंग से काम और काम से क्रोध, क्रोध से संमोह, संमोह से स्मृतिभ्रंश और स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से निश्चित सर्वनाश हो जाता है अर्थात् मनुष्य अपने श्रेय साधन से भ्रष्ट-च्युत हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि दुःसंग से काम, क्रोध, लोभ आदि की प्रवृत्ति होने के कारण वह पुरुष आसुरी बुद्धि से युक्त होकर, भगवान् से सर्वथा विमुख, विषयलम्पट, शिश्नोदरपरायण हो जाता है, जिसके फलस्वरूप,

"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभः ॥" (श्री० गी० १६/२१)

वह नरक के द्वार को ही बार-बार प्राप्त करता रहता है और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्" (श्री० गी० १६/२०)

बार-बार आसुरी योनियों को प्राप्त हो, भगवान् को न प्राप्त करने के कारण, उससे भी अधम निकृष्ट योनियों को प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार इस देवदुर्लभ भक्ति के एक मात्र साधन मानव शरीर को प्राप्त कर, वह

'ये के चात्महनो जनाः" (य० सं० ४०/३)

आत्महत्यारा सूकर-कूकर सर्प, व्याघ्र आदि आसुरी घोर योनियों को प्राप्त करके अपना सर्वनाश कर लेता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में दुःसंग से ही कामादि समस्त दोषों की विशाल वृद्धि होती है—इसका निरूपण कर रहे हैं।

तरङ्गायिता अपीमे सङ्गात् समुद्रायन्ति ॥४५॥

ये काम क्रोध आदि विकार पूर्व तरङ्गों के समान अति क्षीण होने पर भी दुःसंग से समुद्र के सदृश महान्-विशाल व्यापक हो जाते हैं। ये

"काम एष क्रोध एष,, [श्री गी० ३।३७]

"कामक्रोधौ महा शत्रू देहिनां सहजा वुभौ., [आ० पु०]

जीव के स्वभाविक महा शत्रु पहले हृदयमें बीजाङ्कुर रूप-क्षीणसे दिखाई देते हैं कि मानो ये दग्ध हो चुके हैं, अब मैं निराग, निर्विकार स्वस्थ हो चुका हूं। अतः हमारा ये क्या कर सकते हैं, परन्तु दुःसंग शिश्नोदर परायण भोगैश्वर्य में प्रसक्त पुरुषों एवं कामिनी-काञ्चन के संग से ये समुद्राकार विशाल-व्यापक हो जाते हैं। जिसका ओर-छोर नहीं मिलता। अतः उसी में वह निमग्न हो जाता है और असत् को को सत्, अधर्म को धर्म और

"काम एवैकःपुरुषार्थः"

काम को ही एक मात्र पुरुषार्थ मान बैठता है। ऐसी अवस्था में जीव का उद्धार होना अत्यन्त कठिन हो जाता है। फिर तो वह,

"आया था हरि भजन को ओटन लगा कपास"

की कहानी की दृष्टि से संसार का भजन करने लगता है। इसलिए राजराजेश्वर सम्राट् पुरुरवा ने कहा है—

"अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित्
विषयेन्द्रिय संयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥ "(श्री मद्भा० ११।२६।२२)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कल्याण कामियों को स्त्री एवं स्त्री लम्पटों का संग कदापि नहीं करना चाहिये, क्योंकि विषय एवं इन्द्रियों के संयोग से ही मन क्षुब्ध होता है अन्यथा क्षुब्ध होने का कोई कारण ही नहीं है।

भगवान् दत्तात्रेय भी यही कहते हैं:—

"पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि।" [श्री मद्भा० ११।८।१३]

"नाधिगच्छेत् स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः।" [श्रीमद्भा० ११।८। १४]

साधक काष्ठ निर्मित स्त्री को भी पैर से स्पर्श न करे क्यों कि वह उस की मूर्तिमति मृत्यु है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी कहा गया है:—

"नारीं रूपं त्रिभुवने मुक्तिमार्ग निरोधकम्" (ब्र०वै०पु०)

स्त्री रूपी महामाया को विधाता ने मुक्ति के मार्ग को रोकने—बन्द करने के लिये बनाया है। सचमुच, यदि संसार में स्त्री नहीं होती तो सभी मुक्त हो जाते, क्यों कि

"लीलया कुरुते मोहं स्वात्मारामस्य संततम्" (ब्र० वै० पु०)

वह तो लीला मात्र से ही स्वात्माराम—बड़े बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्रों को भी मोहित कर लेती है। फिर अन्यों की गणना ही क्या? दूसरे साधक के लिये,

"स्वर्णं कालकूटमिव" ना० प० उ० ७।१)

स्वर्ण भी कालकूट विष के सदृश महा भयंकर प्राणघातक है। अतः साधकों को अपनी भक्ति की रक्षा के लिये दुष्टों एवं जड़-चैतन्य माया कामिनी एवं काञ्चन से सर्वदा सर्वत्र सर्व अवस्थाओं में प्रयत्नतः दूर ही रहना चाहिये। उसमें भी प्राण कण्ठगत होने पर भी अति भयंकर हड्डी मांस मलमूत्र की पुतली अत्यन्त घृणित, सर्वानर्थ के मूल कारण कामिनी का संग तो भूल

१—संन्यासी को कभी पैर से भी काठ की बनी हुई स्त्री का स्पर्श नहीं करना चाहिये।

२—स्त्री साक्षात् मृत्यु है, बुद्धिमान पुरुषों को उसे कभी स्वीकार नहीं करना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करके भी नहीं करना चाहिये, अन्यथा वह पुरुष परमात्मा के भजन का अधिकारी नहीं रह सकता।

ऐसे ही कहा भी है:—

"स्त्री पिण्डसम्पर्क कलुषित चेतसो विषयविषान्धा ब्रह्म न जानन्ति।"

जिनका चित्त स्त्री के संसर्ग से दूषित हो गया है, वे विषय रूप विष से अन्धे जीव ब्रह्म को नहीं जान सकते ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

इस सूत्र में माया से मुक्त होने का उपाय बताया गया है।

कस्तरति कस्तरति मायां ?
यः सङ्गांस्त्यजति, यो महानुभावं सेवते,
निर्ममो भवति ॥ ४६ ॥

माया को कौन तरता है ? कौन तरता है ? जो समस्त संगों को छोड़ देता है, महापुरुषों की सेवा करता है और निर्मम होता है।

यः सङ्गांस्त्यजति:— भगवान ने भी यही कहा है:—

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया" (श्री० गी० ७/१४)

"अजेया वैष्णवी माया" (कू० उ० ५)

जो मेरी अत्यन्त दुरत्यय अजेया वैष्णवी माया को

"असङ्गो ह्ययं पुरुषः" (बृ० उ० ४/३/१५)

"असङ्गो न हि सज्जते" (बृ० उ० ४/५/१५)

मुझ असंग-अनासक्त परमात्मा के शरणापन्न होकर तर चुका है इसी से जो

"सङ्गदशेषाः प्रभवन्ति दोषाः (वि० पु० ४/२/१२४)

"सर्वसङ्ग निवृत्तात्मा स मामेति न संशयः" † (व० उ० २/२६)

---

† जिसका अन्तः करण सम्पूर्ण आसक्तियों से निवृत्त हो चुका है वह मुझे निश्चित रूप से प्राप्त होता है

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समस्त दोषों के मूल कारण सङ्ग— देहासक्ति से, रहित है
"सङ्गवर्जितः" (श्री० गी० ११/५५)

अर्थात् समस्त अनात्म असत् वस्तुओं के संग से मुक्त है, वह मुझे प्राप्त करता है। श्रुति भगवती भी यही कहती हैं:—

"सङ्ग त्यागं विदुर्मोक्षं सङ्गत्यागादजन्मता" (अन्न० उ० ५/४)

संग—देहात्मबुद्धि के त्याग को ही मोक्ष एवं अमरत्व कहते हैं, क्योंकि,
"एतावान् योगसंग्रहः" (श्रीमद्भा० ११।२३।६१)

समस्त योगों का इतना ही सार संग्रह है। यह भगवान् का आदेश है। इसीलिये भगवान समस्त वेदान्त के सार-संग्रह गीता और उसके भी सार-संग्रह उपदेश के द्वारा,

"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" (श्री० गी० १८/६६)

माया के मूल कारण अनात्म समस्त देह-धर्मों के सङ्गों को छोड़ कर अपने शरण में आने के लिये आदेश दे रहे हैं, क्योंकि वे तो विज्ञानानन्दानुभवमात्र हैं। अतः जीव उनसे मिलने के लिये उनके मुख कमल को देखने के लिये, उनके आनन्दवर्षी अमृत-विग्रह का आलिंगन करने के लिये, उनसे क्रीड़ा, विनोद करने, रास रचाने के लिये अनातम असत् दुर्गन्धित देह के संग—देह के धर्मों को अर्थात् देहात्म बुद्धि को लेकर उस नित्य सुगन्धित निर्विकार परमात्मा से नहीं मिल सकता। भला, इस असत् दुःखस्वरूप संसार के संग से क्या लाभ? क्या प्रयोजन? जिससे नित्य सुखस्वरूप परमात्मा का वियोग हो जाय। अतः ऐ असङ्ग के वच्चो-अंशो! तुम असंग होकर शरीर, स्त्री, पुत्र, धनादि समस्त लोक के संगों को फेंक कर उस असंग नित्यानन्द से मिलने के लिये अविलम्ब दौड़ पड़ो। तभी वह प्यारा, प्रेमास्पद मिलेगा, अन्यथा नहीं। अतः मायासे मुक्त होने के लिये समस्तबन्धन के हेतुभूत अनात्म असत् संगों का त्याग कर दो।

यो महानुभावं सेवते:— जो महानुभाव ब्रह्मानुभवसम्पन्न महापुरुषों की सेवा करता है, वह माया से मुक्त होता है।

श्रुति भगवती भी यही कहती हैं—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत" (क० उ० १।३।१४)

महामोह-निद्रा से उठकर, विवेकवैराग्य से जागरूक होकर, कल्याणार्थ उन महापुरुषों की शरण में जाओ।

"महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेः" (श्रीमद्भा० ५।५।२)

"तत्सेवापरोऽज्ञोऽपि मुक्तो भवति" [म० ब्रा० उ० ५।१]

उनकी सेवा करो, क्योंकि उनकी सेवा को मुक्ति का द्वार बतलाया गया है। उनकी सेवा से अज्ञ भी मुक्त हो जाता है,

भगवान् भी यही कह रहे हैं:—

"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया" (श्री० गी० ४।३४)

संसार से मुक्त होने के लिये तत्वदर्शियों की सेवा करो।

श्रीमद्भागवत में भी भगवान का यही आदेश है:—

"यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम्।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून् संसेवतस्तथा॥"
"निमज्जोन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्तानौर्दृढेवाप्सु मज्जताम्॥" [श्रीमद्भा० ११/२६/३१-३२]

जिस प्रकार अग्नि के सेवन से शीत, भय एवं अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सत्पुरुषों की सेवा से पापात्मक शीत, द्वन्द्वात्मक संसारभय एवं अज्ञानात्मक अन्धकार नष्ट हो जाता है। जैसे जल में डूबते हुए पुरुषों के लिए दृढ़ नौका ही एकमात्र आश्रय है, वैसे ही इस भयंकर संसार-सागर में निमग्न पुरुषों के लिए ब्रह्मवेत्ता शान्तपुरुष ही एकमात्र आश्रय हैं।

भक्तराज प्रह्लाद भी यही कहते हैं:—

"महीयसां पादरजोऽभिषेकं।
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥" (श्रीमद्भा० ७/५/३२)

जब तक निष्किंचन महापुरुषों के चरण रज से सिर का अभिषेक नहीं करते, तब तक भगवच्चरणारविन्द-मकरन्द की मधुमयी भक्ति नहीं प्राप्त होती। इस प्रकार सत्पुरुषों के सेवन से ही माया से मुक्ति होती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अतः माया से मुक्ति प्रदान करने वाली भक्ति के लिए एकमात्र परमाश्रय महापुरुषों की,

"*यथा देवे तथा गुरौ*: (श्वे० उ० ६।२३)

ईश्वरवत् श्रद्धाभक्ति-समन्वित अन्तःकरण से निरहम्, निर्मम होकर, सेवा करो।

निर्ममोभवतिः—तथा जो समस्त वन्धनों के हेतुभूत ममता से मुक्त हो जाता है, वह माया को तरता है।

बराह भगवान् भी यही वराहोपनिषद् में कहते हैं:—

"*द्वे पदे बंधमोक्षाय निर्ममेति ममेति च।*

ममेति बध्यते जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते ॥" (व० उ० २/४३)

दो पदों में ही बन्ध एवं मोक्ष निहित है। ममता से जीव बंधता है और निर्ममता से मुक्त होता है।

भगवान् ने भी श्रीमद्भगवद्गीता में यही कहा है:—

"*निर्मानमोहा जितसङ्गदोषाः*" (श्री० गी० १५।५)

माया से मुक्त होने के लिये निर्मान, निर्मोह एवं संगदोष से मुक्त हो जाओ।

अतः वन्धन के मूल कारण स्त्री, पुत्र, देह, गेह, मैं-मोर आदि की ममता से सर्वथा मुक्त होकर,

"*मय्यावेशितचेतसाम्*" (श्री० गी० १२।७)

"*वाचारम्भणं विकारोनामधेयम्*" [छा० उ० ६/१/४]

"*आद्यन्तवन्तः कौन्तेय*" (श्री० गी० ५।२२)

"*आद्यन्तवदसज्ज्ञात्वा निःसङ्गो विचरेदिह*" † (श्रीमद्भा० ११।२८।६)

भगवान् की ममता से युक्त, भगवान् में आसक्त चित्त हो जाओ।

"*संसार एव दुःखानां सीमान्त इति कथ्यते*" ‡ (म० उ० ६।२६)

---

† यह जगत् उत्पत्ति-विनाशशील होने के कारण अनित्य एवं असत्य है। यह बात जानकर जगत् में असंग भाव से विचरना चाहिये।

‡ संसार ही दुःखों की अंतिम सीमा कही गयी है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दुःखालयमशाश्वतम्" (श्री० गी० ८।१५)

"विरज्य सर्वभूतेभ्य आविरिञ्चि पदादपि" § (ना० प० उ० ६।१६)

"आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनः" (श्री० गी० ८।१६)

"मातापित्रोर्मलोद्भूतं मलमांसमयं वपुः।

त्यक्त्वा चाण्डालवद्दूरं ब्रह्मभूय कृती भव॥" (अ० उ० ६)

वाचारम्भणमात्र आदि-अन्तवान्, असत्, विनाशशील, दुःखस्वरूप, ब्रह्मलोकपर्यन्त समस्त पुनरावर्ती लोकों से, तथा माता-पिता के मल से सृष्ट इस मल मांसमय दुर्गन्धित शरीर तथा स्त्री-पुत्रादि हड्डी-मांस मलमूत्रमय शरीर को चाण्डालवत् दूर से ही त्याग कर ब्रह्मभूत, निर्मम, निरहम्, विगतज्वर, स्वस्थ, शान्त हो माया से मुक्त हो जाओ।

---

§ सम्पूर्ण भूतों से तथा ब्रह्मादिक पद से भी विरक्त होकर।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भी माया से मुक्त होने के साधनों का ही निरूपण किया जा रहा है।

योविविक्त स्थानं सेवते, यो लोकबन्धमुन्मूलयति, निस्त्रैगुण्यो भवति, योग क्षेमं त्यजति ॥४७॥

जो एकान्त स्थान का सेवन करता है, लोक-बन्धन का उन्मूलन कर डालता है, जो निस्त्रैगुण्य हो जाता है एवं योग–क्षेम को छोड़ देता है। *यो विविक्त स्थानं सेवतेः*—जो वैराग्य की रक्षा, चित्त की प्रसन्नता, एकाग्रता, दुःसंग से बचने के लिये एवं निद्रा, आलस्य, प्रमाद की न्यूनता के लिए एकान्त स्थान का सेवन करता है, वह माया से तरता है।

श्रुति, गीता एवं सांख्य दर्शन में भी यही कहा गया है।

"*विविक्त देश सेवित्वमरतिर्जन संसदि*" (श्री० गी० १३।१०)

"*अहिरिव जनयोगं सर्वदा वर्जयेत्*" (व० उ० २।३७)

"*अरण्य गुहा पुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः*" (सां० दं० ४।२।४२)

विविक्त—एकान्त स्थान सेवन करने वाला निश्चित रूप से मुक्त होता है। अतः प्रयत्न पूर्वक शीघ्र कल्याण के लिए सर्पवत् जनयोग शून्य, पवित्र, शान्त, एकान्त, अरण्य, गुहा, पुलिन आदि का सेवन करना चाहिये।

यो लोकबन्धमुन्मूलयतिः—जो लौकिक बन्धनों का उन्मूलन—निर्मूलन कर देता है, वह माया से मुक्त हो मायातीत को प्राप्त करता है। निर्बन्ध भगवान् से मिलने—सम्बन्ध जोड़ने के लिए बन्धन स्वरूप संसार के बन्धन को तोड़ कर,

"*वैराग्यरागरसिकोभव भक्तिनिष्ठः*" (श्रीमद्भा० मा० ४।७६)

"*इमंलोकमसुंच परित्यज्य*" (आ० स्मृ०)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वैराग्य राग का रसिक हो, लोक-लोकान्तर को मिथ्या, बन्धन का हेतु समझ कर भगवान् से नवमिलन—महाविवाहोत्सव की उमंग उछाह, प्रबल उत्कण्ठा से, उन बन्धनों का उन्मूलन कर दो। क्यों कि जब तक संसार से सम्बन्ध रहेगा तब तक परम प्रेमास्पद प्रियतम परमात्मा से सम्बन्ध नहीं हो सकता। इसलिए गोपियों की भांति बिना सोचे-विचारे सम्बन्ध न करने योग्य असत् दुःखप्रद संसार की सर्वथा उपेक्षा करके, नित्य सम्बन्धित सखा भगवान् के साथ अपनी गांठ जोड़ लो। इसी लिये,

"द्वासुपर्णा सयुजा सखाया" (श्वे० उ० ४।६)

इसश्रुति सिद्धान्तानुसार अपने बिछोही, दुःखी नित्य सखा जीवसे मिलने के लिए भगवान् कह रहे हैं कि:—

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" (श्री० गी० १८।६६)

तू लोक-बन्धन के हेतुभूत समस्त उपधर्मों की उपेक्षा करके अर्थात् संसार के समस्त बन्धनों को तोड़ कर मुझ, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र से मिलने के लिए परम स्वतन्त्र हो कर मेरे शरण में आ जा। मैं मायापति ईश्वर तुझे समस्त पापों एव शोक-मोह की हेतुभूता महामाया से मुक्त कर दूंगा। अतः माया से मुक्त होने के लिए अर्थात् भगवान की प्राप्ति के लिये वैराग्य से सम्पन्न हो, लौकिक समस्त बन्धनों का उन्मूलन कर देना चाहिये।

निस्त्रैगुण्यो भवतिः—सच्चिदानन्दघन मायातीत भगवान् से मिलने के लिये त्रिगुणात्मक परिवर्तनशील विनाशी शरीर एवं संसार का अतिक्रमण कर जाओ, क्यों कि इस पांचभौतिक, दुर्गन्धित सदा मलिन रहने वाले परिवर्तित जामे को पहन कर तू उस शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल, नित्य, निर्विकार परमात्मा से नहीं मिल सकता। अतः उस प्रियतम—प्राणेश्वर से मिलने के लिए इस जामे को उतार कर अर्थात इसका अतिक्रमण करके चिन्मय, नित्य निर्विकार, गुणातीत प्राण प्यारे के पास जाओ। तभी वह प्यारा स्वीकार करेगा, अन्यथा नहीं। वह प्यारा अपने प्यारे से प्यार करने के लिए कहता है—

"त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" (श्री० गी० २।४५)

जड़ वेद, त्रिगुणात्मक परिवर्तनशील असत् जड़ जगत् को ही विषय करने वाले हैं, चेतन गुणातीत ब्रह्म—आत्मतत्त्व को नहीं। अतः तू मुझ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्रिगुणातीत परमात्मा को स्पर्श—आलिंगन करनेके लिए अर्थात् मेरे संस्पर्शज आत्यन्तिक अक्षय सुख को प्राप्त करने के लिए *निस्त्रैगुण्य*— गुणातीत हो जा, क्योंकि बिना निस्त्रैगुण्य— निष्कामा हुये मुझे स्पर्श नहीं कर सकता, मुझसे क्रीड़ा विनोद नहीं कर सकता। इसलिये निस्त्रैगुण्य हो जा, तभी त्रिगुणात्मक माया से मुक्त हो सकता है।

योगक्षेमं त्यजतिः—योगक्षेम की चिन्ता को भी छोड़ दो।

"*अप्राप्त प्रापणं योगः क्षेमस्तु स्थितरक्षणम्*"

अप्राप्त की प्राप्ति का नाम योग एवं प्राप्त की रक्षा का नाम क्षेम है। इस त्रिगुणात्मक शरीर के निर्वाहक योग-क्षेम की चिन्ता का परित्याग कर दो, क्यों कि:—

'*निर्योगक्षेम आत्मवान्*' (श्री० गी० २।४५)

योग क्षेम की चिन्ता वाला मुझे प्राप्त नहीं कर सकता, क्यों कि वह स्वयं अपने को कर्ता मानता है। मुझ विश्वम्भर पर उसका विश्वास ही नहीं है; दूसरे, इस शरीर के भरण-पोषण की चिन्ता से त्रिगुणात्मक माया की ही उपासना करेगा। उससे मुक्त नहीं हो सकता। अतः मुझ मायातीत मायापति को प्राप्त करने के लिये मेरे आदेशानुसार,

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्" (श्री० गी० ९।२२)

अनन्य चिन्तन के द्वारा परम विरहातुर, मेरे प्रेम में अधीर, व्याकुल हो कर, सर्वत्र सर्वदा मुझ प्रियतम को ही पुकारना चाहिये। मेरी रट लगानी चाहिये, मेरी ही गति, मति, निष्ठा, चेष्टा से युक्त होना चाहिये। फिर तो योग क्षेम का वहन मैं करूंगा ही, क्यों कि यह मेरा धर्म, मेरी प्रतिज्ञा है, कि जो पतिपरायण पतिव्रता जीव रूपी स्त्री संसार से सर्वथा मुख मोड़ कर,

"*पतिं पतीनाम्*" [श्वे० उ० ६।७]
"*प्रियपतिम्*" (य० सं० २३।१९)

केवल मुझ पतियों के भी परम पति प्रियतम परमात्मा के अनन्यरूपेण शरणापन्न हो जाती है, उसी का मैं पाणि ग्रहण करता हूँ और उसी के योग-क्षेम का वहन करता हूँ, अन्यों का नहीं, क्यों कि यह मेरा धर्म, मेरी सर्ववेद-मयी गीता का प्रतिज्ञा है, क्योंकि,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"परित्राणाय साधूनाम्" (श्री० गी० ४।८)

मैं भक्तों की रक्षा, उनकी रखवाली, उनकी देखभाल, उनकी सेवा शुश्रुषा के लिये ही अवतार धारण करता हूँ और कोई मेरे अवतार का प्रयोजन नहीं है। अतः भक्तों को भक्तवत्सल भगवान् की इस दिव्य एवं सुदृढ़ प्रतिज्ञा पर निर्भर निश्चिंत हो, योग-क्षेम की चिन्ता को छोड़ कर भगवच्चरणारविन्द-मकरन्द रस का रसिक हो कर माया से मुक्त हो जाना चाहिये।

यही श्रुति भगवती भी कहती हैं:—

"एतां महामायां तरन्त्येव ये विष्णुमेव भजन्ति नान्ये तरन्ति कदाचन"

(त्रि० म० उ० ४।१)

इस वैष्णवी अजेया महामाया को वे ही तरते हैं, जो केवल विष्णु को भजते हैं, अन्य भजन न करने वाले नहीं तरते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रमदर्शिनी

अब इस सूत्र में भक्त की निस्पृहता एवं निष्कामता का प्रतिपादन कर रहे हैं।

यः कर्मफलं त्यजति कर्माण्यपि संन्यस्यति ततो निर्द्वन्द्वो भवति ॥ ४८ ॥

जो कर्मफल का त्याग कर देता है, कर्मों को भी त्याग देता है। तदनन्तर सबको त्यागकर निर्द्वन्द्व हो जाता है।

वह निस्त्रैगुण्य—त्रिगुणात्मव शरीर रूपी फल का त्यागी होने के कारण शरीर के लिए अपेक्षित कर्मफल एवं कर्म का त्याग कर देता है, क्योंकि उसके शरीर के योग-क्षेम का वहन स्वयं परमात्मा करता है, दूसरे वह समस्त कर्मों, फलों एवं साधनाओं के लक्ष्यभूततत्त्व परमात्मा को प्राप्त कर चुका है। अतः अब उसके लिये कोई भी प्राप्तव्य वस्तु नहीं है जिसके लिये कर्म करे, परन्तु यह त्रिगुणात्मक शरीर गुणों के द्वारा कुछ न कुछ कर्म करेगी ही। अतः आप्तकाम, पूर्णकाम आत्माराम जीवन्मुक्त पुरुष निष्काम बुद्धि से निर्लिप्त होकर कर्म करता-सा प्रतीत होता है; क्योंकि,

"कर्तामोक्ता जनार्दनः"

उसके समस्त कर्मों के कर्ता एवं भोक्ता जनार्दन हैं। यह शरीर भी जनार्दन की है और जनार्दन के लिये है। अतः वह जनार्दन के हाथ का यन्त्र बनकर जनार्दन की प्रेरणा—मरजी से जनार्दन के आदेशानुसार,

"त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः" [श्री० गी० ४/२०]

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जनार्दन में नित्य तृप्त, मग्न होने के कारण जनार्दनात्मक कर्म करता हुआ अर्थात् जनार्दन की दृष्टि से जनार्दन के लिए जनार्दन स्वरूप-दिव्य कर्म एवं कर्मफल, जनार्दन को समर्पित करता हुआ, कर्म में प्रवृत्त होने पर भी निस्पृह, निराश्रित होने के कारण कुछ भी नहीं करता।

ततो निर्द्वन्द्वो भवतिः—तदनन्तर सर्वत्याग करके वह परमात्मा में तन्मय तल्लीन, तन्निष्ठ होकर समस्त सुखदुःखात्मक द्वन्द्वों से मुक्त निर्द्वन्द्व हो जाता है।

श्रुति भगवती भी यही कहती हैं :—

सर्वद्वन्द्वैर्विनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते" [ना० पा० उ० ३/५२]

कि वह भक्त सर्व द्वन्द्वों से मुक्त होकर ब्रह्म में स्थित हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में अनन्यानुरागियों से वेदों के अतिक्रमण का निरूपण कर रहे हैं।

वेदानपि संन्यस्यति केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते॥ ४९ ॥

वेदों का भी त्याग कर देता है, केवल अविच्छिन्न अनुराग को प्राप्त करके॥ जैसे ज्ञान के क्षेत्र में,

"ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृतस्य योगिनः।
न चास्ति किञ्चित्कर्तव्यम्॥" (श्रीजा० उ० १/२३)
अमृतेन तृप्तस्य पयसा किं प्रयोजनम्।
एवं स्वात्मानं ज्ञात्वा वेदैः प्रयोजनं किं भवति * (पै० उ० ४/९)

ज्ञानामृत से तृप्त, कृतकृत्य पुरुष के लिये कर्तव्याभाव होने के कारण वेदों से कोई प्रयोजन नहीं होता, वैसे ही इस प्रेम के क्षेत्र में भी वेदों के लक्ष्य-भूत भगवत्स्वरूप अविछिन्न अखण्ड प्रेम को प्राप्तकर अर्थात् अमृत-महासागर के महामादक प्रेमामृत प्रेमासव को पीकर प्रेमोन्मत्त, दिव्य महाभाव से सम्पन्न पुरुष प्रेमसागर में निमग्न, तन्मय, तल्लीन, तन्निष्ठ, तृप्ततृप्त होने के कारण स्वयं भी मायातीत, त्रिगुणातीत, अविछिन्न अखण्ड प्रेमस्वरूप होकर, परिछिन्न त्रिगुणात्मक जगत् के मण्डन करने वाले परिछिन्न वेदों की मर्यादा के बाहर हो जाता अर्थात् वेदों से उसका कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। वह प्रेमामृत को पीकर आप्तकाम पूर्णकाम आत्माराम

* जिस प्रकार अमृत से तृप्त पुरुष को जल से कोई प्रयोजन नहीं होता, उसी प्रकार स्वात्मानन्द को जानने वाले को वेदों से कोई प्रयोजन नहीं होता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अमृत हो जाता। उसकी इन्द्रियाँ परमानन्द में मग्न होने के कारण व्यापार के योग्य रहती ही नहीं। इसीलिये,

"लोकवेद व्यापारन्यासः" (नारद भक्ति सूत्र ८)

इस पूर्व कथित सूत्रानुसार, उससे लौकिक-वैदिक व्यापार का स्वयमेव परित्याग हो जाता है, करना नहीं पड़ता। वह स्थिति ही ऐसी है। वह विधि-निषेध से अतीत भगवत्प्रेम को प्राप्तकर विधि-निषेध का विधान करने वाले वेदों का अतिक्रमण कर जाता है। उस पर से वेदों का शासन उठ जाता है, क्योंकि वेदों का अनुशासन भगवत्प्रेम से शून्य भवप्रेमियों-देह-गेह में आसक्त, अज्ञों के लिये ही है। परमेश्वरैकनिष्ठ भगवत्प्रेमियों के लिये नहीं। कहाँ तक कहा जाय, उस अविछिन्न अखण्ड असीम प्रेमसागर में ब्रह्माण्ड के सहित समस्त वेद डूब जाते हैं। भक्त-भक्ति भगवन्त—ये तीनों एकता को प्राप्त हो जाते हैं, साधन समाप्त हो जाता है। अतः उसके साथ-साथ वेदों का भी प्रयोजन समाप्त हो जाता है। उस काल में उसकी दृष्टि में,

"यत्रनान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्याद्विजानाति स भूमा" (छ० उ० ७.२४/१)

भूमा—प्रेम से भिन्न कोई वस्तु रह ही नहीं जाती। उसके तन में, मन में, वदन में, रग-रग में, रोम-रोम में, बुद्धि में, चित्त में, अहं में, प्राण में, आंख में, कान में, नाक में, मुख में, हाथ में, पैर में, दिक में, विदिक में, आकाश में, वायु में, अग्नि में, जल में, पृथ्वी में, सूर्य में, चन्द्र में, तारा में, वृक्ष में, लता में, गुल्म में अर्थात् जड़-चेतन समस्त ब्रह्माण्ड में प्रेम ही प्रेम सर्वत्र सर्वरूपों में दिखाई देता है। भला, ऐसी अवस्था में वह वेदों को कैसे देखेगा ? और वेद कैसे उसे देखेंगे एवं कैसे उसके अनुशासन में रहेगा ? अरे भाई, ऐसी अवस्था में वेद जिसका निःश्वास,

"यस्य निःश्वसितो वेदाः" (श्रुति)

है वह,

"वेदैश्चसर्वैरहमेव वेद्यः" (श्री० गी० १५/१५)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वेद वद्य ब्रह्म भी उसका अनुगमन करता है। इसी अद्वितीय, अनिर्वचनीय अप्रमेय प्रबल प्रेम के प्रताप से निर्गुण-निर्विशेष ब्रह्म भी सगुण-सविशेष होकरबन्दी बन जाता है। फिर वह अप्रमेय प्रेमी, वेदों के प्रमाण का अविषय अर्थात् वेदों से अतीत वेदों का अनुगमन कैसे करेगा? क्योंकि वेदों का वेदत्व उस प्रेमस्वरूप परमात्माके कारण ही है। अतः वेद स्वतः अपने कल्याणार्थ भगवत्प्रेमियों का अनुगमन करते हैं, भगवत्प्रेमी नहीं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

इस सूत्र में माया से भक्तों की मुक्ति एवं उसके शरणागतों की मुक्ति का प्रतिपादन कर रहे हैं।

स तरति स तरति स लोकांस्तारयति ॥५०॥

वह माया से तरता है, वह माया से तरता है वह लोकों को भी माया से तार देता है।

वह भक्त भगवत् अप्रेम से सृष्ट भवसागर रूपी माया को भगवत्पादपद्म-पोत के द्वारा तर जाता है और अन्य लोगों को भी उस प्रेमपोत के द्वारा तारता रहता है। अथवा यों कहिये कि प्रेमार्णव में माया एवं माया के कार्य जगत् का अभाव हो जाता है और प्रेम का सर्वत्र साम्राज्य छा जाता है, प्रेम से भिन्न कोई वस्तु रह ही नहीं जाती। ऐसी अवस्था में वह प्रेम–साम्राज्य का चक्रवर्ती सम्राट्, अविच्छिन्न अखण्ड व्यापक प्रेमपाद के द्वारा विच्छिन्न–परिच्छिन्न भवसागर को अनायास ही गोपदवत् लंघ जाता है एवं शरणापन्न लोगों को भी हाथ पकड़ कर पार कर देता है। तथा वह इस अद्वितीय अनिर्वचनीय प्रेम को प्राप्तकर,

'न शोचति' 'अमृतो भवति' (नारद भक्ति सूत्र]

के सिद्धान्त से, समस्त कामनाओं से मुक्त, अमृत, तृप्ततृप्त, आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्माराम होने के कारण,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"स्वयं तीर्णः परान्तारयति"

के सिद्धान्तानुसार, स्वयं माया से मुक्त हो अन्य लोगों को भी माया से मुक्त कर देता है। वह भगवत्संयोग-वियोगजन्य विरहातुरावस्था, करुण-क्रन्दन चीत्कार से, दिव्य महाभावापन्न स्थिति से, परमानन्दमयी अति हर्षोल्लास, तन्मयता, तत्परता, तल्लीनता, तदाचारिता से, महाभक्ति भागीरथी के प्रबल प्रवाह से, अपनी अमृतमयी कृपा दृष्टि से, जड़ों को भी प्रेम से जगाकर प्रेमामृत, प्रेम की घूंटी पिलाकर, प्रेम में तन्मय, प्रेमोन्मत्त बनाकर, रास रचाकर क्रीडा विनोद, रति, प्रीति करा कर, मृत्यु को कुचल कर, यम का द्वार बन्दकर, वहां नित्य नाम का पहरू बिठाकर, विजय घोष के द्वारा वैकुण्ठ का द्वार खोल देता, प्रेम का पताका फहरा देता और

"मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति" (श्रीमद्भा० ११।१४।२४)

इस भगवदादेसानुसार, अपने पदरज से त्रिभुवन को तार देता, पावन बना देता, निर्भय निश्चिंत कर देता। धन्य है, परम प्रेमा-अमृत स्वरूपा भक्ति, भक्त, एवं भगवान् को, जिनकी लेश मात्र-कृपा से जीव माया से मुक्त हो महानिर्वाण को प्राप्त करता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

इस सूत्र में प्रेम का स्वरूप बतलाया जा रहा है।

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ॥५१॥

प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय--अकथनीय है। भगवान् ने भी यही कहा है:—

"प्रेम्णा समानं भुवि नास्ति किंचित्" [ग०सं०मथु० ४।२२]

इस अद्वितीय अनिर्वचनीय अविनाशी ब्रह्मस्वरूप प्रेम के सदृश विनाशशील संसार की कोई भी वस्तु नहीं है। इस भगवदादेशानुसार, केवलानुभवगम्य, अवांगमनसगोचर, इन्द्रियातीत प्रेम साक्षात् ब्रह्म ही है। इसीलिये धर्मराज युधिष्ठिर

"कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्" [श्रीमद्भा० १।३।२८)

प्रेम स्वरूप परिपूर्णतम ब्रह्म आनन्दकन्द सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्ण का साक्षात्कार करते ही;

"लेभे परां निर्वृत्तिमश्रुलोचनो
हृष्यत्तनूर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥ (श्री मद्भा० १०।७१।२६)

परमानन्द प्रेम महोदधि में निमग्न हो संसार को विस्मृत कर गये, चेष्टाशून्य हो गये। यही श्रुति भगवती भी प्रेम स्वरूप ब्रह्म,के विषय में कहती हैं—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥ [क०उ० २।३।१०)

जिसमें मन एवं बुद्धि सहित पंचज्ञानेन्द्रियों का व्यापार समाप्त हो जाता है। वह स्वसंवेद्य, त्रिकालाबाध्य, मायातीत, गुणातीत, अप्रमेय समस्त देश, काल, वस्तु में अनुस्यूत व्यापक प्रेम वाणी का विषय कैसे हो सकता है। इसी लिये अनिर्वचनीय प्रेम को प्राप्त करने के कारण भक्त

" नापुनर्भवं वा "

मोक्षतक की भी कामना नहीं करता। वह

निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधि को निषेधः,❀

निस्त्रैगुण्य, आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्माराम जीवन्मुक्त हो जाता है। दूसरे, इस अवस्था में प्रेमी, प्रेम, प्रेमास्पद—तीनों एकता को प्राप्त कर जाते हैं। सर्वत्र उसी की अखण्डता का साम्राज्य व्याप्त हो जाता है, श्रोता, वक्ता कोई रह ही नहीं जाता। अतः वह,

" रसो वै सः " (तै०उ० २।७]

रस स्वरूप प्रेम अनिर्वचनीय है उसका निर्वचन नहीं हो सकता है।

❀ गुणातीत ब्रह्मपथ पर विचरने वाले पुरुष के लिये क्या विधि और क्या निषेध ?

—०—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

इस सूत्र में अनिर्वचनीय प्रेम का अनुभव बताया जा रहा है।

मूकास्वादनवत् ॥५२॥

जैसे वागेन्द्रियरहित गूंगे को गुड़ खिलाने पर वह उसके स्वाद का निर्वचन-कथन नहीं कर सकता, केवल स्वाद के आनन्द का अनुभव मात्र करता है, वैसे ही,

"अमृतस्वरूपा च" (ना० भ० सू० ३)

"रसो वै सः" (तै० उ० २/७)

अमृत—रस स्वरूप प्रेम में रसासक्त तन्मय, तल्लीन, तन्निष्ठ होने के कारण प्रेमी भक्त भी रसस्वरूप हो जाता है। उसकी प्रेम से पृथक् सत्ता ही नहीं रह जाती। वह नमक के डले के समान प्रेमसागर में गलकर प्रेम ही हो जाता है, उसका अस्तित्व ही नहीं रह जाता, जिससे वह कुछ कहे, क्योंकि तन्मयता विशेष के कारण,

"यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्" (बृ० उ० ४/५/१५)

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार, जहां सर्वत्र सर्वरूप में आत्मा-प्रेम ही प्रेम हो गया वहां पर कौन किसको देखे ? कौन किसको सुने ? कौन किसको जाने ? कौन किससे बोले ? इस प्रकार प्रेमैक्यता के कारण भी कुछ नहीं कहा जा सकता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दूसरे, वह प्रेमाद्वैत अपने को मारकर, अहं को खोकर, सिर को काटने पर ही मिलता है। तो फिर ऐसी अवस्था में कैसे बोलेगा? कौन बोलेगा? किससे बोलेगा?

वह अनिर्वचनीय भजनीय प्रेमाद्वयानन्द तो केवल स्वानुभूत है, क्योंकि वह

"रसो वै सः" (तै० उ० २/७)

रस मात्र है, सत्मात्र है, चित्मात्र है, आनन्द मात्र है।

"रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" (तै० उ० २/७)

इसी रस को प्राप्त कर लोग आनन्दी होते हैं। अतः उस आनन्दस्वरूप प्रेम में भोक्ता-भोग्य सर्वथा हैं ही नहीं। इसलिये भी बोलने का प्रश्न नहीं उठता।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचयं प्रेमस्वरूपम्

इस सूत्र में प्रेम के प्राकट्य के अधिकारी का निरूपण किया जा रहा है।

प्रकाश्यते क्वापि पात्रे ॥५३॥

वह स्वानुभूत प्रेम किसी अधिकारी विशेष में ही प्रकाशित होता है ॥५३॥ वह अनिर्वचनीय इन्द्रियातीत केवलानुभवगम्य प्रेम

"जन्मान्तर सहस्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः ।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥" (*वि० ध०*)

सहस्रों जन्मों के तप, ज्ञान एवं समाधि के द्वारा क्षीणकल्मष विशुद्धान्तः-करण किसी महाभाग्यवान् भगवत्कृपापात्र विशेष में, भगवान् के वियोग में परम व्याकुलता, परम विरह वेदना, परम उत्सुकता, परम उत्कण्ठा, परम अधीर, परम तड़प, परम बेचैनी, परम करुणक्रन्दन, परम चीत्कार से अथवा चातकवत् स्वातिबिन्दुरूप अनन्य भगवच्चाह से, एक निष्ठा से, एक व्रत से, चकोरवत् चन्द्र रूप कृष्ण चन्द्र की अनन्य दृष्टि से—अनन्य प्रेम से प्रकाशित होता है। जिसका प्रकाश पाते ही वह दुर्लभ अनिर्वचनीय महापुरुष दरिद्र के मणिवत् कहकहा मचाता हुआ, महा महा आनन्दवान्, परमानन्द में मग्न निहाल हो जाता है। उस काल में वह आनन्दातिरेक के कारण,

"उन्मादवन्नृत्यति लोकवाह्यः" (*श्रीमद्भा० ११/२/४०*)

लोकवाह्य—लोकातीतावस्था को प्राप्तकर ग्रहग्रस्त--उन्मत्तवत् चेष्टा करता दिखाई देता। हंसना, रोना, गाना, असम्बद्ध वार्ता करना, जड़ों को भी प्रियतम का रूप समझकर छेड़ना, उनसे प्रेमालाप करना, स्तब्ध-मूक होना, उसका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वभाव हो जाता है। वह इस दिव्य महाभाव-दिव्योन्माद से सम्पन्न हो, नाना प्रकार की दिव्य चेष्टायें करता, जो केवल अनुभवगम्य है। उसके रोम-रोम से, रग-रग से, शरीर की सम्पूर्ण चेष्टाओं से प्रेमामृत की वृष्टि होती। उस काल में उसके हृदय का प्रेमसागर उमड़कर विश्व को डुबो देता, सबको प्रेम स्वरूप कर देता। फिर वह

"यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति" (छा० उ० ७।२४।१)

के सिद्धान्तानुसार, प्रेम से प्रेम को देखता, प्रेम से प्रेम को सुनता, प्रेम से प्रेम को बोलता, प्रेम से प्रेम की क्रीड़ा, प्रेम से प्रेम का विनोद, प्रेम से प्रेम की रति, प्रेम से प्रेम की प्रीति, प्रेम से प्रेम का रास रचाता हुआ सम्पूर्ण विश्व को अर्थात् विराट् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शुक, सनकादि, नारद, व्यास, वसिष्ठ आदि समस्त ऋषि-मुनियों, शेष, शारदा, उमा, रमा, ब्रह्माणी, पञ्चभूत, दिक्-विदिक्, सूर्य-चन्द्रादि, स्वर्ग-नरक, अपवर्ग, अतल, वितल, सुतल, भू, भुवः, स्वः, जन, मह, तप आदि चौदहो लोकों, लोकपालों, वरुण, कुबेर, यम, इन्द्रादि समस्त देव-दानवों, नदी, नद, सागर, पर्वत, तीर्थ, वेद, शास्त्र, पुराणादि समस्त जड़ चैतन्यात्मक जगत् को,

"रसो वै स." (तै० उ० २।७)

निर्गुण निर्विशेष रसस्वरूप रसामृत–महा प्रेमामृत का महाप्रसाद मूक वाणी से, मूक दृष्टि से, मूक हाथ से, मूक-शिथिल-गलित शरीर से अर्थात् बिना हाथ, बिना पैर, बिना वाणी, बिना शरीर के निरिन्द्रिय, निर्गुण, निर्विशेष होकर सगुण सविशेषवत् सबको एक पंक्ति में बिठाकर वितरित करता,

"तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" (क० उ० २।२।१५)

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार, उसके प्रकाश से सबको प्रकाशित कर देता। सबको प्रियतम--प्रेम का रूप समझकर सबसे,

"तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः" (ई० उ० ७)

इस श्रुति सिद्धान्त से, एकीभूत हो समस्त ब्रह्माण्ड को अपनी इस उन्मुक्त प्रेमामृत महा दिव्यदृष्टि महाभाव के द्वारा मुक्त कृतकृत्य कर देता।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

इस सूत्र में प्रेम भगवान् के छः गुणों का निरूपण किया जा रहा है।

गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षण वर्धमान-मविच्छिन्नंसूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ॥५४॥

वह प्रेम निर्गुण, कामना रहित, प्रतिक्षण वृद्ध होने वाला, अपरिच्छिन्न सूक्ष्मतर एवं अनुभव स्वरूप है।

जैसे भगवान् में—

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भग इतीरिणा ॥ (वि० पु० ६।५।७४)

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य, ज्ञान,—ये छहों गुण बिना प्रतिवन्ध के सम्पूर्णता से नित्य निवास करते हैं, वैसे ही प्रेम भगवान् में भी उपर्युक्त छः गुण नित्य निवास करते हैं।

बोलिये, प्रेम भगवान् की जय !!

१—गुणरहितमः—प्रेम,
"रसो वै सः" (तै० उ० २।७)

के सिद्धान्त से, रसरूप-ब्रह्मस्वरूप होने के कारण त्रिगुण रहित-गुणातीत—निर्गुण है। इसी लिए प्रेम परिवर्तन शील त्रिगुणात्मक जगत्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का अतिक्रमण करके चलता है और गुणों से अतीत, नित्य एक रस रहने वाले दिव्यातिदिव्य नित्य सर्वगुण सम्पन्न, सर्वथा दोष की गन्ध से रहित परमात्मा से सम्बन्ध करता है। प्रेम,

"दृष्टिरेव सृष्टिः"

इस दृष्टि-सृष्टि वाद के सिद्धान्त से, अपनी दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व को प्रेम—प्रियतम प्रेमास्पद के रूप में ही देखता है। उसकी दृष्टि में दोष नाम की वस्तु ही नहीं है। उसे तो अपने प्रेमास्पद में सर्वत्र सर्वदा गुण ही गुण दिखाई देता है, क्योंकि प्रेम स्वयं दूषित—कलुषित सांसारिक भावनाओं—कामनाओं से रहित निर्विकार निष्कलंक है। अतः वह त्रिगुणात्मक जगत् के भोगों को त्याग कर स्वयं गुणातीत हो कर गुणातीत भगवान् से सम्वन्ध जोड़ता है। अतः उसमें त्रिगुणात्मक जगत् के भोगों को त्याग कर स्वय् गुणातीत होकर गुणातीत भगवात् से सम्वन्ध जोड़ता है। अतः उसमें त्रिगुणात्मक शरीर एवं त्रिगुणात्मक जगत् के सुख की बुद्धि ही नहीं होती। इसी लिये वह निष्काम— निष्केवल प्रेम नित्य नूतन प्रतीत होता है। जो प्रेम गुण-दोष देखकर किया जाता है वह गुणाभाव से नष्ट हो जाता है। इसीलिये वह प्रेम प्रेम नहीं, वह तो मोह-काम है। सच्चा प्रेम तो गुण-दोष से ऊपर उठकर वस्तु के वास्तविक स्वरूपसे होता है, क्यों कि पारमार्थिक दृष्टि से समस्त ब्रह्माण्ड निर्गुण निर्विशेष हीहै। अतः गुण प्रेम में निवास करते हैं वस्तु में नहीं। इसीलिये अविच्छिन्नप्रेम, प्रेमास्पद के गुण-दोष से रहित होकर केवल उनके स्वरूपसे प्रेम करताहै। अथवा यों कहिये कि प्रेम प्रियतम का दोष देखता ही नहीं वह तो दोष-दर्शन से अन्धा होता है। इसीलिये वह अपने गुणदृष्टि से प्रियतम के दोष को भी गुण बना लेता है।

२— *कामना रहितम्:*— वह गुण रहित विशुद्ध प्रेम कामना के कलंक से रहित है, क्यों कि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"तत्सुख सुखित्वम्" [*नारद भक्ति सूत्र*]

वह तो प्रेमास्पद–प्रियतम के सुख से सुखी होता है। उसकी सारी चेष्टायें प्रियतम को सुखी करने के लिये होती हैं, अपने सुख के लिये नहीं, क्यों कि प्रेम का स्वरूप ही त्याग का है, भोग का नहीं। प्रेम

"अमृतस्वरूपा च" "अमृतो भवति". तृप्तो भवति" "आत्मारामोभवति"
(*नारदभक्तिसूत्र*)

अमृत स्वरूप है। उसे प्राप्तकर भक्त स्वयं अमृत, तृप्त एवं आत्माराम हो जाता है। उसकी समस्त कामनायें शान्त हो जाती हैं। वह समस्त विश्व को प्रियतम का रूप दिखलाकर, समस्त कामनाओं का निः शेषतः उन्मूलन कर देता है। वहां तन्मयता के कारण भोक्ता-भोग्य की बुद्धि ही नहीं रहती। अतः वह अविच्छिन्न-अखण्ड-अद्वितीय अनिर्वचनीय प्रेम, जो अपने सामने किसी का अस्तित्व ही नहीं रहने देता, कामना के कलंक से रहित सर्वथा विशुद्ध है।

दूसरे, विशुद्ध प्रेम अन्तःकरण का शोधक, राग-द्वेष, अहं–मम आदि विकारों को नष्ट करने वाला, संसार से वैराग्य देने वाला, जीव-परमात्मा की दूरी को दूर कर दूई के पर्दे को हटाकर एकता के द्वारा प्रेमाद्वैत का रास रचाने वाला है। अतः वह चिन्मात्र प्रेम कामना के गंध से रहित है।

वह प्रेम—सत्यवस्तु भगवान् की प्रीति—कामना तो अग्निवत् जान अनजान में काम बीज को दग्ध करने वाली ही है। काम-प्रद्युम्न, श्याम का पुत्र है अतः पिता श्याम-कृष्ण के सामने संकुचित होने के कारण नहीं आता। इसीलिये जहां श्री कृष्ण का प्रेम है वहां काम नहीं जा सकता।

३– *प्रतिक्षण वर्धमानम्:*— यह अविच्छिन्न प्रेम वृद्धि को प्राप्त परात्पर ब्रह्म सच्चिदानन्दघन श्री कृष्ण चन्द्र में दिन दूना रात चौगुना वृद्धि को प्राप्त होता रहता है। उसमें नित्य नये नये भाव की, नये-नये तरङ्ग की, नये-नये माधुर्य की, नये-नये क्रीड़ा, नये–नये विनोद एवं नई-नई चिन्मयी अमृतमयी मधुमयी लीलाओं की प्रतिक्षण अनुभूति होती रहता है। सर्व समर्थ प्रेम नित्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नये-नये रस का आस्वादन कराता रहता है। यह प्रेम सागर कृष्णानन्दरूप पूर्णचन्द्र को सदा सर्वदा देखता हुआ, नित्य निरन्तर उल्लसित-आनन्दित उत्कण्ठित, परिवर्द्धित होता रहता है। पूर्ण चन्दरूप कृष्णचन्द्र प्रेममहोदधि के अंक से ही सृष्ट हुये हैं। अतः उसका पूर्णचन्द्ररूप कृष्णचन्द्र को स्पर्श करने के लिये उल्लसित—उत्कण्ठित-परिवर्द्धित होना तथा 'वे मेरे हैं' इस भाव से गरजना-सिंहनाद करना, अथवा वियोग में करुणक्रन्दन आर्तनाद करना स्वभाव ही है। प्रेम विरह का सार सर्वस्व है। अतः विरहावस्था में उस प्रियतम से सर्वत्र सर्वरूपों में व्यापक मिलन होता है; परन्तु संयोग में परिच्छिन्न एक रूप का ही होता है। इसी लिये विरही महात्मा संयोग की अपेक्षा वियोग को अधिक महत्व देते हैं। वस्तुतः वह वियोग—विरह, विरह नहीं, वह तो परमानन्द का एक व्यापक मिलन-संयोग है। इसीलिये विरही महात्मा तन्मयता के कारण संयोग में भी वियोगावस्था को प्राप्त कर उस एक देशी रूप को सर्वदेशी, सर्व रूप में व्यापक बनाकर व्यापक क्रीड़ा, विनोद आनन्द, रति, प्रीति को प्राप्ति करता रहता है।

धन्य है, विरह से सृष्ट उस प्रेम को, जो बार-बार तन्मयता प्रदान करके अपने जनक विरह की ओर ले जाकर अनन्त- अनन्त अमृत महासागर से भी अनन्त महा अनन्त, व्यापक आनन्द प्रदान करता रहता है।

भला, विरह में कहां पूर्णता ? नहीं, नहीं वह तो पूर्ण से भी पूर्ण अत्यन्त पूर्ण-परिपूर्णतम है, क्योंकि उसमें परिपूर्णतम प्रियतम ब्रह्म का निवास है। (वह,

"रसो वै सः" (तै० उ० २।७)

निर्गुण निर्विशेष रस स्वरूप ब्रह्म ही,

"भावग्राह्यमनीडाख्यम्" (श्वे० उ० ५।१४)

इस श्रुति वचनानुसार, भक्त की अनन्य भावना से भावित होकर हृदय का मन्थन करता हुआ, विरहाग्नि के रूप से सृष्ट होता है, और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते" (श्री०गी० १०।१०)

के सिद्धान्त से, अपने दूसरे सगुण सविशेष रूप से मिलता है, उसका स्वागत आलिंगन करता है। अहा ! कितना है माधुर्य ? कितना है आनन्द भक्तराज के परम पुनीत हृदय रूप तीर्थराज में, इस सगुण-निर्गुण ब्रह्म के सन्मेलन में ?) दूसरे,

"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" (ऋ०सं० ६।४७।१८)

के सिद्धान्त से, उस महामायावी, महाखिलाड़ी प्रेमास्पद का भी स्वभाव है विरह को बढ़ाने के लिये दर्शन दे-दे कर अपनी माया के पर्दे में छिप-छिप जाना। उसको नित्य नवीन, नित्य उज्ज्वल, नित्य सरस, नित्य मधुर, नित्य अमृत बनाना। कहां तक कहा जाय, प्रेमी, प्रेम एवं प्रेमास्पद-इन तीनों की लीला ही विलक्षण है। ये तीनों खेलते-खेलते, क्रीडा-विनोद करते--करते रास रचाते-रचाते थकते ही नहीं, क्योंकि ये तीनों एक-सी शक्ति रखने वाले अश्रान्त, अक्लान्त, नित्य, शाश्वत सनातन एक ही रूप हैं।

"स एकाकी न रेमे"
"एकोऽहं वहु स्याम" (श्रुति]

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार, ये रमण- खेल खेलने के लिये, क्रीडा-विनोद के लिये अनेक रूप धारण कर लेते हैं।

बोलिये, इस अविच्छिन्न-अखण्ड नित्य प्रेमार्णव के दिव्य रस को उड़लते वाले प्रेम भगवान् की जय ! एवं उनकी दिव्याति दिव्य प्रिया, प्रियतम की नित्य गुह्यतम अन्तरङ्ग रसमयी रासलीला की जय ॥

४–अविच्छिन्नम्:–

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" (श्री०गी० १५।७)

के सिद्धान्त से जीव–ईश्वर का अविच्छिन्न अखण्डित नित्य सनातन सम्बन्ध है। उसके सम्बन्ध में कभी किसी भी प्रकार का विच्छेद संभव ही नहीं हैं। परन्तु प्रेमाभाव के कारण विच्छिन्न सा प्रतीत होता है, तभी हम तन को, मन को, बुद्धि को, प्राण को, अहं को, उससे पृथक् मानकर दुःखी होते हैं और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इनको उसमें मिलाकर उससे एक करके मोक्ष की अपेक्षा करते हैं परन्तु प्रेमावस्था में उसके नित्य सम्बन्ध का बोध होते ही मोक्ष की भी अपेक्षा नहीं रह जाती। इसी लिये वह क्रीतदासवत् प्रेम परवश ब्रह्म निष्कामी प्रेमी भक्त के पीछे-पीछे सदैव घूमता रहता है, क्यों कि उसके लिये कहीं कोई स्थान ही नहीं है। अतः उस सदा समरस रहने वाले अविच्छिन्न अखण्ड प्रवल—प्रचण्ड प्रेम को तोड़ने का सामर्थ्य न तो मोक्ष में है और न परमात्मा में ही, क्योंकि वह तो उसका स्वरूप ही है।

५—*सूक्ष्मतरम्*:–

यह प्रेम का मार्ग अतिसूक्ष्म है, देहाभिमानी इस सूक्ष्मातिसूक्ष्म मार्ग पर चल ही नहीं सकते। उन्हें यह दिखाई ही नहीं देता' / क्यों कि

"*क्षुरस्यधारा निशिता दुरत्यया*
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥" [क०उ०१/३/४)

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार, यह पैनाये हुये छुरे की धार के समान अति दुर्गम है यह तो कटने-मरने वालों का मार्ग है। इस मार्ग पर मर-मर कर चला जाता है और चल-चल कर मरा जाता है। यह प्रेम

"*निहितं गुहायाम्*" (मु०उ० ३।१/७)

हृदय की अन्तिम गुहा में पंचकोशों-पंच महलों के भीतर प्रियतम-परमात्मा के साथ उन्हीं के रूप में

सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति" (मु०उ० ३।१।७)

सूक्ष्माति सूक्ष्मरूप में निवास करता है।

६-- *अनुभवरूपम्*:— यद भगवद्विरहजन्य प्रेम,

"*प्रकाश्यते क्वापि पात्रे*" (*नारद भक्ति सूत्र*)

किसी पुण्योपार्जित महाभाग्यवान् पात्र विशेष में ही भगवत्कृपा से प्रकाशित होता है, जिसमें अभेद होने पर भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"रसो वै सः" (तै०उ० २।७)

रस स्वरूप रसराज रासेश्वर की रसमयी मधुमयी अमृतमयी रास के लिये, क्रीड़ा विनोद के लिये भेद-सा हो जाया करता है।
क्यों कि,

"रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" (तै० उ० २।७)

इसी रसात्मक आनन्द को प्राप्त कर जीव आनन्दी परम सुखी होता है।

निर्गुण निर्विशेष वेदान्त के शुष्क ज्ञान में सगुण-सविशेष रसात्मक आनन्द स्वरूप दृष्टि के विषय बने हुये

"कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्" (श्री मद्भा० १।३।२८)

परिपूर्णतम ब्रह्म श्री कृष्णचन्द्र हैं। जो राशि-राशि सौन्दर्य, माधुर्य, आनन्द की रसराशि उड़ेलने वाले हैं। यहां पर निर्गुण-निर्विशेष एवं सगुण सविशेष की, द्वैत-अद्वैत मतवादों की चटनी पीसी जाती है। तभी तो दोनों मिलकर अति आनन्दप्रद, विशेष स्वादवर्धक हो जाते हैं।

वस्तुतः ज्ञानोत्तर काल में ही जब समस्त विश्व आत्मरूपेण भासित होने लगता है, तभी आत्मस्वरूप श्री कृष्णचन्द्र से तथा उनके नाम, गुण, लीला, धाम, कथा से आत्यन्तिक प्रेम होता है। तभी उनके सद्घनत्व, चिद्-घनत्व, आनन्दघनत्व, एवं रसघनत्व का वास्तविक बोध होता है, जो कि वाणी का विषय नहीं, मूकास्वादनवत् केवलानुभवगम्य केवलानुभवानन्दस्वरूप ही है।

—०—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में प्रेमाद्वैत की स्थिति का निरूपण किया जा रहा है।

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति ॥ ५५ ॥

प्रेम को प्राप्त कर प्रेमी प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही भाषण करता है एवं प्रेम का ही चिन्तन करता है।

१- *तदेवावलोकयति*:— जो परम प्रेमैकनिष्ठ प्रेमविह्वल सदा सर्वत्र दिव्यातिदिव्य प्रेमानन्द रसस्वरूप परमप्रेमपयोधि में निमग्न होने के कारण,

"*देहाभिमाने गलिते देहे कठिनता कुतः*"

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार, पांचभौतिक कठिन जड़ देह के अभिमान के गल जाने से मृदु-मधुर प्रेमस्वरूप हो गया है, वह प्रेमी प्रेम, प्रेमास्पद से एकता को प्राप्त

"*देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।*
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परामृतम्॥ † (स० र० उ० ३१)

के नियमानुसार, ब्रह्मज्ञानी की भांति सर्वत्र प्रेमस्वरूप प्रेमास्पद को ही देखता है। प्रेम का ही सिर से, पलकों से प्रेम से आलिङ्गन करता है। वह प्रेम की दृष्टि से प्रेम से प्रेमस्वरूप प्रियतम को निरखता। उसकी दृष्टि में प्रेम-पयोधि की बाढ़ आ जाती है, जिसमें निमग्न हो, प्रेमस्वरूप बन जाता। इसी लिये वह प्रयत्न करने पर भी प्रेम-प्रेमास्पद से भिन्न कुछ देख नहीं सकता।

---

† देहाभिमान के नष्ट हो जाने और परमात्म ज्ञान होने पर जहां जहां मन जाता है वहीं-वहीं पर अमृतत्व का अनुभव होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उस श्याम रूप श्रावण के अन्धे को सर्वत्र श्याम ही श्याम दिखाई देता, क्यों कि उसकी दृष्टि में श्याम समा गया है, अथवा,

"वासुदेवः सर्वम्" (श्री० गी० ७।१९)

की दृष्टि से सर्वत्र वह वासुदेव– श्याम ही समाया हुआ है, उससे भिन्न कुछ है ही नहीं। इसलिये भी प्रेम— श्याम से भिन्न कुछ नहीं देखता। क्या करे बड़ी विडम्बना है। यह एक महा असाध्य रोग है। जिसकी कोई चिकित्सा ही नहीं है, इसीलिये वह जहां कहीं भी दृष्टि डालता है उसे वहीं प्रकृति में, पुरुष में, जीव में, शिव में, आकाश में, वायु में, अग्नि में, जल में, पृथ्वी में, सूर्य में, चन्द्र में तारे में, दिक् में, विदिक में, सागर में, पहाड़ में, नदी में, नद में, पशु में, पक्षी में, कीट में, पतङ्ग में वृक्ष में, लतामें, गुल्म में, देव में, दानव में, यक्ष में, राक्षस में, किन्नर में, गन्धर्व में, पितर में, प्रेत में, पिशाच में, स्वर्ग में; नरक में, अपवर्ग में, सर्प मे, सिंह में, सूकर में, कूकर में, नर में, नारी में, बाल में, बृद्ध में, सर्वत्र जड़ चैतन्य में,

"सर्वं कृष्णमयं जगत्" (ब्र० वै० पु०)

के सिद्धान्त से, कृष्ण ही कृष्ण, श्याम ही श्याम, प्रेम ही प्रेम, आनन्द ही आनन्द, रस ही रस, अमृत ही अमृत दिखाई देता है।

यही श्रुति भगवती भी कहती हैं:—

"स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स
दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वम्।" (छा० उ० ७।२५।१)

वह प्रेम स्वरूप आत्मा ही नीचे, वही ऊपर, वही आगे, वही पीछे, वही बायें, वही दायें है। वही रग–रग में, रोम- रोम में, तन में, मन में, वदन में, बुद्धि में, चित्त में, अहं में, प्राण में, हाथ में, पैर में, आंख में, कान में, नाक में, मुख में सर्वत्र सर्वदा समाया हुआ है। उससे भिन्न कुछ है ही नहीं। यही प्रेम स्वरूप परम प्रियतम प्रेमास्पद भगवान् भी कहते हैं:—

"यो मां पश्यति सर्वत्र" (श्री० गी० ६।३०)

जो मुझ अनन्त- अनन्त पूर्णिमा के चन्द्रमा एवं अनन्त–अनन्त कामदेव के मन को मर्दन करने वाले, शोभा के धाम, कमनीय, निखिल सौन्दर्य माधुर्य- निधि सर्वस्व सौन्दर्यसार, परमानन्द चिन्मूर्ति, आनन्दवर्षी, अमृतमूर्ति, मधुरातिमधुर, परम मनोहर, प्रेममूर्ति, मुरलीधर, वनमाली, पीताम्बरधारी, नन्द

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नन्दन कृष्ण चन्द्र को साश्चर्य, सस्नेह, उत्कण्ठित होकर देखता है, मुझ पर मुग्ध, निछावर, बिकजाता है,

"तांस्तथैव भजाम्यहम्" (श्री०गी० ४।११]

की दृष्टि से, मैं भी उस प्रेमी पर मुग्ध निछावर होकर उसके साथ क्रीडा करता हूं, विनोद करता हूँ रास रचाता हूँ, क्यों कि इस अवस्था में मैं वह हो जाता हूँ और वह मैं हो जाता है। मैं व्यापक उसके परिच्छिन्न अहं के चीर को खींच कर व्यापक अपना रूप बनाकर, व्यापक प्रेम की क्रीडा करता हूँ, क्यों कि मुझ व्यापक के साथ परिच्छिन्न अहंयुक्त जीव क्रीडा नहीं कर सकता। तात्पर्य यह है कि वह प्रेमी इस परमानन्द प्रेममयी व्यापक दिव्य दृष्टि के द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड को प्रेम का दान देता। सचमुच, इसी अक्षय कोष से समस्त विश्व को प्रेम-आनन्द का वितरण हुआ है और सदा सर्वदा होता रहेगा। इसीलिये निर्गुण निर्विशेष ब्रह्म भी इस प्रेमी के अमृतोपम प्रेम का प्रसाद लेने के लिये सगुण सविशेष हो जाता है और उस प्रेम के सामने अपने ऐश्वर्य को भूल वैठता है। धन्य है प्रेम की प्रेममयी महा दिव्यदृष्टि को, जो अमृत को भी तिरस्कृत करने वाली है।

२—*तदैव शृणोति*:—वह प्रेम श्रवण तत्पर प्रेमाग्नि को बढ़ाने वाली; प्रेमास्पद से मिलाने वाली, प्रेममयी रसमयी; अमृतमयी, मधुमयी मुरली की मधुर ध्वनि ही सर्वत्र सुनता है। उसकी दृष्टि में समस्त विश्व श्यामरूप होने के कारण सबके समस्त शब्द, समस्त चेष्टायें श्यामरूप हो जाती हैं, वह अन्य रूपों एवं शब्दों से अन्धा तथा बहरा हो चुका है। जहां जो भी शब्द सुनाई देता, वह

"*ममवर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः*" ❀ (श्री०गी० ४।११)

के सिद्धान्त से, यही समझता है कि सब आनन्द स्वरूप मधुपति कृष्ण को प्राप्त करने के लिये ही उनकी मधुमयी लीला का सर्वप्रकार से सर्वत्र गान कर रहे हैं।

विश्व के समस्त जीव,

"*कैवल्यपतये नमः*"— (श्री मद्भा०)

❀ सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कैवल्य—मोक्षानन्द प्रदाता परात्पर ब्रह्म कृष्ण का ही एकस्वर से, एकमत से, सर्वदा सर्वप्रकार से भजन कर रहे हैं। पशुपक्षी, कीट, पतंग आदि भी उन्हीं लक्ष्यभूत प्रेमास्पद के प्रेम का प्रेम से गान कर रहे हैं, क्यों कि,

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
"इति मत्वा भजन्ते मां बुधाभावसमन्विताः॥ १ (श्री०गी० १०।८)
"कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ २ [श्री०गी० १०।९]

इस गीतोक्त भगवद्वचनानुसार, वे प्रेमस्वरूप प्रेमास्पद कृष्ण से सृष्ट हो प्रेम में प्रेम से, प्रेम के लिये प्रेमस्वरूप चेष्टायें कर रहे हैं। प्रेम से भिन्न न कोई किसी की चेष्टा है, न जीवन है; न लक्ष्य है, न गति है न मति है, क्यों कि समस्त ब्रह्माण्ड

"सूत्रे मणिगणाइव" [श्री०गी० ७।७)

प्रेमस्वरूप अखण्ड ब्रह्मसूत्र में प्रेम से प्रेम के लिये प्रेमास्पद के द्वारा पिराया गया है। यदि प्रेमरूपी ब्रह्मासूत्र न हो, तो समस्त ब्रह्माण्ड (विखर) नष्ट भ्रष्ट हो जाय। अतः सब प्रेमस्वरूप परमात्मा का ही सर्वत्र सर्वदा भजन कर रहे हैं, और उसी के लिये सब की सब चेष्टायें हो रही हैं, अन्य के लिये नहीं, क्यों कि प्रेमाभाव में सबकी सब चेष्टायें—साधनायें व्यर्थ हो जाती हैं। इसीलिये प्रेमानन्द में मग्न प्रेममूर्ति महापुरुष समस्त ब्रम्हाण्ड के साभूत तत्त्व प्रेम को ही सर्वत्र देखता, सुनता, समझता है। वह

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते" ३ (श्री०गी० ६।२८)
"दृश्यासंभव बोधेन रागद्वेषादितानवे।
रतिबलोदिता यासौ समधिराभधीयते॥" ४ [म०उ० ४।६२)

१—मैं सबकी उत्पत्ति का कारण हूँ और मुझसे ही समस्त जगत् चेष्टा करता है—इस प्रकार समझकर भाव समान्वित बुद्धिमान् भक्त मुझ परमेश्वर को ही निरन्तर भजते हैं।

२—गुण प्रभावसहित नित्य मेरा कथन करते हुये ही सन्तुष्ट होते हैं और मुझमें ही रमण करते हैं।

३—वह सुखपूवक पर ब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति रूप अनन्त सुखका अनुभव करता है।

४—दृश्य पदार्थों की सत्ता ही नहीं है—जब इस प्रकार का बोध होता है तथा रागद्वेषादि दोष क्षीण हो जाते हैं उस समय अभ्यासबल से जो एकाग्रवृत्ति उत्पन्न होती है उसे समाधि कहते हैं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमानन्द स्वरूप परम प्रेम सुधासिन्धु के निरतिशय अक्षय सुख, रति-प्रीति प्रेमसमाधि को प्राप्त कर दृश्यप्रपंच-संसार को भूल जाता। उसकी दृष्टि में

'सर्वं विष्णुमयं जगत्" (वि० पु० ५/१/२०)

की दृष्टि से, सचराचर जगत् चिन्मय, आनन्दमय, रसमय, प्रेममय प्रियतम विष्णु-कृष्ण का प्रियरूप होई जाता। सर्वत्र परमप्रेम परमानन्द का साम्राज्य छा जाता और वह सर्वत्र सवदा चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते सोते-जागते, सर्व अवस्थाओं में प्रेम भगवान् के अखण्डत्व-व्यापकत्व को देखता, सुनता, समझता हुआ, अखण्ड प्रेम साम्राज्य का प्रेमी सम्राट् हो जाता।

३—तदेव भाषयति:—वह ब्रह्मविद्वरिष्ठ प्रेमी इस परमानन्दमयी परमप्रेमावस्था में,

"प्राणोह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति
विजानन्विद्वान्भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावा-
नेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥ † (मु० उ० ३/१/४)

प्राणस्वरूप प्रेम से समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित जान अन्य आलापों से मुक्त हो, केवल आत्मस्वरूप प्रेमास्पद से प्रेम से प्रेम का प्रेमालाप करता, प्रेम से प्रेम की क्रीड़ा, प्रेम से प्रेम का विनोद करता। वह अलौकिक-दिव्य प्रेम सन्देश सुनाता। उसी में सदैव' तन्मय, तद्रूप, तल्लीन रहता। रसना से,

"रसो वै सः" (तै० उ० २।७)

रस स्वरूप रसराज रासेश्वर की रसमयी, मधुमयी, अमृतमयी, दिव्य रस का रसास्वादन करता। वह अमृत स्वरूप, आनन्दस्वरूप प्रेमस्वरूप प्रेमास्पद प्रियतम को सर्वत्र देखता हुआ,

"विलज्ज उद्गायति नृत्यते च" (श्री० मद्भा० ११।१४।२४)

विलज्ज हो, उद्गान करता हुआ, परमानन्द में मग्न हो, ताण्डव नृत्य करता। तथा,

"दृष्टिरेव सृष्टि:"

---

† यह जो सम्पूर्ण भूतों के रूप में भासमान हो रहा है। इसे जानकर विद्वान् अतिवादी नहीं होता। यह आत्मा में क्रीड़ा करने वाला और आत्मा में ही रमण करने वाला क्रियावान् पुरुष ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठतम है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसद्दष्टि-सृष्टि वाद की दृष्टि से, उसकीदृष्टि जहां-जहां पड़ती वहीं, अनन्त-अनन्त प्रेम की, अनन्त अनन्त अमृत की,अनन्त-अनन्त रस की, अनन्त-अनन्त सौन्दर्य की, अनन्त – अनन्त माधुर्य की, अनन्त–अनन्त समता की, अनन्त–अनन्त शान्ति की, अनन्त-अनन्त निस्पृहता की, अनन्त-अनन्त आनन्द की वृष्टि होती। वह प्रेमास्पद के परम प्रेमानन्द, अमृतानन्द, भूमानन्द, अखण्डानन्द का अखण्ड साम्राज्य प्राप्तकर उसी महोत्सव के निर्वचन, प्रवचन में तल्लीन रहता।

४- *तदैव चिन्तयति:*— वह कृष्ण गृहीत प्रेममना प्रेमी अनिर्वचनीय प्रेमामृत दिव्य रसार्णव में प्रेम से प्रेम का गोता लगाता, प्रेम से प्रेमास्पद प्रियतम का चिन्तन करता, तन्मय तल्लीन रहता। उसी में उसकी गति, मति निष्ठा, चेष्ठा होती।

"रसं ह्येवायं लब्धवाऽऽनन्दी भवति" (तै० उ० २।७)

इस श्रुति प्रसिद्ध सिद्धान्तानुसार उस रस-प्रेम-प्रेमामृत को पान करके महा महा आनन्दवान् हो जाता। तथा

"यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा (छा०उ०७/२४।१)

इस श्रुति आदेशानुसार, प्रेमानन्द–भूमानन्द, अक्षयानन्द अखण्डानन्द, पूर्णानन्द को सर्वत्र देखता सुनता, समझता हुआ, निहाल परमानन्द में मग्न रहता।

यह प्रेम की महारसमयी, महामधुमयी, महा अमृतमयी महा आनन्दमयी प्रेमवर्षिणी स्वसंवेद्य महान् अवस्था है, जिसके लिये आत्माराम जीवन्मुक्त मुनि भी सर्वदा लालायित रहते हैं, क्यों कि जीव को भगवान् आंख, कान आदि ज्ञानेद्रिय, कर्मेन्द्रिय, इसी लिये दिये हैं कि वे नेत्रसे भगवान्के आनन्द-वर्षी परमानन्द चिन्मूर्ति अमृत विग्रह का दर्शन करके, नाक से उनके शरीर के सौरभ को सूंघकर रसना से अमृत से भी मधुर काथामृत के पान एवं भगवान् के महा प्रसाद के ग्रहण से, कान से मधुरातिमधुर अमृत से भी मधुर मादक भगवदीय अमृतमयी दिव्य वाणी एवं मधुमयी मुरली के ध्वनि को सुनकर, हाथ से प्रभु के पाद पद्ममकरन्द की सेवा से तथा शरीर को निरतिशयानन्द प्रदान करने वाले निखिल–सौन्दर्य माधुय निधि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वस्वसौन्दर्यसार श्याम के आलिंगन से सुखी कृतकृत्य कर लें, क्यों कि इन्द्रियों का स्वभाव ही है किसी रूप विशेष को देखने, सुनने, समझने एवं आलिंगन करने का। इसी लिये निर्गुण निर्विशेष ब्रह्म में परिनिष्ठित जीवन्मुक्त होने पर भी यदि उनकी नेत्रादि इन्द्रियां सगुण-सविशेष ब्रह्म का दर्शन नहीं की, तो वे अकृतार्थ ही रहती हैं। इसीलिये अवधूत शिरोमणि श्री शुकदेव जी कहते हैं:—

"परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया।
गृहीतचेताराजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥ (श्री भद्भा० २।१।८)

राजर्षे। यद्यपि मैं निर्गुणब्रह्म में परिनिष्ठित हूं, परन्तु फिरभी उत्तमश्लोक-भगवान् की अमृतमयी लीला ने मुझे बलात् आकृष्ट करके भागवत रसामृत का अध्ययन कराया।

"प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिनिषेधतः।
नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः॥ (श्रीमद्भा० २।१।७)

राजन्। केवल मैं ही नहीं, प्रायः सभी विधि-निषेध से परे निर्गुण निर्विशेष ब्रह्ममें परिनिष्ठित होने पर भी हरिगुणगान में रमते रहते हैं, क्यों कि,

"इत्थम्भूतगुणो हरिः" (श्रीमद्भा० १।७।१०)

भगवान् के गुण ही ऐसे दिव्याति दिव्य मधुर मधुमय परमानन्दप्रद चिन्मय चित्तकर्षक हैं कि बलात् मुग्ध कर लेते हैं। गुणगान के लियेत्राध्य-परवश कर देते हैं।

—o—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में गौणी भक्ति के भेद बतलाये जा रहे हैं।

गौणी त्रिधा गुणभेदादार्त्तादिभेदाद्वा ॥ ५६ ॥

गौणी भक्ति सात्त्विक आदि गुणों के भेद से एवं आर्त आदि के भेद से तीन प्रकार की होती है ॥ ५६

गुणभेदात्:—परा प्रेमा भक्ति की साधनभूता गौणी भक्ति सात्त्विक, राजस एवं तामस गुणों के भेद से तीन प्रकार की बतलायी गई है। श्रीमद्भागवत में भगवान् कपिल ने भी यही कहा है:—

"कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम्।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥ (श्रीमद्भा० ३/२९/१०)

जो पुरुष कर्मपाक के उद्देश्य से परमात्मा को अर्पण करने के लिये पूजन कर्तव्य समझता है, वह भेदबुद्धि से मेरा पूजन करने वाला सात्त्विक है।

"विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेव वा।
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥" (श्रीमद्भा० ३/२९/९)

जो व्यक्ति विषय, यश, ऐश्वर्य के उद्देश्य से प्रतिमादि में भेद-बुद्धि, से मेरा पूजन करता है, वह राजस भक्त है।

"अभिसंधाय यो हिंसांदम्भं मात्सर्यमेव वा।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥" (श्रीमद्भा० ३/२९/८)

जो पुरुष हिंसा दम्भ या मात्सर्य की बुद्धि से मुझमें प्रेम करता है। वह भेदभाव वाला तामस भक्त है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तात्पर्य यह है कि भगवान् की भक्ति चाहे जैसे भी की जाय, लाभ ही लाभ है, क्योंकि इसमें सर्वाधिकार है। इसीलिये करुणावरुणालय भक्तवत्सल पतितपावन भगवान् अपने अत्यन्त पतित अधमातिअधम सन्तानों के भी उद्धारार्थ उद्घोष करते हुये कह रहे हैं कि:—

"अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥" (श्री० गी० ९।३०)

अतिशय दुराचारी-जिसने दुराचार-व्यभिचार का अतिक्रमण कर दिया है अर्थात् जो महाकामी, महाक्रोधी, महालोभी, महामोही, महाअहंकारी, महादम्भी, महातामसी, समस्त दुर्गुणों का भण्डार, अतिदुष्ट स्वभाव का, अति नीच जाति का, अति दुष्ट बुद्धि का है वह पुरुष भी मेरी भक्ति में चाहे जैसे भी प्रवृत्त हो जाय, उसका कल्याण ही कल्याण है क्योंकि तमोगुणी भक्ति कालान्तर में रजोगुणी हो जाती है और रजोगुणी भक्ति कालान्तर में सत्त्वगुणी हो जाती है और सत्त्वगुणी भक्ति कालान्तर में भगवत्कृपा से उत्तमोत्तमा साध्या परा-प्रेमा-निर्गुणा भक्ति के रूप में परिणत हो जाती है।

ऐसे ही धर्मराज ने कहा भी हैः—

"महिमानं हरेर्यस्तु किंचिच्छ्रुत्वापि यो नरः ।
तन्मयत्वेन सन्तुष्टः सा भक्तिरुत्तमोत्तमा ॥" (वृ० ना० पु० १५।१५०)

जो भगवान् की महिमा के श्रवण मात्र से ही परम सन्तुष्ट तन्मय हो जाता है, उसकी वह उत्तमोत्तमा भक्ति है। जिसको प्राप्त करके जीव कृत-कृत्य हो जाता है।

जैसे माता बच्चे की गन्दगी का ध्यान न देती हुई उसे अपनी गोदी में ले लेती है, वैसे ही कोटि मातृहितैषिणी भक्ति माता साधक के गुण-दोष, जाति-पांति का ध्यान न देती हुई अपनी गोदी में ले लेती हैं। दूसरे, जैसे अग्नि सदाचारी या दुराचारी का ध्यान न देते हुये समान रूप से स्पर्श करने वाले को जलाती है, वैसे ही भगवान् भी भक्त के सदाचार-दुराचार का ध्यान न रखते हुये समान रूप से गति प्रदान करते हैं। इसीलिये तो भगवान् ने जो गति प्रेमी भक्तों को दिया वही गति दन्तवक्त्र,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिशुपाल, पौण्ड्रक, पूतना, अघासुर, बकासुर, केशी और कालिय आदि को भी दिया। अतः

"सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रयः (त्रि० म० उ० ८।१)

समस्त उपायों को छोड़कर अकारण हितू, करुणावरुणालय, भक्त-वत्सल अनन्त-अनन्त पतितोद्धारक भगवान् की भक्ति अवश्यमेव करनी चाहिये चाहे, वह अपने स्वभावानुसार गुणानुसार, सात्त्विक हो, चाहे राजस हो, चाहे तामस हो, उससे लाभ ही लाभ है। इसीलिये भगवान्,

"न मे भक्तः प्रणश्यति" (श्री० गी० ९।३१)

अपने भक्त को नाश-पतन से बचाने, उसकी रक्षा के लिये प्रतिज्ञा करते हैं, क्योंकि सर्वोपद्रवशून्य इस भक्ति के राजपथ पर भगवान् स्वयं भक्त का हाथ पकड़ कर चलाते हैं। भक्त को स्वयं नहीं चलना पड़ता। भक्त के साधन-साध्य की जिम्मेदारी भगवान् पर होती है।

योग—ज्ञान में अपने बल पर चलना होता है। अतः उसमें अधिकतर पतन का भय रहता है। इसीलिए विवेकी पुरुष आंख मूँद कर इस महा प्रशस्त भक्तिमार्ग का ही एकमेव अनुसरण करते हैं।

आर्तभेदातः—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, पात्र भेद से भी भक्ति तीन प्रकार की होती है।

गीता में भगवान् ने स्वयं इसका विवेचन किया है:—

"चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ (श्री० गी० ७।१६)

ज्ञानी की निर्गुणी भक्ति की अपेक्षा गौणी त्रिधा भक्ति में आर्त, जिज्ञासु एवं अर्थार्थी—ये तीन हैं।

"उदारा सर्व एवैते" (श्री० गी० ७।१८)

ये सब महा सुकृती एवं उदार हैं। कालान्तर में भगवान् की कृपा दृष्टि से येभी पराभक्ति या ज्ञान को प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में गौणी भक्ति का क्रम बताया जा रहा है।

उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वपूर्वा श्रेयायभवति ॥५७॥

इस गौणी भक्ति में उत्तर-उत्तर क्रम की अपेक्षा पूर्व-पूर्व क्रम की भक्ति श्रेयस्कर होती है।

तामस भक्ति की अपेक्षा राजसभक्ति श्रेष्ठ है और राजस भक्ति से सात्त्विक भक्ति श्रेष्ठ है।

इसी प्रकार अर्थार्थी की अपेक्षा जिज्ञासु श्रेष्ठ है और जिज्ञासु से आर्त अति श्रेष्ठ है, क्योंकि अर्थार्थी अपना अर्थ चाहता है। अतः उससे जिज्ञासु, जो कि अर्थ की अपेक्षा से रहित परमात्मा के स्वरूप की जिज्ञासा रखता है, वह श्रेष्ठ है। परन्तु जिज्ञासु परमात्मा की जिज्ञासा—ज्ञान के बाद भक्ति की अपेक्षा नहीं रखता। अतः जिज्ञासु की अपेक्षा आर्त, जो केवल भगवान् के बल पर ही निर्भर है, वही एकमात्र जिसके आश्रय हैं, उन्हीं को जो अपना जीवनाधार, प्राणाधार, जीवन सर्वस्व समझकर गजेन्द्रवत्, द्रौपदीवत् रक्षार्थ करुण-क्रन्दन, चीत्कार—आर्तनाद करता है, वह श्रेष्ठ है, क्योंकि भगवान् के विरहजन्य करुण-क्रन्दन के बिना अन्तःकरण द्रवित—शुद्ध नहीं होता और बिना अन्तःकरण की शुद्धि के परा—प्रेमाभक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्ति की सुलभता का प्रतिपादन किया जा रहा है।

अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ ॥ ५८ ॥

अन्य समस्त साधनों की अपेक्षा भक्ति सुलभ है।

"सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा" (नारद भक्ति सूत्र)

इस पूर्व कथित सूत्रानुसार, भक्ति, इन कष्टसाध्य भगवदालम्बन-शून्य विघ्नबहुल एवं अहंप्रद कर्म, धर्म, ज्ञान, योगादि अन्य समस्त साधनों से, कष्टरहित, भगवदालम्बनयुक्त, निरुपद्रव एवं दैन्यभाव होने के कारण अति सुलभ है।

जिसमें निम्न हेतु प्रदर्शित किये जा रहे हैं।

१-भक्ति माता भक्तों—अपने बच्चों के गुण-दोष, जाति, पांति, शुद्धि-अशुद्धि, बुद्धि, विद्या, धन, बल आदि का ध्यान न देती हुई सादर सबको अपनी परमानन्दमयी अमृतवर्षिणी गोदी में बैठा लेती हैं। इसलिये भक्ति अति सुलभ है।

२-इसमें, "अपि चेत्सुदुराचारो" [श्री० गी० ९/३०]

इस भगवदादेशानुसार, अतिशय दुराचारी महान्पतित से भी पतित का भी अधिकार है। इसलिये भी भक्ति सुलभ है।

३-इसमें,

"नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता॥
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम्॥ (श्रीमद्भा० ७/७/५१-५२)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्विजत्व, देवत्व, ऋषित्व, आचार, बहुज्ञता, दान, तप, यज्ञ, शौच, व्रत, विवेक-वैराग्यादि की अपेक्षा नहीं है। ये तो केवल अहंकार के हेतु विडम्बनामात्र हैं। भगवान् तो केवल सरल स्वभाव से की गई विशुद्ध-भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। क्योंकि,

"*भक्तिप्रियोमाधव.*"

उनको तो केवल-भक्ति ही प्रिय है। अन्य कोई साधन एवं वस्तु नहीं। इसलिये भी भक्ति सुलभ है।

४-इसमें,

'*सर्वेषामधिकारिणामनधिकारिणां भक्तियोग एवं प्रशयते*' ❀ (त्रि० म० उ० ८/१)

स्त्री, शूद्र, अन्त्यजादि सबका अधिकार है। सबके लिये सर्वदा इसका द्वार खुला हुआ है। इसीलिये भी भक्ति सुलभ है।

५- "*भक्तियोगो निरुपद्रवः*" "*भक्तवत्सलः स्वयमेव सर्वेभ्यो मोक्षविघ्नेभ्यो भक्तिनिष्ठान्सर्वान्परिपालयति।*" (त्रि० म० उ० ८/१)

भक्ति का मार्ग निरुपद्रव है क्योंकि भक्तवत्सल भगवान् स्वयं भक्त की समस्त विघ्नों से रक्षा करते हुये भक्तिनिष्ठा का परिपालन करते रहते हैं और सर्वदा भक्तों का हाथ पकड़े रहते हैं, इसीलिये भी भक्ति अत्यन्त सुलभ है।

६-यही "*कारणेन विना कार्यं नोदेति*" इस श्रुति सिद्धान्तानुसार एक मात्र ज्ञान-विज्ञान एवं समस्त सुखों की जननी-मूल कारण है। इसीलिये भी श्रेष्ठ है।

७-जीवन्मुक्त भी इस दिव्याति दिव्य महामधुमयी अमृतमयी भक्ति के लिये लालायित रहते हैं इसीलिये भी श्रेष्ठ है।

८-यह भक्ति सर्वत्र सर्वदा पवित्र-अपवित्र सर्व अवस्थाओं में की जा सकती है। इसलिये भी सुलभ है।

९-इसमें,

"*आदावेतत्प्रतिज्ञातुं न मे भक्तः प्रणश्यति*" (अद्भु० रा० उ० १३।१२)

❀ सभी अधिकारी-अनधिकारियों के लिये भक्तियोग ही श्रेष्ठ कहा गया है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"अहं यान्संहरिष्यामि कस्तेषामपिरक्षिता ।
यानहं पालयिष्यामि तेषां हन्ता न कोपिं वा ॥" (ब्र० वै० पु० कृ० पूर्वा० ४।६।४५)
"अहं भक्तांतिके शश्वत्तेषां रक्षण हेतवे" (ब्र० वै० पु० कृ० पूर्वा० ४/५।४७)
"न कोऽपि रक्षि ।। तेषां मयि हन्तुर्युपस्थिते', (ब्र० वै० पु० कृ० पूर्व ४।६।६

भगवान् अपनी इस पूर्व प्रतिज्ञानुसार, भक्त की सदैव रक्षा के लिये तत्पर रहते हैं। विश्व का कोई भी महान् से महान् देव, दानव, सम्राट् आदि भक्त का अनिष्ट करने में समर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि भक्त का विरोधी भगवान् का विरोधी है और भगवान् के विरोध करने पर विश्व की ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है, जो उसकी रक्षा कर सके। इसमें भगवान् का सर्वोपरि सर्वदा पूर्ण सहारा—बल बना रहता है। इसलिये भी भक्ति अति सुलभ है।

१०– भक्ति का साधन भगवन्नाम सर्व आयास- प्रयास से रहित अति सुगम है। इसलिये भी भक्ति सुलभ है।

११- भक्ति के लक्ष्यभूत तत्त्व भक्तवत्सल भगवान हैं, जो कि आकरणहितू भक्तवत्सल, भक्त परवश हैं। वे भक्तों के दोषों का ध्यान नहीं देते। उनकी सदा सर्वदा भक्तों पर अमृत मयी कृपादृष्टि की वृष्टि होती रहती है। वेअपनी अनवरत अमृत वर्षी दृष्टि से भक्तों को सींचते रहते, पुष्ट करते रहते हैं, अमृत दान, जीवन दान देते रहते हैं। नई–नई स्फूर्ति, नया-नया उत्साह भरते रहते हैं, अपनी ओर आकृष्ट करते रहते हैं, तन्मय-तद्रूप करते रहते हैं। इसलिये भी भक्ति अत्यन्त सुलभ है।

१२- भक्ति में मूल्यवान किसी वस्तु एवं मूल्य-धन की कोई अपेक्षा नहीं है, क्यों कि भक्तवत्सल भगवान् तो

"तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा ।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ॥"

केवल तुलसीदल एवं चुल्लूमात्र जल से भक्तों के हाथ विक जाते हैं। इसलिये भी भक्ति की महान् महान् सुलभता है।

१३– इसमें,

"दैन्यप्रियत्वाच्च" (नारद भक्ति सूत्र २७)

इस सूत्रानुसार, दैन्य भाव भगवान् को प्रिय होने के कारण अहंकार का सर्वथा भय नहीं रहता। इसलिये भी भक्ति सुगम है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१४- इसमें,

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैवभजाम्यहम्" (श्री० गी० ४।११

इस गीतोक्त अमृतमयी महावाणी के द्वारा, भगवान् स्वयं अपने अत्यन्त प्रिय भक्त के प्रति अपने हृदय का दिव्यभाव उड़ेल—व्यक्त कर रहे हैं।

जो हमको जैसे भजता है हम उसको वैसे ही भजते हैं। अहा, कितना है माधुर्य, कितना है आकर्षण, कितना है ओज, कितना है तेज भगवान की इस दिव्यातिदिव्य महावाणी में एवं भगवान् की भक्तवत्सलता, भक्त परवशता में।

जो भगवान् को अपने धन-धाम, स्त्री, पुत्रादि को छोड़कर परम व्याकुल होकर खोजता है, भगवान भी अपना धन, धाम, स्त्री–पुत्रादि छोड़कर परम व्याकुल होकर उसे खोजते फिरते हैं। जो भगवान् के लिये अपना एक कदम उठाता है भगवान भी अपना विश्वव्यापी एक कदम उठाकर उसके पास पहुँच जाते हैं। जो भगवान् के नाम का जप जिस भाव से जिस निष्ठा से करता है भगवान भी भक्त के नाम का जप उसी भाव से उसी निष्ठा से करते हैं। जो भगवान के रूप के ध्यान में तन्मय रहता है, भगवान् भी भीष्मपितामह की भांति उस भक्त के रूप के ध्यान में तन्मय रहते हैं। जो भगवान् के लिये बेचैन रहता है भगवान् भी भक्त के लिये रोते-बेचैन रहते हैं। भक्त भगवान् को सर्वशक्तिमान, सर्वेश्वर समझकर भजता है तो भगवान् भी भक्त को अपना ईश्वर, शासक समझ कर भजते हैं। इस प्रकार इतनी महत्ता, इतना माधुर्य, इतनी सरसता विश्व के किसी भी साधन में,

"न भूतो न भविष्यति"

न हुई, न है, न भविष्य में कभी होगी ही। इसीलिये भी भक्ति महान् सुलभ है।

अत: विवेकियों को चाहिये कि वे,

"सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रय" (त्रि० म० उ० ८।१)

अन्य समस्त कष्टप्रद, विघ्नबहुल साधनों को छोड़कर सर्वश्रेष्ठ, सर्वसुलभ सर्वोपद्रवशून्य भक्ति का एकमेव आश्रय ग्रहण करके कृतकृत्य हो जांय।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्ति के स्वयं प्रमाणत्व का प्रतिपादन कर रहे हैं।

प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् स्वयं प्रमाणत्वात् ॥ ५९ ॥

अन्य प्रमाणों की अपेक्षा न होने से तथा भक्ति स्वयं प्रमाण होने के कारण अन्य समस्त साधनों की अपेक्षा सुलभ एवं श्रेष्ठ है।

भक्ति मूकास्वादनवत् अनुभवगम्य, स्वसंवेद्य, वाणी का विषय न होने के कारण स्वयं प्रमाण है। इसमें श्रुति-स्मृति, शास्त्रों एवं किसी महापुरुष के अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि यह सर्वतंत्र स्वतंत्र है।

इसके वश में तो,

"भक्तिवशः पुरुषः (श्रुति)

अमित वेद-वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्म भी है। इसमें तो धार्मिकों की भांति मर कर स्वर्ग में जाकर कालान्तर में सुख नहीं भोगना है और न योग की समाधि-ब्रह्म लोक की प्राप्ति पर सुखी होना है और न तत्त्वज्ञान होने पर ही कैवल्यसुख भोगना है, अपितु भक्ति का तो भगवन्नाम रूप महारसायन का रसना से सम्बन्ध होते ही रस मिलने लगता है। रोम-रोम आनन्द से खिल उठता, चित्त में भगवान् के संस्पर्शज निरतिशय सुख की स्वसंवेद्य अनुभूति होने लगती। इसीलिये भक्ति अन्य प्रमाणों की अपेक्षा से रहित स्वयं प्रमाण अर्थात् प्रमेयस्वरूप अति सुलभ है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्ति की विशेषता बताई जा रही है।

शान्तिरूपात् परमानन्दरूपाच्च ॥६०॥

भक्ति शान्तिरूपा एवं परमानन्दरूपा होने के कारण भी अन्य साधनों की अपेक्षा सुलभ एवं श्रेष्ठ है।

शान्तिरूपात् :— भक्ति महारानी तो सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्णचन्द्र की अराध्या, परमान्तरङ्गा आह्लादिनी शक्तिसारसर्वस्व श्रीराधारानी ही हैं, जिनके,

" भक्तिवशः पुरुषः ,, (श्रुति)

सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य, सौकुमार्य, सौरभ्य, सौरस्य पर मुग्ध हो स्वयं भगवान् भी उनके वश में रहते हैं। अतः जिसके वश में शान्ति एवं परमानन्द के महासागर स्वरूप स्वयं भगवान् ही हैं उसकी शान्ति एवं परमानन्द रूपता के विषय में कहना ही क्या ? इसीलिये जिसके हृदय में भगवान् की नित्य सहचरी भक्ति महादेवी का आगमन हो जाता है भगवान् भी उनका रस्वादन करने लिये वहां उपस्थित होकर परतन्त्र होने को बाध्य हो जाते हैं।

यही भगवान् की स्वयं प्रतिज्ञा भी है।

"अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज" (श्री मद्भा० ९/४/६३)

"भक्ताधीनो दिवानिशम्" (ब्र० वै० पु०)

मैं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होने पर भी दिनरात- सर्वदा भक्त के वश में रहता हूं। यह भक्ति महादेवी का सामर्थ्य है कि वे भक्तों को सर्वतन्त्रस्वतन्त्र बनाकर सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर प्रभु को परतन्त्र बना देती हैं। भक्त के वश में कर हैं और भक्त मनमाना उन्हें दास, पुत्र, सखा आदि बना कर भृत्यवत् नचाता है। इसीलिये गोपियां ताली पर कृष्ण को नचाती रहीं। सच कहिये तो भक्ति शान्तस्वरूप भगवान् का स्वरूप ही है।

इसीलिये शान्तिरूपा है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमानन्दरूपात्:— भक्ति परमानन्दरूपा है। इसलिये कि,

"भगवान् परमानन्दस्वरूपः स्वयमेव हि।
मनोगतस्तदाकार रसतामेति पुष्कलम् † (भक्ति रसायन)

वह परमानन्दस्वरूप भगवान् को अपने अंक में सदा सर्वदा लिये रहती है। क्योंकि

"एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति,,* (बृ० उ० ४।३।३२)

जिस पूर्णानन्द परमानन्द परमात्मा के एक बिन्दु आनन्दमात्र से समस्त ब्रह्माण्ड सुखी हो रहा हैं, भला, वह पूर्णानन्द-परमानन्द ही जिस भक्ति में निवास कर रहा है उसके आनन्द की सीमा ही क्या की जा सकती हैं?
अतः भक्ति परमानन्दस्वरूपा है अर्थात् रसस्वरूप अमृतस्वरूप परमानन्दस्वरूप भगवान् का स्वरूप ही है।

---

† स्वयं परमानन्दस्वरूप भगवान ही मनोगत तदाकार वृत्ति से विशेष रसरूपता को प्राप्त हो जाते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमदर्शिनी

इस सूत्र में भक्त को लोक-चिन्ता से रहित होने का आदेश दिया जा रहा है।

लोकहानौचिन्ता न कार्या-निवेदितात्म लोकवेदत्वात् ॥ ६१ ॥

भक्त को लोक हानि की चिन्ता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उसने स्वयं अपने आप को एवं लौकिक-वैदिक समस्त कर्मों को भगवान् को निवेदन-समर्पण कर दिया है ॥ ६१ ॥

भक्त को लोक हानि-लाभ की चिन्ता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उसने अपने सहित अपने लौकिक-वैदिक समस्त कर्मों को भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया है, अर्थात वह सर्वतोभावेन भगवान् का हो गया है। अतः वह अब अपने को खोकर अस्तित्वशून्य हो गया है अब उसका अपने में कुछ है ही नहीं, वह है ही नहीं। अतः अब उसके पास न स्वयं की कोई बुद्धि है, न मन है, न अहंकार आदि ही कोई वस्तु है, जिसको लेकर वह लोक हानि की चिन्ता करे, क्यों कि भक्त,

"*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*" (श्री०गी० १८।६६)

इस भगवद्वचनानुसार, समस्त लौकिक-वैदिक कर्मों एवं धर्मों को त्याग करके भगवान् के शरणापन्न हो चुका है।

अतः अब उसे पतिव्रतावत् परमपति परमात्मा के अनन्य चिन्तन की ही अपेक्षा है। अन्य कोई कार्य उसके लिये शेष नहीं है। वह तो अहंकारशून्य भगवान् के हाथ की कठपुतली हो गया है। भगवान् जैसे चाहें वैसे उसको नचावें, जैसे चाहें वैसे रखें। उसी में वह परम सुखी एवं सन्तुष्ट हैं। इसी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिए भगवान् अपने भक्तों को संसार के दुखप्रद चिन्ता को छोड़कर अपने में निवास करने के लिये आदेश दे रहे हैं।

'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः। (श्री० गी० १२।८)

मुझमें मन, बुद्धि को समर्पित करके, संसार के दावानल से मुक्त हो, मुझ सुख सागर स्वरूप परमात्मा में निवास- विश्राम कर।

क्यों कि,

"मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै॥ (श्री मद्भा० ११।२९।३४)

जब जीव समस्त लौकिक-वैदिक कर्मों को छोड़कर मुझे आत्मनिवेदन कर देता है अर्थात् हमारा हो जाता है, तब मैं उस प्रिय भक्त को अमृतत्व प्रदान करके अपना स्वरूप बना लेता हूँ। इस प्रकार भक्तभगवान् के अनन्य शरणापन्न होने के कारण लोक-हानि की चिन्ता नहीं कर सकता, क्योंकि अब वह स्वयं ही नहीं है फिर ऐसी अवस्था में वह कर ही क्या सकता है।

श्रुति भी यही कहती है कि:—

"लोकसंग्रहयुक्तानि नैव कुर्वन्न कारयेत्। § (ना० प० उ० ५/२१)
"संत्यजेत्सर्वकर्माणि लोकाचारं च सर्वशः।" * (ना०प०उ० ६।३५)

परन्तु यदि दुर्भाग्यवश लोक-हानि की चिन्ता करता है तो अभी उसने आत्मनिवेदन किया ही नहीं, वंचक है, भ्रान्त है। अभी उसका निश्चय ठीक नहीं है और अभी वह मिथ्या लोक, वेद से उपरत नहीं हुआ है।

---

§ लोक संग्रह से युक्त जो भी कर्म हैं उनको न तो स्वयं करे और न दूसरों से करावे।

* भक्त सम्पूर्ण कर्मों एवं लोकाचार को सर्व प्रकार से त्याग दे।

—०—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्ति की निश्चित स्थिति की प्राप्ति के लिये लोक व्यवहार एवं निष्काम साधनों की आवश्यकता का प्रतिपादन कर रहे हैं।

न तदसिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः किन्तु फलत्यागस्तत् साधनं च कार्यमेव ॥ ६२ ॥

भक्ति की सिद्धि के होने तक लोक-व्यवहार त्याज्य नहीं है, किन्तु कर्मफल का त्याग करते हुए निष्कामभाव से उस भक्ति का साधन करना चाहिये ॥ ६२ ॥

जब तक भक्ति की सिद्धि न हो जाय, तब तक लौकिक व्यवहार नहीं त्यागना चाहिये, अपितु कर्मफल के त्याग के द्वारा भगवान् पर पूर्ण निर्भर हो, संसार से निश्चिंत होकर निष्काम बुद्धि से भक्ति के साधनभूत भगवत्प्रीत्यर्थ लौकिक-वैदिक समस्त कर्मों-धर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये अर्थात् भक्त को अपने धर्मपालन पर कटिबद्ध रहना चाहिये, क्योंकि,

"धर्मो रक्षति रक्षितः"

जो धर्म की प्राणप्रण से रक्षा करता है, धर्म भी उसकी वैसी ही रक्षा करता है और जब धर्म उसकी रक्षा में तत्पर हो जाता है, तो

"धर्मसंस्थापनार्थाय" [श्री० गी० ४/८]

की प्रतिज्ञा के अनुसार, भगवान् भी उसकी रक्षा के लिये तत्पर कटिबद्ध हो जाते हैं। फिर तो भक्ति को प्राप्तकर निर्भय, निश्चिंत, सुखी, कृतकृत्य हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में साधक को साधना के विपरीत वस्तुओं को त्यागने का निर्देश किया जा रहा है।

स्त्रीधननास्तिक वैरीचरित्रं न श्रवणीयम् ॥६३॥

साधक को स्त्री, धन, नास्तिक एवं वैरी का चरित्र नहीं सुनना चाहिए। स्त्री:— क्योंकि स्त्री के चरित्र के सुनने में रुचि होने से एवं उसके चिन्तन से,

"ध्यायतो विषयान्पुसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः ॥ (श्री० गी० २/६२)

इस भगवद्वचनानुसार, उसके चिन्तन से संग, संग से काम की सृष्टि होती है और सर्वानर्थस्वरूप काम की प्रवृत्ति हो जाने पर साधक श्रेय साधन से सर्वथा भ्रष्ट हो जाता है। तथा वह विषयासक्त होने के कारण परमात्मचिन्तन के सर्वथा अयोग्य हो जाता है। इस प्रकार वह बेचारा दीन-हीन काम-भोग के परायण होकर महान् क्लेश एवं बन्धन को प्राप्त होता है। स्वयं भगवान् भी परम भक्त उद्धव को उपदेश देते हुये यही कह रहे हैं:—

"न तथास्य भवेत् क्लेशो बन्धश्चान्य प्रसङ्गतः।
योषित्सङ्गात् यथा पुन्सो यथा तत्सङ्गिसङ्गनः॥" [श्रीमद्भा० ११/१४/३०]

स्त्री एवं स्त्री संगियों-विषयियों के संग से जैसे क्लेश एवं बन्धन की प्राप्ति होती है वैसे किसी अन्य साधन से नहीं होती।

नन्द के प्रति भी भगवान् का यही आदेश है:—

"उरो मुखं स्तनं स्त्रीणां हास्यमेव च।
विनाशवीजं रूपं च विपदां कारणं सदा॥" (ब्र० वै० पु० कृ० ४/७५।२१)

स्त्री का उरु, मुख, स्तन, कटाक्ष एवं हास्य आदि विनाश का वीज एवं विपत्ति का मूल कारण है। शिव पुराण में भी यही कहा है:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"कुसङ्गः वहवो लोके स्त्रीसङ्गस्तत्र चाधिकः।
उद्धरेत्सकलैर्वन्धैर्न स्त्रीसङ्गात् प्रमुच्यते ॥
लोहदारुमयैः पाशैर्दृढं बद्धोऽपि मुच्यते।
स्त्रादिपाश सुसम्वद्धो मुच्येत न कदाचन ॥" [शि० पु० रु० सं० पा० ख०]
(२४/६१,६२)

संसार में समस्त कुसङ्गों में स्त्रीसंग सबसे अधिक भयंकर है, क्योंकि अन्य समस्त बन्धनों से उद्धार संभव है परन्तु स्त्री संग से मुक्त होना संभव नहीं।। यहां तक कि लोहे एवं काष्ठ के दृढ़पाश से बद्ध पुरुष तो मुक्त हो सकता है, परन्तु स्त्री रूपी महापाश से बद्ध पुरुष कदापि मुक्त नहीं हो सकता।

राज राजेश्वर सम्राट् पुरुरवा ने भी अपना यही अनुभव कहा है:—

"किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा।
किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥" (श्री० मद्भा० ११।२६।१२)

तथा अहिल्या का भी इन्द्र के प्रति यही कथन है:—

"किं तज्जपेन तपसा मौनेन व्रतेन च।
सुरार्चनेन तीर्थेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥" (ब्र० वै० पु० ४।६१।३५)

जिसके मन को सर्व विनाशिनी स्त्री ने अपहृत कर लिया है उसकी विद्या, उसका तप, त्याग, श्रवण, एकान्तसेवन, मौन, जप व्रत, सुरार्चन, एवं तीर्थसेवन आदि सब व्यर्थ है। भगवान् वेद व्यास ने भी यही कहा है:—

"तावद्धन्त मनः स्थैर्यं श्रुतं सत्यमनाकुलम्।
यावन्मत्ताङ्गनाग्रे न वागुरेव सुचेतसाम् ॥
तावत्तपोभिर्वृद्धिस्तु तावद्दानं दया दमः।
तावत्स्वाध्याय वृत्तं च तावच्छौचं धृतं व्रतम् ॥
यावत्त्रस्त मृगी दृष्टिं चपलां न विलोकयेत्।
तावन्माता पिता तावद् भ्राता तावत्सुहृज्जनः ॥
तावल्लज्जा भयं तावत्स्वाचारस्तावदेव हि।
ज्ञानमौदार्यमैश्वर्यं तावदेव हि भासते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यावन्मत्ताङ्गनापाशैः पातितो नैव वन्धनैः ॥" (स्क० पु० ब्र० ख० ३।८४-८७)

तब तक ही बुद्धिमानों के मन की स्थिरता, श्रवण, सत्य एवं समाधान है, जब तक महाबन्धनरूपा मत्ताङ्गना समाने नहीं है। तब तक ही तप की वृद्धि, दान, दया, दम, स्वाध्याय, शील, शौच व्रत है जब तक कि त्रस्त मृगलोचना चपला का दर्शन नहीं होता। तब तक ही माता, पिता, भ्राता सुहृज्जन, लज्जा, भय, स्वाचार, ज्ञान, सौदार्य, ऐश्वर्य दिखाई देता है, जब तक मत्ताङ्गना के बन्धन रूप पाश से पतित-वेसुध नहीं हुआ। सचमुच, स्त्री का स्वरूप ही ऐसा है। इसीलिये परमहंस शिरोमणि श्री शुकदेव जी ने रम्भा से कहा है:—

"समाधिहन्त्री जगमोहयित्री
धर्मे कुमन्त्री कपटस्यतन्त्री ॥
सत्कर्म हन्त्री कलिता च येन
वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ॥
अमेध्यपूयक्रिमि जन्तु संकुले
स्वभाव दुर्गन्धिनि शौचवर्जिते।
कलेवरे मूत्र पुरीष भाजने
रमन्तिमूढा विरमन्ति पण्डिताः ॥
यत्र जाता रतास्तत्र
ये पीतास्ते च मर्दिता।
अहो लोकस्य मूर्खत्वं
वैराग्यं नैव जायते ॥

यह समाधि का हनन करने वाली, मनुष्यों को मोहित करने वाली, धर्म की कुमंत्री, कपट की तन्त्री तथा सत्कर्म का हनन करने वाली है। अपवित्र पीप कृमि, जन्तु से संकुलित स्वभाव से ही दुर्गन्धित, शौचरहित, मलमूत्र के भाण्डरूपी स्त्री कलेवर में मूढ़ पुरुष ही रमण करते हैं, पण्डित नहीं। महा आश्चर्य है कि जीव जिस योनि से उत्पन्न होता है उसी में रमण करता एवं जिस स्तन को पीता है उसी का मर्दन करता है। यह लोक की निर्लज्जा एवं मूढ़ता तो देखो कि ऐसा घृणित पशुवत् व्यवहार करने पर भी वैराग्य को नहीं प्राप्त होता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ति के प्रधानाचार्य देवर्षिनारद ने भी यही कहा है:—

"दारग्रहो हि दुःखाय केवलं न सुखाय च।
तपःस्वर्गभक्तिमुक्तिकर्मणां व्यवधायकः॥ [ब्र०वै० पु० १।३।२०]

स्त्री का ग्रहण केवल दुःख के लिये ही होता है सुख के लिये नहीं, क्योंकि वह सुख के मूल तप, स्वर्ग, भक्ति मुक्ति एवं सत्कर्मों की व्यवधायिका है। महा तपस्वी श्री विश्वामित्र जी ने भी मेनका के प्रति यही कहा है:—

"स्त्रियोमूलमनर्थानां सर्वेषां प्राणिनां भुवि।
तस्मात्याज्याः सुदूरेण ताः स्वर्गस्य निरोधकाः॥ [स्क०पु०ना०ख० ४४।५]

भूमण्डल पर स्त्री ही समस्त प्राणियों के सर्वानर्थ का मूल कारण है। अतः इस स्वर्गापवर्ग की निरोधिका स्त्री का अत्यन्त दूर से ही त्याग कर देना चाहिये। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम का भी यही कथन है:—

"पुंसां मन्त्र इवाऽहीनां बन्धनं वामलोचना" [यो० वा० १।२१।२१]

जैसे सर्पो के लिये मन्त्र बन्धन कारक है, वैसे ही पुरुषों के लिये स्त्री बन्धन करने वाली है। सांख्याचार्य भगवान् कपिल ने भी अपनी माता देवहूति के प्रति यही कहा है:—

"बलं मे पश्य मायाया स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम्।
या करोति पदाक्रान्तान् भ्रूविजृम्भेण केवलम्॥
सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्यपारं परमारुरुक्षुः।" (श्रीमद्भा० ३।३१।३८,३९)

मेरी स्त्री रूपिणी माया का बल तो देखो, जो कि केवल अपने भ्रूविलास मात्र से बड़े-बड़े दिग्विजयी शूर-वीरों को भी पद से आक्रान्त कर देती है। इस लिये योग के पार जाने वाले श्रेष्ठ जिज्ञासुओं को महामोह प्रदान करने वाली प्रमदा-स्त्री का कदापि संग नहीं करना चाहिये।

ऐसे ही अन्यत्र भी कहा है कि:—

"जिताहारोऽथवा वृद्धो विरक्तो व्याधितोऽपि वा।
यातर्न गच्छेत्तं देशं यत्र स्यात्प्रतिमा स्त्रियः॥ (अद्वैतामृतवर्षिणी)
"आत्मनः क्षेममन्विच्छंश्चतुर्थाश्रममागतः।
न कुर्याद्योषितां सङ्गं मनसा वपुषेन्द्रियैः॥ [आत्मपु०]
"श्रेयस्कामस्ततो नित्यं चतुर्थाश्रममागतः।
कामिनां कामिनीनां च सङ्गं सर्वात्मना त्यजेत्॥ (आत्म पु०)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यति जिताहारी, वृद्ध, विरक्त, व्याधिग्रस्त होने पर भी उस स्थान पर न जाय जहां स्त्री की प्रतिभा है। आत्मा का कल्याण चाहने वाले चतुर्थाश्रमी को (संन्यासी को) स्त्री का मन, शरीर और इन्द्रियों से संग नहीं करना चाहिये। श्रेयकामी चतुर्थाश्रमी को सर्वदा सर्व प्रकार से कामी और कामिनियों का संग छोड़ देना चाहिये।

भगवान् दत्तात्रेय ने भी स्त्री की हेयता का निरूपण करते हुये यही कहा है:—

"केनापि निर्मिता नारी बंधनं सर्वदेहिनाम्।"
"खण्डितं हि जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्।"
"तत्र मुग्धा रमन्ते च सदेवासुर मानवाः।"
ते यान्ति नरकंघोरं सत्यमेव न संशयः॥"
"गौडी पैष्ठी तथा माध्वी विज्ञेया त्रिविधासुरा।
चतुर्थीं स्त्री सुरा ज्ञेया ययेदं मोहितं जगत्" ॥ [अव०गी०]

आश्चर्य है कि समस्त देहधारियों की बन्धन रूपा स्त्री को किसने बनाया? जिसने देव, असुर एवं मानव सहित समस्त जगत् खण्डित किया है। सचमुच ही जो देव, असुर एवं मानव ऐसी घृणित स्त्री में रमण करते हैं वे निश्चय ही घोर नरक को प्राप्त करते हैं। गौडी, पैष्ठी तथा माध्वी—तीन प्रकार की सुरा लोक में प्रसिद्ध है परन्तु चतुर्थी महाप्रसिद्ध स्त्री रूपी महासुरा है जिसने समस्त विश्व को मोहित-मुग्ध कर रखा है। श्रुति भगवती भी यही कहती हैं:—

"माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा च माद्यति।
तस्माद्दृष्टि विषां नारीं दूरतः परिवर्जयेत्॥ [ना०प०उ०६/३१)

मदिरा के पीने से नशा होता है परन्तु स्त्री को देखने मात्र से ही नशा हो जाता है। इसलिये दृष्टि के विष नारी को दूर से ही त्याग कर देना चाहिये। जगत्स्रष्टा ब्रह्मा जी ने भी यही कहा है:—

"न संभाषेत् स्त्रियं कांचित्पूर्वदृष्टां च न स्मरेत्।
कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि॥
एतच्चतुष्टयं मोहात्स्त्रीणामाचरतो यतेः।
चित्तं विक्रियतेऽवश्यं तद्विकारात्प्रणश्यति॥ [ना०प०उ०४/३-४]

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कल्याण कामी पुरुष कभी भी स्त्री से संभाषण न करे, पूर्व दृष्ट स्त्री का स्मरण भी न करे और न उसकी चर्चा ही करे तथा न स्त्री का चित्र ही देखे। परन्तु यदि मोह से पूर्वोक्त इन चारों का आचरण करेगा तो उसका चित्त अवश्य ही विकृत होगा और चित्त के विकृत होने पर वह नष्ट हो जायेगा। इसी लिये पंचचूड़ा ने देवर्षि नारद से स्त्री के भयंकरता के विषय में कहा है—

"अन्तकः पवनो मृत्युः पातालं वडवामुखम्।
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः॥ [महा० अनु० ३८/२६]

यमराज, पवन, मृत्यु, पाताल, वडवानल; छुरे की धार, विष सर्प वह्नि-इन सबकी स्त्री से एकता है यानी स्त्री अकेली ही इन विनाशप्रद सभी वस्तुओं का कार्य करने में समर्थ है। अतः समस्त बन्धनों के हेतुभूत स्त्री सम्बन्धित

"दर्शनं स्पर्शनं केलिः कीर्तनं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः॥ [क० रु०उ० ५/७]

अष्ट-मैथुन को प्रयत्नतः दूर से ही त्याग कर देना चाहिये, क्यों कि

"स्त्रिया तनोति संसारः स्त्री त्यागाज्जगतः क्षयः।
स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्त्यक्त्वा सुखी भव॥"

स्त्री ही संसार की वृद्धि–सृष्टि करती है। अतएव स्त्री के त्याग से जगत् का क्षय हो जाता है। इसीलिये स्त्री का त्यागी जगत् का त्यागी अर्थात् ब्रह्म का ग्राही होता है और जगत् का त्यागी अर्थात् ब्रह्मानन्द को प्राप्त पुरुष सुखी कृतकृत्य हो जाता है।

धनः—इसी प्रकार धन एवं धन, मान के मद से अन्धे धनवानों का भी चरित्र नहीं सुनना चाहिये और न तो उनका संग ही करना चाहिये। क्योंकि उनके संग से भी बुद्धि विकृत, नारकी और लोभग्रस्त हो जाती है। साधक के लिये उस जड़माया धन का भी चिन्तन महान् विष ही है। यही श्रुति भगवती भी कहती हैं:—

"स्वर्णं कालकूटमिव" (ना०प०उ० ७/१)

स्वर्ण महाकालकूट विष के सदृश सद्यः प्राण-हरण करने वाला है तथा स्वयं भगवान् ने भी उद्धव के प्रति धन के अनर्थ के विषय में कहा है:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये ।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ताभ्रमोनृणाम् ॥
स्तेयं हिंसानृतं दम्भः काम क्रोधः स्मयो मदः ।
भेदो वैरमविश्वासः सस्पर्धा व्यसनानि च ॥
एते पञ्च दशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमथाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥" (श्री मद्भा० ११।२३।१७-१६)

धन के अर्जन में, अर्जित धन को बढ़ाने, रक्षण एवं व्यय में तथा उसके नाश एवं उपभोग में केवल श्रम, भय, चिन्ता और भ्रम ही सामने उपस्थित होता है। चोरी, हिंसा, असत्य, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, जूआ एवं शराव—ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्यों में धन के कारण ही सृष्ट होते हैं। अतः कल्याण कामी को अर्थ नामक अनर्थ का दूर से ही त्याग कर देना चाहिये। परमेश्वर शंकर ने भी उमा के प्रति यही कहा है:—

"अर्थानामर्जने दुःखमार्जितानां तु रक्षणम् ।
नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं दुःख भाजनम् ॥
अर्थवन्तं नरं नित्यं पञ्चाभिघ्नन्ति शत्रवः ।
राजा चौरश्च दायादा भूतानि क्षय एव च ॥
अर्थमेवमनर्थस्य मूलमित्यवधारय ।
न ह्यनर्थाः प्रवाधन्ते नरमर्थविवर्जितम् ॥
अर्थप्राप्तिर्महद्दुःखमाकिंचन्यं परं सुखम्।" (महा० अनु०)

धन के अर्जन में दुःख, रक्षा करने में दुःख, नाश में दुःख, व्यय में दुःख ही दुःख है। अतः ऐसे सर्वदुःख स्वरूप अर्थ को धिक्कार है। धनी पुरुष राजा, चोर, दायाद, अन्यप्राणी एवं नाश—इन पांच शत्रुओं के भय से नित्य दुःखी रहते हैं। इस प्रकार केवल अर्थ ही अनर्थ का मूल कारण है। अर्थ रहित पुरुष को अनर्थ की प्राप्ति नहीं होती। अर्थ की प्राप्ति ही महादुःख है और त्याग—अकिंचनता ही परम सुख है। भगवान राम ने भी धन के अनर्थ के विषय में कहा है:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"न श्री सुखाय भगवन् दुःखायैव हि वर्द्धते।
गुप्ता विनाशनं धत्ते मृतिं विषलता यथा॥" (यो० वा० १।१३ १०)

श्री--सम्पत्ति कभी सुख के लिये नहीं होती, वह केवल दुःख ही के लिये बढ़ती है। यह रचा, विनाश एवं ग्रहण करने में विषलतावत् मृत्यु ही प्रदान करती है। और भी इसके विषय में कहा गया है:—

"न तादृशं जगत्यस्मिन् दुःखं नरक कोटिषु।
यादृशं यावदायष्कमर्थोपार्जन शासनम्। (यो० वा०)
"सम्पदः परमापदः" (यो० वा०)

इस संसार में जितना महान दुःख जीव को अर्थोपार्जन में होता है उतना दुःख करोड़ों नरकों में भी संभव नहीं। सचमुच, सम्पत्ति ही परम आपत्ति है।

नास्तिक— "नास्तिको वेद निन्दकः"

जो वेदनिन्दक नास्तिक पुरुष ईश्वर में श्रद्धा विश्वास नहीं रखता, उसका भी चरित्र नहीं सुनना चाहिए और न उसका संग ही करना चाहिए क्योंकि उस प्रत्यक्षभौतिकवादी लोकायतिक अनीश्वरवादी के संग से शास्त्र एवं भगवान् में अश्रद्धा, अविश्वास एवं नास्तिकता की सृष्टि होती है, जिससे वह सर्वथा अपना नाश ही कर लेगा और नरक का भागी बनेगा।

बैरी—वैरी का भी चरित्र नहीं सुनना चाहिए क्योंकि उसके चरित्र के श्रवण से उसके चिंतन से क्रोध की सृष्टि होगी, जिससे साधक पूर्वापर के बुद्धि से रहित, विवेकशून्य हो अपने श्रेय साधन से भ्रष्ट हो जाएगा और अधोगति-नरक को प्राप्त करेगा। भगवान् भी यही कहते हैं:—

"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥" (श्री० गी० १६।२१)

काम, क्रोध और लोभ— ये तीन नरक के द्वार हैं। अतः साधकों को इनके मूल कारण स्त्री धन एवं वैरी आदि के चरित्र के श्रवण को दूर से ही त्याग कर शुद्ध, सरल भाव से अपने साधन में ही सदैव तत्पर रहना चाहिए

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

इस सूत्र में साधक को आन्तरिक दोषों को त्यागने का आदेश दिया जा रहा है।

अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम् ॥६४॥

अभिमानदम्भादि त्याज्य हैं।

साधक को अपनी विद्वत्ता, धर्मतत्परता, श्रेष्ठाचार, वर्णाश्रम की महत्ता तथा तप, त्याग, ज्ञान वैराग्यादि का अभिमान त्याग कर देना चाहिये। अर्थात्

"येन त्यजसि तत्त्यज" (महा० शा० ३/२९/४०)

के सिद्धान्त से जिससे इनका त्याग किया जाता है, उस त्याग के अभिमान का भी त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि

"अहंकारवशादापदहंकाराद्दुराधयः।
अहंकारवशादीहा नाहंकारात्परोरिपुः॥ ‡ (म० उ० ३/१६)

अहंकार से बढ़कर अन्य कोई प्रबल शत्रु एवं बन्धन नहीं है। यही जीव के जन्ममृत्यु रूप संसार का मूल कारण है।

"शोक हर्षभयक्रोधलोभमोह स्पृहादयः।
अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्ममृत्युश्च नात्मनः॥" (श्रीमद्भा० ११/२८/१५)

‡ अहंकार के कारण विपत्ति आती है, अहंकार के कारण दुष्ट मनोव्याधियां उत्पन्न होती हैं। अहंकार के कारण कामनायें उत्पन्न होती हैं। अहङ्कार से बढ़कर मनुष्य का कोई दूसरा शत्रु नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यहीं शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा आदि एवं जन्ममृत्यु का शिकार बनता है।

"अमूलमेतद् बहुरूप रूपितं
मनोवचः प्राण शरीर कर्म। [श्रीमद्भा० ११/२८/१७]

और यही मन वाणी, प्राण, शरीर, आदि के रूप में स्थित है। वस्तुतः यह है तो निर्मूल, परन्तु मनुष्य, देवता, आदि अनेक रूपों में इस बहुरुपिया की ही प्रतीति होती है। अतः

दैन्य प्रियत्वाच्च" (ना० भ० सू० २७)

ईश्वर की प्रसन्नता के हेतु दैन्य-भाव से युक्त होकर अहंकार—अभिमान का त्याग कर देना चाहिये। तथा साधक को दम्भादि का भी त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि दम्भ का स्वरूप ही है सच्चाई--सत्यस्वरूप परमात्मा से दूर होना, मिथ्याचार के द्वारा मिथ्या की उपासना करना। बाहर से बकवत् अपने को ध्यानी, ज्ञानी, तपस्वी, त्यागी, विवेकी, वैरागी, भक्त सिद्ध करना, अपने को संसार तथा भगवान् को भी धोखा देना और हृदय से संसार के विषयों का चिन्तन करना एवं

"कामोपभोगपरमा" (श्री० गी० १६/११)

काम भोगादि आसुरी भावों के परायण होना, जो समस्त आसुरी भावों का मूल कारण, नरक का द्वार है।

भगवान् ने भी कहा है—

"काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।" (श्री० गी० १६/१०)

"अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥" (श्री० गी० १६/१८,१९)

जो दुष्पूर काम के आश्रयी, दम्भ, मान, मद अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध से युक्त अपने तथा दूसरे के शरीर में स्थित मुझ परमात्मा से द्वेष करने वाले हैं। उन क्रूरकर्मा नराधमों को मैं बार-बार अशुद्ध आसुरी योनियों में गिराता हूँ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

इस सूत्र में भक्त को काम आदि समस्त विकार भी भगवान् के ही अर्पण करना चाहिए — इसका प्रतिपादन किया जा रहा है।

तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधाभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम् ॥६५॥

क्योंकि भक्त ने अपने समस्त आचार को भगवान् के अर्पण कर दिया है। अतः उसे काम, क्रोध, अभिमानादि को भी भगवान् के ही लिये करना चाहिए। चूंकि भक्त ने अपने समस्त कर्मों को, समस्त कर्मों

"कर्ता भोक्ताजनार्दनः"

के कर्ता, भोक्ता जनार्दन को समर्पित कर दिया है। अतः वह जनार्दन के हाथ का यन्त्र बन गया है। इसलिये सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी से उसकी कोई भी वृत्ति छिपी नहीं है, वही सबका प्रवर्तक एवं शास्ता है। अतएव भगवान् अर्जुन से कह रहे हैं:—

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥" (श्री० गी० १८।६१)

ईश्वर समस्त प्राणियों के हृदय देश में अन्तर्यामीरूप से स्थित होकर अपनी प्रबल माया से समस्त प्राणियों को परतन्त्र कठपुतली की भांति घुमा-अपने कर्म में प्रवृत्त कर रहा है अतः मैं,

"जनामिधर्मं न च मे प्रवृत्ति
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

केनापि देवेन हृदि संस्थितेन
यथानियुक्तोऽस्मि तथा करोमि

धर्म को जानने पर भी उसमें प्रवृत्त नहीं हो पाता हूं और अधर्म का ज्ञान होने पर भी उससे निवृत्त नहीं हो पाता हूँ। अतः हृदयस्थ किसी बलवान् देव के द्वारा जैसे नियुक्त कर दिया जाता हूं वैसे परवश होकर करता हूँ।

भगवान् गीता के द्वारा भी यही कह रहे हैं:—

"शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः॥ (श्री० गी० ९।२८)

शुभ ही नहीं, अपितु अशुभ कर्मों के भी फल को मेरे अर्पण करके कर्मबन्धन से मुक्त हो जायेगा।

श्रुति भगवती भी यही कहती हैं:—

"एष साधुकर्म कारयति,, (श्रुति)

'यही जिससे साधुकर्म कराता है।'

इस प्रकार सर्वाध्यक्ष सर्वप्रवर्तक भगवान् से ही समस्त शुभाशुभ अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ उठती हैं और वे ही जिससे जैसा चाहते हैं उससे वैसा कर्म कराते हैं। अतः काम, क्रोध, अभिमानादि समस्त अन्तःकरण की वृत्तियों को उन्हीं सर्वेश्वर के अर्पण करो अर्थात् उन्हीं के सामने उन्हीं के लिये इनका निवेदन करो। इस महार्पणविधि से ये शुद्ध, शान्त हो भगवत्प्राप्ति के हेतु साधन-भजन बन जायेंगे। इसीलिये भक्ति के प्रधानाचार्य नारद जी श्री मद्भागवत में भी यही कहते हैं :—

"गोप्य कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः, स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो॥"
(श्री० मद्भा० ७।१।३०)

काम भाव से गोपियों का, भय से कंस का, द्वेष से शिशुपाल दन्तवक्त्रादि का, सम्बन्ध से वृष्णिवंशियों का, स्नेह से पाण्डवों का एवं भक्ति से मेरा कल्याण हुआ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यही परमहंस शिरोमणि श्री शुकदेव जी भी कहते हैं:—

"काम क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥" (श्री मद्भा० १०/२६/१५)

चाहे जैसे भी हों, ये काम, क्रोध, भय, स्नेह, रिश्ता, सौहार्द आदि समस्त सम्बन्ध भगवान् के प्रति होने से, भगवान से वृत्तियों के जुड़ने से भगवान् में तन्मयता की प्राप्ति हो जाती है। अतः भक्तों को अपने समस्त कर्मों को भगवान् के अर्पण करने के साथ ही साथ काम, क्रोध, अभिमान आदि समस्त मनोवृत्तियों को संसार से उठा कर भगवान् के लिये ही करना चाहिए।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमदर्शिनी

इस सूत्र में भगवान् से भक्तों का एक मात्र प्रेम ही करना परम कर्तव्य है—इसका निरूपण किया जा रहा है।

त्रिरूपभङ्गपूर्वकं नित्यदास नित्यकान्ता भजनात्मकं वा प्रेमैव कार्यम् प्रेमैव कार्यम् ॥६६॥

तीन रूपों (सत्त्व, रज, तम त्रिगुणात्मक या आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी त्रिधा गौणी भक्ति के रूपों) को भंग करके नित्यदास भाव से, नित्य कान्ता-भाव से भगवान् से भजनात्मक-भजनस्वरूप प्रेम ही करना चाहिये, प्रेम ही करना चाहिये।

त्रिरूप भंगपूर्वकम्:— भक्त को,

"गौणी त्रिधागुणभेदादार्तादिभेदाद्वा" (नारदभक्ति सूत्र)

इस सूत्रानुसार, सत्त्व, रज, तम—त्रिगुण के भेद से या आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी के भेद से—तीनों प्रकार की जो भक्ति है उसको भंग—भेद करके अर्थात् उसका अतिक्रमण करके त्रिगुणातीत निर्गुण प्रेमा-पराभक्ति से युक्त हो,

तन्मया—अभेदावस्था को प्राप्तकर, सेव्य, सेवक, सेवा से भी मुक्त हो, आग्रह—हठ के हेतुभूत जड़ शरीर के अभिमान से मुक्त, केवल चिन्मय—रसमय, अमृतमय अखण्ड प्रेम की मूर्ति बनकर, विकृत त्रिगुणरूप ब्रह्माण्ड

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

को भग करके अर्थात् उसका अतिक्रमण करके, केवल अखण्ड रूपरहित निर्गुण प्रेम की गति, मति, निष्ठा, चेष्टा से युक्त हो, सर्वत्र, सर्वदा, सर्व अवस्था में प्रेमस्वरूप प्रेमास्पद को ही देखते, सुनते, समझते हुये उसी में तन्मय तद्रूप, तल्लीन होकर,

"तमेवशरणं गच्छ सर्वभावेनभारत". (श्री० गी० १८/६२)

इस भगवदादेशानुसार, सर्वदा, सर्वभाव से, सर्वरूप में, सर्व क्रिया से, सर्व अवस्था में, प्रेमस्वरूप प्रियतम सर्वेश्वर के सर्वरूप की, सर्वहृदय से, सस्नेह, सुत्सुक होकर,

"तस्मिंस्तत्सुखसुखित्वम्" [नारद भक्ति सूत्र २४]

इस सूत्रानुसार, उनकी मरजी के मुताबिक उनकी प्रसन्नता के लिये, उनके सुख-आनन्द के लिए, उनकी आत्मा, उनकी दृष्टि, उनका मन, उनका प्राण, उनका सर्वस्व बनकर, अपने को खोकर-मिटाकर, उनका होकर, उनको अपना बनाकर उनके मनोनुकूल विना किसी ननु-नच के उनके संकेत पर नाचते रहो, सदैव उनकी अमृतमयी कृपावर्षी दृष्टि की, उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते रहो अर्थात् नित्य-निरन्तर उनकी सर्वाश्चर्यमयी, अमृतमयी, मधुमयी दिव्यातिदिव्य चिन्मयी लीला-विग्रह पर मुग्ध रहो, बिके रहो, लुटे रहो, निछावर रहो, उसी का मधुपवत् अतृप्त मधुपान करते रहो।

देखना, सेवा में विशेष सतर्क रहना, क्योंकि सर्वाश्चर्यमय-विग्रहधारी बांकेविहारी, पितामबरधारी, नन्दनन्दन, घनसुन्दर सर्वाश्चर्यमयी प्रत्येक इन्द्रियों से प्रत्येक चेष्टा करने वाले हैं। वे ज्ञानेन्द्रियों की चेष्टा कर्मेन्द्रियों से, कर्मेन्द्रियों की चेष्टा ज्ञानेन्द्रियों से कर करते हैं। इसीलिये श्रुति भगवती उनकी इस अलौकिक एवं दिव्य महिमा के प्रति कह रही हैं:—

"अपाणिपादो जवनोग्रहीता

पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। (" श्वे० उ० ३।१६)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वे अलौकिक कर्मा, दिव्यकर्मा विना पैर के चलते हैं, बिना हाथ के ग्रहण करते हैं, बिना आंख के देखते हैं और और बिना कान के सुनते हैं। अथवा कान से देख सकते हैं, आंख से सुन सकते हैं, मुंह से सूंघ सकते हैं, पैर से खा सकते हैं, क्योंकि सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान् जो ठहरे। सर्वतन्त्र स्वतंत्र वे किसी नियम में, किसी सीमा में, किसी रूप में, किसी मर्यादा में, किसी देश में, किसी काल में, किसी वस्तु में बंधे नहीं हैं। उन अखण्ड, एक, अद्वितीय देवदेव महादेव में देह-देही, गुण-गुणी, चड़-चेतन का भेद नहीं है। वे तो सर्वत्र, समरस, केवल सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन मात्र हैं। पता नहीं, वे कब किस इन्द्रिय से क्या आदेश देंगे ? कहा नहीं जा सकता। इसलिये सावधान रहना, कुछ बनना मत। नहीं तो सर्वगर्वप्रहारी अहंरूपभंगी त्रिभंगी भगवान् से भंग—नष्ट किये जाओगे, मारे जाओगे।

उसी से मैं मारा गया, ब्रह्मा मारे गये, विष्णु मारे गये, शंकर मारे गये, चक्र मारे गये, गरुड मारे गये, काक मारे गये, दुर्वासा मारे गये, च्यवन मारे गये, चन्द्र मारे गये, इन्द्र मारे गये, विश्वामित्र मारे गये, जैमिनि मारे गये, सौभरि मारे गये, लक्ष्मी मारी गईं, ब्रह्माणी मारी गईं, रुद्राणी मारी गईं, सीता मारी गईं, सत्यभामा मारी गईं, रुक्मिणी मारी गईं, शृंगी मारे गये, पराशर मारे गये, अर्जुन मारे गये, सब मारे गये, तो बचा कौन ? जो कुछ बने नहीं। केवल कमठ-अण्डवत् प्रेमस्वरूप प्रियतम की अमृतवर्षी कृपा-दृष्टि के आश्रित रहे। इसलिये निरन्तर उस छविधाम की छवि को—उनके आनन्दवर्षी पादपद्म को नवनीत से भी कोमल सदा पिघले हुये अपने शुद्ध हृदय में धारण किये रहो और दिव्यातिदिव्य चिन्मयी, अमृतमयी, मधुमयी, रसमयी,

"कृष्णभक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम्।
श्रेष्ठा पञ्चविधामुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी ॥
ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि।
अमृतात् सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम् ॥"

(ब्र० वै० पु० कृ० ६७।८-९)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पंच प्रकार की मुक्ति, ब्रह्मत्व, देवत्व, अमरत्व अमृतत्व एवं समस्त सिद्धियों को भी तिरस्कृत करने वाली समस्त वरों में भी श्रेष्ठतम वरस्वरूप, आत्मारामी जीवन्मुक्तों को भी अत्यन्त दुर्लभ कृष्ण भक्ति, कृष्णदासत्व को प्राप्त कर हनुमानवत् नित्यदास्य भक्ति से युक्त होकर अर्थात् अमृतवर्षी भगवान् के पादपद्म को नित्यसिर में, हाथ में, हृदय में, नेत्र में, लिये हुए उसी पर लुब्ध होकर उसी को जीवनाधार, प्राणाधार, जीवनसर्वस्व, बनाकर तथा गोपीवत् कान्ता भक्ति से,

"रसो वै सः,, (तै० उ०२।७)

रसस्वरूप रसराज रासेश्वर के रसामृत, अधरामृत का पान करते हुये रास रचाते हुए, क्रीडा, विनोद करते हुए प्रेमस्वरूप परमानन्दमयी प्रेमास्पद प्रियतम की प्रेममयी मूर्ति को परम आह्लाद से हृदय में लिये हुये प्रियतम में सदा तन, मन, धन, पुत्र; प्राण,

'प्रियपतिम्, (य० सं २३।१९)

"पतिंपतीनाम्,, (श्वे० उ० ६।७;

पति सर्वस्व को उन परमपति प्रियतम पर निछावर करते हुए उन पर वलिदान होते हुए प्रेमस्वरूप प्रेमास्पद से सदा सर्वत्र सर्व अवस्था में प्रेम ही करना चाहिए, प्रेम ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिये अर्थात्

"यत्रनान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा,,

(छा० उ० ७।२४।१)

"तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेवभाषयति तदेवचिन्तयति,, की दृष्टि से भूमा-प्रेम को ही देखना चाहिए, प्रेम को ही सुनना चाहिये, प्रेम की ही वार्ता करनी चाहिये, प्रेम का ही चिन्तन करना चाहिए। प्रेम में ही निवास करना चाहिए प्रेम को ही खाना चाहिये प्रेम को ही पीना चाहिए, प्रेम को ही सूँघना चाहिए, प्रेम को ही चाटना चाहिए, प्रेम से प्रेम को चूसना चाहिए, प्रेम से प्रेभ को चाटना चाहिये और क्या करना चाहिए ? पूछो मत, जो करना चाहिए, सो सब प्रेम से प्रेमास्पद प्रियतम के लिये प्रेमस्वरूप चेष्टायें करनी चाहिए।

बस, अच्छा तो बोलो, धीरे से प्रेमस्वरूप प्रेमास्पद प्रिययम की जय ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमदर्शिनी

इस सूत्र में भक्त के श्रेष्ठत्व का प्रतिपादन किया जा रहा है।

भक्ता एकान्तिनो मुख्याः ॥ ६७ ॥

एकान्तिक अनन्य भक्त श्रेष्ठ हैं।

श्रीमद्भागवत में भी भगवान् ने यही कहा है:—

'भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः" (श्रीमद्भा० ११/११/३३)

जो शास्त्रों के व्यर्थ कथा कन्थारोप से मुक्त होकर, केवल तैलधारावत् अविच्छिन्नरूपेण सर्वदा सर्वदेश, सर्वकाल में निश्चिंत होकर अनन्यरूपेण मेरा भजन करते हैं वे मेरे मत में मेरे सर्वोत्कृष्ट भक्त हैं।

यही श्रुति के द्वारा महाविष्णु का भी उपदेश है:—

"मदुपासकः सर्वोत्कृष्टः (त्रि० म० उ० ८/१)

मेरे अनन्योपासक भक्त सर्व श्रेष्ठ हैं। गीता में भी भगवान् ने यही कहा है:—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥" (श्री० गी० ९।२२)

जो मुझे ही माता, पिता, गुरु, ईश्वर, जीवनाधार, प्राणाधार, जीवन-सर्वस्व समझकर, मुझ चैतन्य अविकारिणी सच्चिदानन्दमयी नीलमणि की गति, मति से युक्त हो, अनन्य रूपेण सतत् धारावाहिक रूप से सर्वत्र सर्वदा सर्व अवस्थाओं में नित्य युक्त, तादात्म्यभाव को प्राप्त कर, सदैव कृष्णाकार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बुद्धि से युक्त हो, सर्वत्र मुझे देखते, सुनते, समझते हुये मेरा भजन करते हैं, उन देह-गेह से रहित, निरहम्, निर्भय, सर्वोत्कृष्ट भक्त के योग-क्षेम का वहन मैं करता हूं। इतना ही नहीं, और भी उस अनन्य भक्त के प्रति भगवान् कहते हैं:—

"अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥" (श्री० गी० ८/१४)

जो विषयान्तर की अपेक्षा से रहित अनन्यरूपेण सर्वत्र, सर्वदा सर्वकाल में मेरा अखण्ड चिन्तन करता है उस नित्ययुक्त सर्वश्रेष्ठ भक्त के लिये मैं दुर्लभ दुष्प्राप्य होने पर भी अत्यन्त सुलभ सुप्राप्य हूँ, अर्थात् उसकी इच्छानुसार सदा सर्वदा उसके साथ रहता, उससे क्रीडा-विनोद करता हूँ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमदर्शिनी

इस सूत्र में भक्त की महत्ता का प्रतिपादन किया जा रहा है।

कण्ठावरोध रोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति कुलानि पृथ्वीं च ॥६८॥

ऐसे अनन्य भक्त परस्पर भगवान् की वार्ता करते हुये, कण्ठावरोध, रोमांच एवं अश्रुयुक्त होकर अपने कुल को तथा पृथ्वी को भी पवित्र कर देते हैं ॥६८॥

जिस काल में भगवान् के हृदय रूप प्राणस्वरूप अनन्यभक्त एकत्रित, एक हृदय, एकमत, एक लक्ष्य, एक होकर लोकमलापह दिव्यातिदिव्य,

"साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥" (श्री मद्भा० ६।४।६८)

के सिद्धान्त से, हृदयरूप, प्रियतम परम प्रेमास्पद भगवान् की चिन्मयी अमृतमयी, मधुमयी, रसमयी लीला का तन्मयतापूर्वक प्रेम में विह्वल हो, गान करते हैं, उस दृश्य को क्या कहा जाय ? वह तो मूकास्वादनवत् अकथनीय केवल अनुभवगम्य है। हां तो उस समय समस्त महात्माओं के हृदय रूप प्रेमसागर का समागम-- एकता होने के कारण अनिर्वचनीय परमानन्द की महाबाढ़ आ जाती। जिसमें त्रैलोक्य निमग्न हो जाता, ब्रह्माण्ड के समस्त तीर्थों की एकता हो जाती। इसीलिये

"रसो वै सः" (तै० उ० २।७)

रसघन परमानन्दस्वरूप भगवान्,

"मद्भक्ता यत्र गायन्ति," (आ० पु० १६।३५)

के सिद्धान्त से, क्षीरसागर एवं वैकुण्ठ आदि लोकों को छोड़ अविलम्ब वहां

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहुंच कर उस सर्वाश्चर्यमय अनिर्वचनीय, सच्चिदानन्दस्वरूप परमानन्दप्रद महासंगम पर महापर्वपर, महातीर्थ में, महाधाम में, सादर सप्रेम, सानन्द, सोल्लास गोता लगाते, डुबकी लगाते और परमानन्द में मग्न हो दक्षिणा में अपने को भक्तों को लुटाते हुए,

'भगवान् परमानन्दस्वरूपः स्वयमेव हि।
मनोगतस्तदाकाररसतामेति पुष्कलम् ॥,, [भक्ति रसायन १।१०]

स्वयं भी इस महोत्सव में प्रेमालाप के द्वारा अनन्त-अनन्त रसराशि को अनन्त-अनन्त आनन्द को उड़ेलने लगते।

उस समय में भक्त के हृदय में, वाणी में, नेत्र में, रग-रग में, रोम-रोम में होते हैं रसस्वरूप रसराज रासेश्वर। फिर वहां के आनन्द के सीमा की क्या इयत्ता ? वहां तो अनन्त-अनन्त आनन्द ही आनन्द होता है। केवल अनिर्वचनीयत्व अनिर्वचनीयत्व ही, केवल दिव्यत्व दिव्यत्व ही होता है। इसीलिये भक्त ज्यों ही रसना से रसस्वरूप रसराजरासेश्वर को स्पर्श करता, उनकी चर्चा करता, बस, तुरन्त कण्ठ तक रस भर गया। मारे आनन्द के रोम-रोम कह-कहा मचाकर हँसने लगे तथा रससिंधु और उमड़कर लोक को पावन बनाने के लिये नेत्ररूप गोमुख द्वार से बाहर प्रगट-प्रवाहित होने लगता। उस काल में प्रेमावेश के कारण उसकी आकृति, उसकी दृष्टि, उसकी गति, उसकी मति, उसकी चेष्टा बदल जाती। वह लोकातीत लोक को पावन बनाने वाली महापावनातिपावन अवस्था में स्थित हो जाता।

स्कन्द पुराण में भी यही कहा गया है:—

"कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन्
लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥
(स्क० पु० माहे० ख० ५५/१४०)

जिसका चित्त अपारसंवित् सुखसागरस्वरूप परब्रह्म में लीन हो गया है, उस अनन्य भक्त का कुल पवित्र हो जाता है, जननी कृतार्थ हो जाती है और वसुन्धरा पुण्यवती हो जाती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीमद्भागवत में भी भगवान् ने यही कहा है:—

"वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्ति युक्तो भुवनं पुनाति ॥" (श्रीमद्भा० ११/१४/२४)

जिसकी वाणी अनिर्वचनीय भगवत्प्रेम में गद्गद-गलती जा रही है और जिसका चित्त,

"रसो वै स:" (तै० उ० २/७)

रस स्वरूप रासेश्वर के संयोग से पिघल कर एक ओर बहता जा रहा है और कभी भगवत्संयोग-वियोग जन्य अवस्था के कारण रोता है और कभी हँसता है तथा कभी अपार संवित् सुखसागरस्वरूप काले कृष्ण में निमग्न होने के कारण लोकातीतावस्था में गाता एवं परमानन्द में मग्न हो नृत्य करता है। ऐसा वह मेरा अनन्यभक्त मेरी प्रेमलक्षणा पराभक्ति से युक्त हो त्रिभुवन को पवित्र कर देता ।

भगवान् कहते हैं कि इतना ही नहीं,

'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभि, (श्री मभ्दा० ११।१४।१६)

अरे, उसके चरणरज से तो पवित्र होने के लिये मैं भी हिंसात्मक दोष से मुक्त होने के लिये नित्य निरन्तर उस अहिंसक भक्त के पीछे-पीछे घूमता रहता हूँ, उसके चरण रज को अपने सिर पर धारण करता हूँ।

तभी तो भगवान् नारद जी से कह रहे हैं:—

नाहं वसामि वैकुण्ठे
योगिना हृदये न च।
मद्भाक्ता यत्र गायन्ति
तत्र तिष्ठामि नारद

मैं वैकुण्ठ एवं योगियों के हृदय में नहीं रहता अपितु मेरे अनन्यभक्त जहां प्रेमविह्वल होकर गाते हैं, केवल वहीं मैं स्थित रहता हूँ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्त की पावनता एवं सामर्थ्य का निरूपण किया जा रहा है।

तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मी कुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि ॥ ६९ ॥

ऐसे अनन्य प्रेमी भक्त तीर्थों को सुतीर्थ कर देते हैं, कर्मों को सुकर्म बना देते हैं एवं शास्त्रों को सत् शास्त्र बना देते हैं ॥ ६९ ॥

तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि:— जो भगवान् के हृदयरूप प्राणस्वरूप अनन्य प्रेमैकनिष्ठ भक्त भगवत्पादपद्मप्रल्लवरूप जलयान का सहारा लेकर भवसागर पार हो गये हैं, वे

"स्वयं तीर्णः परान्तारयति"

के सिद्धान्त से, स्वयं तर कर, तीर्थ बनकर अन्यों को भी तारने के लिये तीर्थ बन जाते हैं। ऐसे ही प्रेमविह्वल सन्त तीर्थों में जो पापियों के स्नान से दोष-पाप आ जाता है, उसको नष्ट करके पवित्र कर देते हैं। अतः वे तीर्थों को सुतार्थ बनाकर उसे और चमका देते हैं। कलि कल्मष हारिणी गंगाजी ने स्वयं राजा भगीरथ से कहा है:—

"किं चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यधम् ।
मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् ॥ ॥" (श्रीमद्भा० ९/९/५)

मैं पृथ्वी पर इसलिये नहीं जाऊँगी कि मनुष्य मुझमें अपने पापों को धोवेंगे, फिर मैं उस पाप को कहां धोऊँगी ?

राजन्! इस विषय में विचार कर लो।

इस पर परमतपस्वी राजर्षिभगीरथ ने कहा है:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मनिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्ग सङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥" [श्रीमद्भा० ६/६/६]

माता ! जिन्होंने एषणात्रय का त्याग कर दिया है, वे परमशान्त लोकपावन ब्रह्मनिष्ठ महात्मा आप में स्नान करेंगे, तो उनके अङ्गस्पर्श से आप के समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे, क्योंकि उनके हृदय में समस्त पापों के नाशक भगवान् सदा निवास करते हैं।

यही धर्मराज युधिष्ठिर ने भी विदुर के प्रति कहा है:—

"भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता ॥" [श्रीमद्भा० १/१३/१०]

प्रभो ! आप जैसे अनन्य भक्त स्वयं तीर्थ स्वरूप हैं। आप लोग अपने हृदय में विराजमान भगवान् गदाधर के प्रभाव से तीर्थ को भी सुतीर्थ—महातीर्थ बना देते हैं।

प्रचेताओं ने भी भगवान् से यही कहा है:—

"तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया,, (श्री०मद्भा० ४/३०/३७)

आप के वे अनन्य भक्त तीर्थों को पवित्र करने की इच्छा से पृथ्वी पर पदाति—पैदल ही विचरते रहते हैं।

सुकर्मी कुर्वन्ति कर्माणि:—

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥,, (श्री० गी० ३/२१)

इस भगवदादेशानुसार, श्रेष्ठ भक्त जिस कर्म को प्रमाण एवं आदर्श मानकर करता है, उसी को अन्य लोग भी प्रमाण एवं आदर्श मानकर करते हैं। अतः वह उस कर्म को सुकर्म बना देता, उस कर्म में चार चांद लगा देता। सबकी दृष्टि एवं प्रवृत्ति उसी कर्म पर हो जाती है। सब उसी का अनुगमन करने लगते हैं।

सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि:— वह आदर्शभूत अनन्यभक्त

"अश्रेष्ठः श्रेष्ठानुसारी"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के सिद्धान्तानुसार, जिस सारभूत शास्त्र को विशेष महत्व देता है, जिसको स्वीकार करता है, समाज भी उसी को महत्व देता और स्वीकार करता है। अतः वह शास्त्रों को भी सत्-शास्त्र बना देता है, उसमें प्रकाश ला देता है। उसे चमका देता है। शास्त्रों के जाल- महारण्य से लोगों को बचाकर एक सुनिश्चित सारभूतशास्त्र समाज के सामने उपस्थित कर देता है। इस प्रकार वह तीर्थस्वरूप सन्त तीर्थों को, कर्मों को, शास्त्रों को तारता हुआ अर्थात् पवित्र करता हुआ त्रिभुवन को अपने सहज स्वभाव से तारता-पवित करता रहता है।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमदर्शिनी

इस सूत्र में भक्तों की भगवन्मयता का निरूपण किया जा रहा है।

तन्मयाः ॥ ७० ॥

क्योंकि वे भगवान् में तन्मय होते हैं ॥ ७० ॥

वे अनन्य भक्त भगवान् में तन्मय, तल्लीन, तद्रूप होते हैं अर्थात् साक्षात् भगवान् के स्वरूप ही होते हैं।

श्री शुकदेव जी ने भी गोपियों के प्रति यही कहा है:—

"*तन्मनस्का.*" (श्रीमद्भा० १०/४६।४)

'वे कृष्ण के मनवाली थीं'। श्रुति भगवती भी यही कहती हैं:—

"*यथा नद्यः स्यन्दमानाःसमुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय।*
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥" (मु० उ० ३/२।८)

जिस प्रकार नदियां समुद्र में विलीन होकर, अपने नाम-रूप को खोकर, समुद्रस्वरूप हो जाती हैं, वैसे ही भक्त भगवान् में तन्मय होने के कारण अपने नामरूप से मुक्त हो भगवत्स्वरूप हो जाता है।

इसलिये उसकी इतनी महिमा है।

वह भूतल का भूषण, समता का स्वरूप, शान्ति की सीमा, सुधा का सिन्धु, सुख का स्रोत, मैत्री की मूर्ति, सबका प्रेमास्पद, एकता का सूत्र, अखिल जीव वत्सल, विश्व का वाहक, बुद्धि का विश्राम, सबका सुहृद, सबकी आत्मा, अमृत का मेघ, भक्ति का भास्कर, ज्ञान का सागर, वैराग्य का वर्धक, स्वरूप का साक्षात्कार, जगत् की ज्योति, विज्ञान का आधार, विकास की अवधि,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिन्मयता का दर्शक, परमात्मा का प्रकाशक, जीव का सखा, वेदान्त की वेदी, गीता का गौरव, सत् का रूप, चैतन्य का विग्रह, आनन्द की मूर्ति, सब कुछ करने में समर्थ, तीर्थों को सुतीर्थ, कर्मों को सुकर्म और शास्त्रों को सत् शास्त्र बना देता।

अथवा यों समझिये कि वह तन्मय भक्त भगवत्स्वरूप है, अतः उसकी वाणी-भगवद्वाणी—वेदवाणी है। उसका कर्म भगवान् का कर्म है, उसका धर्म भगवान् का धर्म है। उसका निवास-स्थान भगवान् का निवास स्थान—भगवद्धाम है। उसका विचार भगवान् का विचार है, उसका पथ भगवान् का पथ है। इसीलिये शास्त्रों का अंतिम सारांश उपदेश यही कहा गया है किः—

"श्रुतयो विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्ना
नैको ऋषिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्यतत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्था॥" (*स्मृति*)

धर्म का तत्त्व अत्यन्त गुह्य है, सर्वसाधारण जनता के बुद्धि के परे है। अतः महापुरुष लोग जिस मार्ग से चलते हैं वही एक मात्र जीवों के कल्याणार्थ निर्भ्रान्त विशुद्ध एवं प्रशस्त वैदिक मार्ग है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्त की महिमा का गान किया जा रहा है।

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवता सनाथा चेयं भूर्भवति ॥ ७१ ॥

ऐसे भक्त को देखकर पितर प्रमुदित हो जाते हैं, देवता नृत्य करने लगते हैं तथा यह पृथ्वी सनाथ हो जाती है ॥ ७१ ॥

चूँकि भक्त धर्म, कर्म, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का मूर्तिमानरूप ही होता है अतः उस नित्य अवतार के संसर्ग से सबको अपने धर्म, कर्म आदि में विश्वास-निष्ठा उत्पन्न हो जाती है, जिससे वे भगवद्भक्ति के हेतुभूत स्वधर्म यज्ञ, दान, तप, श्राद्ध, तर्पण, एवं व्रतादि में प्रवृत्त होते हैं। अतः उनसे अनन्त-अनन्त जीवों का एवं अनेकानेक लोकों का कल्याण तथा उद्धार होता है। सबके उद्धार, आनन्द एवं सन्तोष का मूल कारण है उनकी निस्पृहता, अमनी अवस्था। जिससे सतत् साम्यामृत-प्रेमामृत की वृष्टि होती रहती है। वह जीव, जगत् एवं परमात्मा के यथार्थरूप को प्रकाशित करने वाला चैतन्य सूर्य है। वह अज्ञानान्धकार रूप तिमिर ताम को नष्ट करने वाला नित्योदित भास्कर है उसके सत्संग से कामी निष्कामी, विषयी निर्विषयी बन जाते, सबको अपने लक्ष्यभूत परम प्रेमास्पद प्रभु के प्रति स्नेह उत्पन्न हो जाता, सब यह अनुभव करने लगते हैं कि सचमुच ससार झूठा और परमात्मा ही सत्य है अतः हम लोगों को भी इस मानव शरीर को सार्थक बनानी चाहिये। यहां तक कि अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड के मूलाधिष्ठान-मूलाधार स्वयं भगवान् को भी उसके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समागम से परम संतोष एवं परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसीलिये वे भी,

"अनुव्रजाम्यहम्" (श्रीमद्भा० ११।१४।१६)

अपनी इस प्रतिज्ञा के अनुसार, उसके पीछे-पीछे नित्य-निरन्तर घूमा करते हैं। उसके दर्शन की नित्य स्पृहा रखते हैं, तो फिर मूल वृक्ष के शाखा, टहनी रूप पितर, देवता एवं पृथ्वी आदि के मुदित-संतुष्ट एवं सनाथ होने का प्रश्न ही क्या ? अतः

मोदन्ते पितरोः— पितर उस निर्वासनिक परम भक्त को देखकर प्रमुदित, निर्वासनिक हो जाते हैं।

अथवा उसके सकाश से श्राद्ध-तर्पणादि को प्राप्त कर प्रमुदित-सुखी होते हैं कि यह हम लोगों का भी उद्धार कर देगा।

ऐसे ही पद्मपुराण में भी कहा गया है:—

"आस्फोटयन्ति पितरो नृत्यन्ति च पितामहाः।
मद्वंशे वैष्णवो जातः स नस्त्राता भविष्यति ॥" (प० पु०)

पितृ पितामह गण यह जानकर कि यह वैष्णव भक्त हमारे कुल में पैदा हुआ है हम लोगों को भी तार-भवसागर से मुक्त कर देगा, ऐसा समझकर आनन्दातिरेक के कारण परमानन्द में मग्न हो नृत्य करते हैं।

नृसिंह भगवान् ने भी प्रह्लाद के प्रति यही कहा है:—

"त्रिसप्तभिः पितापूतः पितृभि सह तेऽनघ।" [श्रीमद्भा० ७/१०/१८]

अनघ ! तुम्हारे पिता अपने तीन कुल के सात-सात पितरों के साथ पवित्र हो गये।

नृत्यन्ति देवताः—

"तं दृष्ट्वा शान्तमनसं स्पृह्यन्ति दिवौकसः" [ना० प० उ० ४।३७]

की दृष्टि से देवगण उसके स्वर्गापवर्ग की स्पृहा से भी रहित प्रशान्तावस्था को देखकर, उसके दर्शन की स्पृहा करते हैं अर्थात् उसके दर्शनमात्र से स्वर्गापवर्ग से अधिक सुख मानकर नृत्य करते हैं। अथवा पूर्वकथित यज्ञ, दानादि के द्वारा आनन्दमग्न हो, नृत्य करते हैं, निहाल, सुखी, तृप्त-तृप्त होते हैं।

सनाथा चेयं भूर्भवतिः— पृथ्वी,

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" (श्री० गी० १५/७)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस गीतोक्त भगवद्वचनानुसार, अपने परमपति प्रियतम भगवान् के अभाव में जो अनाथ हो गई थी, उनके परम प्रियपुत्र अनन्य भक्त को प्राप्तकर सनाथ हो जाती है, क्योंकि उस पर धर्म, कर्म, भक्ति, ज्ञान की धारा अविकल-रूप से प्रवाहित होने लगती है। सब उस तीर्थराज में स्नान करके स्व-स्व धर्म-कर्म पर आरूढ हो, सुखी होने लगते हैं। इसलिये पृथ्वीमाता भी अपने सुयोग्य पति के अनुरूप भक्त को प्राप्तकर सुखी-कृतकृत्य एवं सनाथ हो जाती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्त के जाति आदि का अभाव प्रदर्शित किया जा रहा है।

नास्ति तेषु जाति विद्यारूप कुलधन क्रियादिभेदः ॥७२॥

उन अनन्य भक्तों में जाति, विद्या, रूप, कुल, धन, क्रिया आदि का भेद नहीं है ॥ ७२ ॥

नास्ति तेषु जाति भेदः— उन भक्तों में जाति का भेद नहीं है, क्योंकि वे अच्युत भगवान के भक्त होने के कारण अच्युत गोत्री हैं। अतः उनमें लौकिक जाति-पांति का भेद नहीं है। भगवान् स्वयं कहते हैं:—

"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथाशूद्रास्तेऽपि यान्तिपरांगतिम् ॥" (श्री० गी० ९/३२)

मेरे शरणापन्न होकर स्त्री, वैश्य, शूद्र एवं पापयोनि अन्त्यजादि भी परम गति को प्राप्त हो गये। यही पद्मपुराण में भी कहा गया है:—

"चाण्डालोऽपि मुनेः श्रेष्ठो विष्णुभक्तिपरायणः।
विष्णुभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपिश्वपचाधमः ॥" [प० पु०]

विष्णुभक्ति परायण चाण्डाल भी मुनि से श्रेष्ठ है और विष्णुभक्ति विहीन ब्राह्मण ब्राह्मणोचित गुणों से युक्त होने पर भी श्वपच से भी अधम है

"न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्राभागवता स्मृताः।
सर्व वर्णेषु ते शूद्रा ये ह्यभक्ता जनार्दने ॥" [स्मृति]

भगवद्भक्त शूद्र होने पर भी शूद्र नहीं, अपितु विप्र परमभागवत ही है। वास्तव में तो सब वर्णों में वे ही शूद्र हैं जो भगवान् की भक्ति से रहित हैं। भगवान् राम भी शबरी के प्रति यही कह रहे हैं:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जाति नामाश्रमादयः ।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥" [अध्या०रा०अरण्य० १०।२०]

पुरुषत्व, स्त्रीत्व, का भेद या जाति, नाम एवं आश्रम—ये मेरे भजन के कारण नहीं हैं उसका कारण तो एक मात्र मेरी भक्ति ही है।

श्री शुकदेव जी ने भी श्री मद्भागवत में कहा है:—

"किरात हूणान्ध्रपुलिन्द पुल्कषा
आभीरकङ्का यवना खसादयः ।
येऽन्ये च पापायदपाश्रयाश्रया··· ··· ···॥ (श्रीमद्भा० २।४।१८)

किरात, हूंण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खस आदि नीच जातियां भी भगवद्भक्ति से मुक्त हुईं हैं। इसलिये भी भक्त में जाति-पांति का भेद नहीं होता, क्योंकि उसमें भक्तिरूप तप की ही प्रधानता है, मिथ्या जाति-पांति आदि संस्कारों की नहीं। ऐसे ही ब्रह्मा जी ने भविष्य पुराण में भी कहा है:—

"हरिणीगर्भसंभूत ऋष्यश्रृंगो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्ते न कारणम् ॥
श्वपाकीगर्भ संभूतः पिताव्यासस्य पार्थिव ।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्ते न कारणम् ॥
उलूकी गर्भसंभूतः कणादाख्यो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्ते न कारणम् ॥
गणिकागर्भ संभूतो वशिष्ठश्च महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्ते न कारणम् ॥
नाविकागर्भ संभूतो मंदपालो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्ते न कारणम् ॥ [भवि० पु० १।४२।२६-३०]

महामुनि ऋषि श्रृंग हरिणी के गर्भ से, भगवान् वेदव्यास के पिता पराशर श्वपाकी के गर्भ से, महामुनिकणाद उलूकी के गर्भ से, महामुनिवसिष्ठ गणिका के गर्भ से, तथा महामुनि मन्दपाल नाविका के गर्भ से, एवं भगवान् व्यास

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धीवरी के गर्भ से, तथा शुकदेव जी शुकी के गर्भ से सृष्ट होने पर भी अर्थात् जाति-पांति के संस्कार से नितान्त शून्य होने पर भी केवल भगवद्भक्तिरूप महान् तप के द्वारा ब्राह्मणत्व ब्रह्म पद को प्राप्त किये हैं, जाति-पांति आदि संस्कारों से नहीं।

ऐसे ही श्रुति भगवती भी कहती हैं :—

ऋष्यश्रृङ्गो मृग्याः, कौशिकः कुशात्, जम्बूको जम्बूकात्, वाल्मीको वल्मीकात्, व्यासः कैवर्तकन्यायाम्, शशपृष्ठात् गौतमः, वसिष्ठ उर्वश्याम्, अगस्त्यः कलशेजात इति श्रुतत्वात्। एतेषां जात्या विनाप्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयो वहवः सन्ति। [वज्रसूचिकोपनिषद]

अतः इससे सिद्ध हुआ कि भक्तों में जाति-पांति आदि भेदों की महत्ता या मान्यता नहीं होती, क्योंकि उनमें भक्ति की हीं प्रधानता है मिथ्या जाति-पांति की नहीं।

नास्तितेषुविद्याभेदः—उन भक्तों में विद्या का भेद नहीं है, उनमें विद्या की कोई भी अपेक्षा नहीं है। दूसरे,

"अध्यात्मविद्या विद्यानाम्,, (श्री० गी० १०।३२)

इस गीतोक्त भगवदुपदेशानुसार, सचमुच ब्रह्मविषयिणी अध्यात्मविद्या ही वास्तविक विद्या है और सब व्याकरण, ज्योतिष आदि लौकिक अर्थकरी विद्यायें तो वस्तुतः मोहोत्पादक अविद्या ही हैं, क्योंकि,

"सा विद्या या विमुक्तये,,
"विद्ययाऽमृतमश्नुते,, (ई० उ० ११)

जो मुक्तिप्रद है वही विद्या है। विद्या—ब्रह्मविद्या से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है। इस प्रकार सचमुच विद्वान् तो भगवद्भक्त—महात्मा ही होता है अन्य नहीं। स्वयं भगवान् भी भक्तों के प्रति यही कहते हैं:—

सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे॥
तेनाधीतश्रुतिगणा नोपासित महत्तमाः।
अव्रता तप्ततपसः तत्सं गान्मामुपागताः॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः।
येऽन्ये मूढधियोनागा सिद्धा मामीयुरञ्जसा॥ (श्रीमद्भा० ११/१२/६-८)

सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवन्त, गजराज, गृध्रराज, जटायु, वैश्य, व्याध कुब्जा, व्रजगोपिंयाँ, यज्ञपत्नियाँ एवं अन्य भी, जो वेद नहीं पढ़ी थीं, न महापुरुषों की सेवा ही की थीं, न कोई व्रत एवं तप ही की थीं, एकमात्र सत्संग से प्राप्त भक्तिभाव के द्वारा ही भगवान् को प्राप्त हुईं। कहाँ तक कहा जाय, केवल प्रेम-भाव के द्वारा ही गोपियाँ, गायें, पर्वत, पशु, पक्षी, वृक्षादि मूढ़ बुद्धि कालिय नागादि भी अनायास ही भगवान् को प्राप्त हो गये। अतः भक्त में विद्या के भेद की अपेक्षा नहीं है, केवल भगवत्प्रीति ही एक मात्र विद्या है और संसार की प्रीति अविद्या हैं।

ऐसे ही देवी भागवत् में श्री शुकदेव जी ने कहा है:—

"अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्च ये।
तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्माः श्वाश्वसूकरैः॥" (देवीभागवत्)

जो लोक का विद्वान वेदशास्त्रों के अध्ययन के पश्चात् भी संसार की असत् वस्तुओं—स्त्री-पुत्रादि में आसक्त है उससे बढ़कर कोई मूर्ख नहीं है, क्योंकि इस वैषयिक भोग में तो, कुत्ते, घोड़े और सूकर भी आसक्त हैं।

नास्ति तेषु रूप भेदः— उन भक्तों में रूप का भेद नहीं होता अर्थात् उनमें वेश्यावत् सुन्दरता की अपेक्षा नहीं होती है, क्योंकि,

"त्रि रूपभंगपूर्वकम्" (नारद भक्ति सूत्र ६६)

के सिद्धान्त से, त्रिगुणात्मक शरीर के रूप-देहाभिमान का भंग हुये हुये बिना त्रिगुणातीत-निर्गुणभक्ति की प्राप्ति ही संभव नहीं है और न त्रिगुणातीत ललित त्रिभंगी की भावभंगी की मधुरिमा ही समझ में आयेगी और न उनकी अमृतवर्षी कृपा-दृष्टि के कृपापात्र ही होंगे। यह पांचभौति रूप तो सूकर-कूकर आदि सबका एक ही है, फिर इसमें क्या विशेषता एवं अभिमान ? वास्तविक रूप तो अपना आत्मा हीं है, जो कि नित्य-निर्विकार एवं सुखस्वरूप है। इसी रहस्य को समझाने के लिये कोटिकन्दर्प कमनीय लावण्यधाम भगवान शंकर भक्तराज हनुमान के रूप में कुरूपरूप धारण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किये। काकभुसुण्डि कुरूप एवं अपवित्र काक शरीर को ही स्वीकार किये। भक्ति रहित सुरूप मानव शरीर को नहीं।

नास्ति तेषु कुलभेदः— उन भक्तों में कुल का भेद नहीं होता अर्थात् उनमें कुलीनता की अपेक्षा नहीं होती। क्योंकि,

"*किरातहूणान्ध्रपुलिन्द पुल्कशा*
आभीर कङ्कायवनाखसादयः।" (*श्री० मद्भा० २।४।१८*)

की दृष्टि से, ये सब कुलीन नहीं थे, फिर भी भक्त हुए। इससे सिद्ध हुआ कि भक्त में कुलीनता की कोई अपेक्षा नहीं है, क्योंकि वह तो भगवान् के कुल का भगवान् के गोदी का बच्चा हो चुका है।

नास्ति तेषु धन भेदः— उन भक्तों में धन का भी भेद नहीं होता अर्थात् उनमें धन की अपेक्षा नहीं होती क्योंकि सुदामा एवं विदुर आदि तो निर्धन ही थे। वस्तुतः धनाढ्य एवं महान् वही है जो भगवान् की भक्ति से युक्त है और भक्ति रहित लोकविधाता ब्रह्मा एवं देवराज इन्द्र के समान होने पर भी दरिद्र एवं क्षुद्र ही है, क्योंकि जिसके हृदय में लक्ष्मीपति भगवान् स्वयं नित्य-निरन्तर निवास कर रहे हैं उसकी धनाढ्यता एवं महत्ता का कहना ही क्या ? इसीलिये भक्त में वाह्यभौतिक धन की कोई अपेक्षा नहीं है। इसीलिये परम गोप्य इस प्रेम-धन को प्राप्त करने के लिये बड़े-बड़े सम्राटों ने अक्षय कोष को तृणवत् त्याग दिया, यह वाह्यधन–सम्पत्ति, सम्पत्ति नहीं, महान् विपत्ति है, क्योंकि जिसके पास यह सम्पत्तिरूप महाविपत्ति आई वह महाविपत्ति में पड़ जाता है। वह मोहान्ध हो लोक–परलोक दोनों से भ्रष्ट हो जाता है।

नास्तितेषुक्रियाभेदः— उन भक्तों में क्रिया का भेद नहीं होता अर्थात् उनमें श्रेष्ठाचार की कोई अपेक्षा नहीं है। यही भगवान् राम ने मुक्तिकोपनिषद् से हनुमान जी को उपदेश देते हुए कहा है :—

"*दुराचाररतोवापि मन्नामभजनात्कपे।*
सालोक्यमुक्तिमाप्नोति न तु लोकान्तरादिकम्॥ (*मुक्ति० उ० १।१८।१८*)

दुराचार में रत पुरुष भी मेरे नाम के भजन के प्रभाव से सालोक्य मुक्ति को ही प्राप्त करता है अन्य निम्न लोकों को नहीं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान् भी यह गीता के द्वारा कह रहे हैं:—

'अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्,, [श्री० गी० ६।३०]

अतिशय दुराचारी भी मेरे भजन के प्रताप से साधु हो जाता है। इस प्रकार भक्तों में जाति, विद्या, रूप, कुल, धन, क्रिया आदि का भेद नहीं है अर्थात् भक्ति एवं ज्ञान के क्षेत्र में इनका कोई भी महत्व नहीं है। इसमें तो केवल अनन्य प्रेम— भक्ति की ही महत्ता है। अतः जो परम श्रेष्ठा परम पुनीता भगवद्भक्ति से युक्त है, वही सर्व प्रकार से सर्व श्रेष्ठ, विश्ववन्द्य एवं परम पुनीत है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनीर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

इस सूत्र में भक्तों को भगवान् से अभिन्न उनका स्वरूप बतलाया जा रहा है ॥

यतस्तदीयाः ॥ ७३ ॥

क्योंकि वे समस्त भक्त भगवान् के ही हैं ॥ ७३ ॥

अर्थात् सब भगवान् में तन्मय होने के कारण भगवद्रूप ही हैं। स्वयं भगवान् ने भी गोपियों के प्रति यही कहा है:—

"ताः मनस्काः" (आ० पु०)

वे मेरे में मन वाली हैं, मेरी हैं, मद्रूपा हैं। अतः उन अविच्छिन्न— अखण्ड प्रेम को प्राप्त, अविच्छिन्न अखण्ड भगवान् के भक्तों में कोई भी भेद नहीं है। जैसे पतितपावनी गंगा जी में सरयू एवं जमुना आदि पवित्र नदियां तथा अपवित्र गन्दे नाले मिलकर अन्त में सब गंगा रूपही हो जाते हैं वैसे ही भक्त सब भगवान् में लीन होने के कारण भगवद्रूप ही हैं उनमें न्यूनाधिकता नहीं है। अथवा यों समझिये कि जैसे शालिग्राम या तुलसीपत्र में कोई छोटा बड़ा नहीं माना जाता है, वैसे ही भक्तों में छोटाई-बड़ाई का भेद नहीं है अपितु उनमें भेद मानना ही महान् दोष—महान् पाप है। उसका तिरस्कार भगवान् का तिरस्कार हैं जिसके लिये अम्बरीष-दुर्वासा, शवरी एवं दण्ड कारण्य के ऋषि-मुनियों का प्रकरण ज्वलन्त प्रमाण है।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्त को वादालम्बन का निषेध किया जा रहा है।

वादो नावलम्ब्यः ॥ ७४ ॥

भक्त को वाद का आलम्बन नहीं लेना चाहिये ॥ ७४ ॥

भक्त को वाद—द्वैतवाद-अद्वैतवाद आदि वादों का आलम्बन नहीं लेना चाहिये, क्योंकि वाद-विवाद अज्ञ रजोगुणी देहाभिमानी पुरुषों का कार्य है। तर्क—विवाद से जीव परमात्मा से दूर हो जाता है, क्योंकि परमात्मा वादों का साक्षी तर्कातीत है। इसीलिये श्रुति भगवती तर्क का निषेध करती हुई कह रही है:—

"नैषा तर्केणमतिरापनेया" (क० उ० १।२।६)

"यस्यामतं तस्यमतं मतंयस्य न वेदसः" (क० उ० २।३)

इसीलिये वेदव्यास जी भी ब्रह्मसूत्र के द्वारा तर्क का निषेध कर रहे हैं:—

"तर्काप्रतिष्ठानात्" (वे० द० १।१।११)

भगवान् भी यही कह रहे हैं:—

"बुद्धे परतस्तु सः" (श्री० गी० ३।४२)

'बुद्धि के तर्क के द्वारा परमात्मा प्राप्तव्य नहीं है"

'उस अमत मत को मत के द्वारा नहीं जान सकते।'

"वहां पर तर्क की प्रतिष्ठा नहीं है।"

"वह बुद्धि से परे हैं।"

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया"

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" (क० उ० १/२/२३)

"भावग्राह्यमनीडाख्यम्" (श्वे० उ० ५/१४)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"यह आत्मा न प्रवचन से लभ्य है, न बुद्धि से ही।"

अतः वह कृपासाध्य परमात्मा केवल विशुद्धभाव से ही ग्राह्य है। इस प्रकार वह तर्क—वाद से नहीं प्राप्त हो सकता। तर्क एवं वाद की मान्यता का अर्थ है कि बुद्धि की मान्यता बुद्धि की उपासना, परमात्मा की नहीं। ये लोक के जितने वाद हैं वे सब केवल बुद्धि के झगड़े—विलास हैं। परमात्मा तो इन वादों से परे, समस्त वादों का साक्षी है, ऐसे ही कहा भी है:—

"अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरं।
समं तत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम्" (अव० गी०)

"भेदाभेदविवर्जितपन्थः" [अव० गी०]

'कोई अद्वैत का आग्रह करते हैं, कोई द्वैत का। परन्तु ये दोनों वादी द्वैताद्वैत से रहित सम शुद्धस्वरूप ब्रह्म को नहीं जानते। क्योंकि विवेकियों का मार्ग तो भेदाभेद से रहित है।'

अतः कोरे वाद-विवाद से केवल रजो गुण, अभिमान, क्रोध, राग-द्वेष एवं अशान्ति आदि की ही वृद्धि होती है। अतः भक्त के लिये महान् हानिप्रद है। इसलिये भक्त को,

"मौनं सर्वार्थसाधनम्"

की दृष्टि से, समस्त अर्थों के साधन भूत मौन का आलम्बन लेकर सुनिश्चित बुद्धि से केवल अमत भगवान् का ही अनन्यरूपेण भजन करना चाहिये। दूसरे, भक्त ने

"निवेदितात्मलोकवेदत्वात्" (नारद भक्ति सूत्र ६१)

इस सूत्रानुसार, अपने को भगवान् को सर्वतोभावेन समर्पण कर दिया है। अतः उसे भगवद्भजन छोड़कर वाद या किसी अन्य कार्य का अधिकार ही नहीं है। इसलिये भी वादालम्बन नहीं लेना चाहिये। अपितु धारावाहिक रूप से

"मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः" (श्रीमद्भा० ११/२९/१९)

इस भगवदुपदेशानुसार, इस सर्वोत्तम निर्गुण निष्काम भक्ति का आश्रय लेकर, सर्वत्र सब में भगवद्बुद्धि के द्वारा सबका सर्वप्रकार से स्वागत करते हुये निश्चित होकर, एकमात्र भगवान् का ही अनन्य रूपेण भजन करना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्त को वाद से दूर रहने का आदेश दिया जा रहा है।

बाहुल्यावकाशादनियतत्वाच्च ॥७५॥

वादालम्बन में वाहुल्य का अवकास होने से एवं अनियत होने के कारण भक्त को वादालम्बन नहीं करना चाहिए।

बाहुल्यावकाशात्:— इसमें समय के बहुत विस्तार का भय होने के कारण संभवतः जीवन भर में भी वाद की परिसमाप्ति संभव नहीं। इससे भगवद्भजन का समय ही नहीं मिलेगा, जीवन व्यर्थ हो जायेगा। दूसरे, यह अज्ञान—आग्रहमूलक वाद-विवाद राग-द्वेष का हेतु, जीतने पर अहंकार की वृद्धि करने वाला एवं हारने पर ग्लानि-संताप का कारण होता है। भजन का यह महान् प्रतिबन्धक है। इससे चित्त विक्षिप्त रजोगुण से आक्रान्त हो जाता है। बुद्धि वहिर्मुख हो जाने के कारण भजन के योग्य नहीं रह जाती। सचमुच यह वाद-विवाद का कार्य तो भगवान् की माया से मोहित भ्रान्त पुरुषों को ही शोभा देता है। यही दक्षप्रजापति ने भगवान् से कहा भी है:—

"यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै विवाद संवाद भुवो भवन्ति।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहम्॥ (श्री० भद्धा० ६/४/३१)

मायातीत, तर्कातीत भगवन्! आप की माया-शक्ति ही वादी प्रतिवादी के विवाद-संवाद में हेतु वनती है जिससे वे बार-बार मोहग्रस्त होते हैं।

अनियतत्वात्:— इसमें समय का बड़ा दुरुपयोग होता है। दूसरे, इसके विस्तार का कोई अन्त नहीं है, निश्चय नहीं है। आदि काल से आज तक बड़े-बड़े

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आचार्यों का वाद-विवाद–शास्त्रार्थ होता चला आया है, परन्तु उससे किसी एक सुनिश्चित सर्वमान्य सिद्धान्त का निर्णय नहीं हुआ! अतः व्यर्थ वाद-विवाद के झगड़े से मुक्त होकर सुनिश्चित सुस्थिर बुद्धि से,

"मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहुमानयन्,, [श्री० मद्भा० ३।२९।३४]

इसभगवदादेशानुसार, सबको भगवद्रूप समझकर, उनको सादर नमस्कार करते हुए, निरहम् निर्वैर एवं विनम्र होकर, श्रद्धा विश्वासपूर्वक एकमात्र आलम्बनीय भगवान् का पूर्ण आलम्बन लेकर सतत भजन ही करना चाहिए।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमदर्शिनी

इस सूत्र में भक्ति वर्द्धक साधनों का आदेश दिया जा रहा है।

भक्ति शास्त्राणि मननीयानि तदुद्बोधक कर्माणि करणीयानि ॥ ७६ ॥

भक्तिशास्त्रों का मनन करना चाहिये एवं उस भक्ति की वृद्धि करने वाले कर्मों को भी करना चाहिये ॥ ७६ ॥

भक्ति शास्त्राणि मननीयानिः— भक्त को व्यर्थ के वाद-विवाद से मुक्त होकर,

"अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्वमाम्" (श्री० गी० ६/३३)

इस अनित्य दुःखस्वरूप शरीर से [भजन—भक्ति विषयक शास्त्रों का ही मनन करना चाहिये अर्थात् जिस शास्त्र में भगवान् के नाम-रूप, गुण, लीला, धाम, महात्म्य, भक्ति, भक्त एवं साधन के स्वरूप का विशेष रूप से विवेचन हो, ऐसे, श्रीमद्भागवत आदि जैसे शास्त्रों का श्रवण, मनन, अध्ययन करना चाहिये, जिससे भक्ति-निष्ठा की पुष्टि होकर भक्ति की प्राप्ति हो और प्राण प्यारे प्राणेश्वर प्रियतम हृदय में शीघ्र निवास करें और सुदुर्लभ पंचम पुरुषार्थ प्रेम का प्राकट्य होकर जीवन सार्थक बने।

तथा जो भक्ति-विरोधी शास्त्र हों अर्थात् जिसमें भक्ति, भगवन्त एवं भक्त की गाथायें विशेष रूप से न हो, उन शास्त्रों के वक्ता यदि स्वयं ब्रह्मा ही क्यों न हों, तो भी नहीं सुनना चाहिये। ऐसे ही कहा भी है:—

"यस्मिन्छास्त्रे पुराणे वा हरिभक्तिर्न दृश्यते।
श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिस शास्त्र-पुराण में भगवद्भक्ति न हो उन शास्त्र के वक्ता यदि स्वयं लोक विधाता ब्रह्मा ही हों, तो भी श्रवणीय नहीं है। यही नहीं, अपितु जिस महात्मा के संग से भक्ति की प्राप्ति न हो, उनका संग भी विना सोचे-विचारे त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि भक्ति के साधनों की हानि होती है, निष्ठा में न्यूनता आती है। अतः वह भी त्याज्य ही है, ग्राह्य तो एकमात्र,

आधि व्याधिजरापराजित यदि क्षेमं निजं वाञ्छति।
श्री कृष्णेति रसायनं रसय रेमन्येः किमन्यैः श्रमैः ॥" *

कृष्ण रूप महा नाम रसायनामृत का रसास्वादन ही है।

तदुद्रोधक कर्माण्यपि करणीयानिः— भक्ति-शास्त्र के श्रवण, मनन एवं अध्ययन के साथ ही साथ भगवदर्थ-भक्तिवर्द्धक कर्मों को भी करना चाहिये। यही भगवान् ने स्वयं अपने अनन्यभक्त उद्धव को उपदेश देते हुये कहा है:—

"श्रद्धामृत कथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम्।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥
आदरः परिचर्यां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम्।
मद्भक्त पूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥
मदर्थेष्वङ्गचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम्।
मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम ॥
मदर्थेऽर्थ परित्यागो भोगस्य च सुखस्य च।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद् व्रतं तपः ॥
एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम्।
मयि संजायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ॥"

(श्रीमद्भा० ११/१९/२०-२४)

साधक मेरी अमृतमयी कथा में श्रद्धा रखे। निरन्तर मेरे नाम, गुण का, लीला का संकीर्तन करे, मेरी पूजा में पूर्ण निष्ठा रखे, स्तोत्रों के द्वारा मेरीस्तुति करे, मेरी सेवा-पूजा में आदर रखे, सर्वाङ्ग से साष्टाङ्ग प्रणाम करे, मेरे भक्तों की पूजा मुझसे अधिकरूप से करे, समस्त प्राणियों में मेरी ही

---

* रे मन! आधि व्याधिजरा से ग्रस्त यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो 'कृष्ण' रसायन रूप रसको पी, व्यर्थ अन्य श्रमों से क्या प्रयोजन?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बुद्धि रक्खे, मेरे लिये ही सर्वाङ्ग की चेष्टा करे, वाणी से मेरे ही गुणों का गान करे, मन को मेरे अर्पण कर दे, समस्त कामनाओं का त्याग कर दे, मेरे लिये धन, भोग एवं सुखों का त्याग कर दे और जो कुछ भी यज्ञ, दान, हवन, जप, व्रत, तप करे—वह सब मेरे लिये करे।

उद्धव! जो इस प्रकार आत्मनिवेदन पूर्वक इन धर्मों के द्वारा मेरी उपासना करते हैं, वे मेरी परम प्रेमा भक्ति को प्राप्त करते हैं। जिसकी प्राप्ति पर अन्य कुछ प्राप्त करना अवशिष्ट नहीं रह जाता। इस प्रकार भक्ति शास्त्र के श्रवण, मनन, अध्ययन एवं तद्विषयक कर्म करने से परम प्रेम लक्षणा परा-भक्ति की प्राप्ति हो जाती है, जिसमें जीव का आत्यन्तिक क्षेम—कल्याण निहित है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्त को भगवद्भजन के बिना क्षणार्धमात्र भी व्यर्थ न खोने का आदेश दिया जा रहा है।

सुखदुःखेच्छालाभादित्यक्ते कालेप्रतीक्ष्यमाणे क्षणार्धमपि व्यर्थं न नेयम् ॥७७॥

सुख दुःख, इच्छा, लाभादि द्वन्द्वों के त्याग से काल की प्रतीक्षा करते हुये आधा क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। ॥७७॥

जब तक सुख-दुःख, इच्छा-लाभ आदि द्वन्द्वों की भगवत्प्राप्ति के द्वारा निवृत्ति न हो जाय, तब तक

"कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशंभृतको यथा" (ना० प० उ० ३।६१)

के अनुसार,

"आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदान्त चिन्तया"

"प्रमादो ब्रह्मनिष्ठायां न कर्तव्यः कदाचन। (अ० उ० १८)

"प्रमादो मृत्युरित्याहुः ॥"

"निमिषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना" (ते० वि० उ० १।४७)

"निद्रायाः लोकवार्तायाः शब्दादेरात्मविस्मृतेः।

क्वचिन्नावसरं दत्वा चिन्तयात्मानमात्मनि ॥ (अ० उ० ५)

मृत्यु को सर्वदा सिर पर सवार समझते हुये अर्थात् प्रतिक्षण मृत्यु को देखते हुये, दूतवत् उसके निर्देश की प्रतीक्षा करते हुये, सुषुप्ति से मृत्युपर्यन्त, मृत्युरूप प्रमाद से रहित अति सावधान हो, निद्रा, लोकवार्ता, शब्दादि बाह्य-विषयों से परमात्मविस्मृति का लेशमात्र भी अवसर न देते हुये, पूर्ण रूपेण प्राण-प्रण से तत्पर हो, प्राणों की बाजी लगा कर, कटिबद्ध हो, महोत्सव के समान,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"मच्चिन्तनं मत्कथनमन्योन्यं मत्प्रभाषणम् ।
मदेक परमोभूत्वा कालं नय महामते ।।" (व० उ० २।४६)

(इस श्रुतिसिद्धान्तानुसार) भगवच्चिन्तन, कथन, तथा प्रभाषण से युक्त हो, समय व्यतीत—कालक्षेप करना चाहिये अर्थात् इस प्रकार सतत अभ्यास के द्वारा भगवच्चिन्तन की ऐसी महा प्रगाढ़ तल्लीना—तन्मयावस्था वना ली जाय कि काल एवं काल से सृष्ट देह पर दृष्टि ही न पड़े, सदैव प्रगाढ़ कृष्णाकार बुद्धि वृत्ति बने रहे। उसी में तन्मयता तद्रूपता बनी रहे। फिर ऐसी

"परो हियोगो मनसः समाधिः" (श्री मद्भा० ११।२३।४६)

मन की समाहिता—महामौना—महाकालातीता—महानिर्वाणा—परम-प्रेमा—जीवन्मुक्ता—ब्राह्मी—परम योगावस्था में सर्पवत् त्यागी गई प्रारब्ध के धरोहर इस शरीर रूपी केचली—मृतक शरीर को काल जब चाहे तब उठा ले जाय, कोई चिन्ता नहीं। इतना ही नहीं, अपितु

"त्रिभुवन विभव हेतवेऽप्यकुण्ठ स्मृतिरजितात्म सुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्रयः ।।"
(श्री मद्भा० ११।२।५३)

यदि कोई त्रिभुवन का वैभव-राजलक्ष्मी ही दे तो भी सारासारग्राही विवेकवती बुद्धि के द्वारा उस विनाश शील दुःखप्रद त्रैलोक्यश्री से पूर्ण रूपेण विरक्त हो कर, इस श्वांस का क्षण मात्र भी विश्वास न करते हुये, विशेष भगवत्प्रीति निष्ठा से युक्त हो, लवानिमिषार्ध मात्र के लिये भी आनन्दवर्षी अमृतवर्षी भगवच्चरणारविंद मकरन्द के स्मृति का तार नहीं तोड़ना चाहिये उसका त्याग नहीं करना चाहिये, क्योंकि,

क्षणार्धमपि विस्मृत्य याति दुःखलयं जनः" (लि० पु०)

क्षणमात्र की भगवत्विस्मृति भी दुःखों का आगार ही है। अतः सतत् सर्वदा सर्व अवस्थाओं में परमात्मचिन्तन, मनन, में ही तन्मय, तल्लीन रहना चाहिये, क्यों कि भुक्ति-मुक्ति के एक मात्र हेतुभूत यदि इसी मानव शरीर से भगवत्प्रीति नहीं हुई तो फिर वही चौरासी का चक्कर।

यही भगवान् ने भी कहा है:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देह योगेन तावत्"
(श्रीमद्भा० ५।५।६)

जब तक मुझ वासुदेव में प्रीति नहीं होती, तब तक जीव देह योग—देह के सम्बन्ध जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्त नहीं हो सकता।

"सुरूपं शरीरं नवीनं कलत्रं
धनं मेरु तुल्यं वचस्चारु चित्रम्।
हरेरंघ्रि युग्मं मनश्चेदलग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥"

इस प्रकार भगवत्पादारविन्द मकरकन्दरस के प्रेम के अभाव में इस लोक की सुन्दर शरीर, नवीन कलत्र, मेरु पर्वत के समान धन, सुमधुर वाणी आदि का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा अर्थात् सब व्यर्थ हो जायेगा।

अतः नित्य-निरन्तर भगवान् में ही मन को लगाने का प्रयास करना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्त को पालनीय आचारों का आदेश दिया जा रहा है।

अहिंसासत्यशौचदयास्तिक्यादिचारित्र्याणि परिपालनीयानि ॥७८॥

अहिंसा, सत्य, शौच, दया, आस्तिकता आदि आचरणीय धर्मों का पालन करना चाहिए ॥७८॥

अहिंसा:— "*अहिंसानाममनोवाक्कायकर्मभिः सर्वभूतेषुसर्वदाऽक्लेशजननम्*" (शा० उ० १।१)

मन, वाणी, शरीर एवं कर्मों के द्वारा किसी को भी कभी क्लेश न देना अहिंसा है।

सत्य:-"*सत्यं नाम मनोवाक्कायकर्मभिर्भूतहित यथार्थाभिभाषणम्* ॥ (शा० उ० १।१)

मन, वाणी, शरीर एवं कर्मों के द्वारा प्राणियों के हितार्थ अनुद्वेगकर सत्य प्रिय यथार्थ भाषण सत्य है।

शौच:— *शौचंनामद्विविधंबाह्यमान्तरं चेति।*
तत्रमृज्जलाभ्यां बाह्यम्। मनः शुद्धिरान्तरम्।
तदध्यात्मविद्यया लभ्यम् ॥ [शा० उ० १।१]

बाह्याभ्यन्तर दो प्रकार की शुद्धि है। जिसमें मिट्टी-जल से बाह्य शुद्धि और भगवद्भक्ति से आन्तर— मन की शुद्धि, यह द्विविध शौच है।

दया:— "*दया नाम सर्वभूतेषु सर्वत्रानुग्रहः*, (शा० उ० १।१)

सर्व प्राणियों पर सर्वत्र अनुग्रह दया है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आस्तिक्य:- *श्रौते स्मार्ते च विश्वासो यत्तदास्तिक्यमुच्यते,,* (श्री० जा० उ० २।६)

श्रौत-स्मार्त कर्मों में जो विश्वास है उसे ही आस्तिक्य कहते हैं। इस प्रकार अहिंसा, सत्य, शौच, एवं दया आदि गीतोक्त दैवी सम्पत्ति अन्तःकरण की शुद्धि एवं भगवत्प्रीति का हेतु होने के कारण अवश्यमेव पालन करना चाहिए, क्योंकि,

"विष्णुभक्तः स्मृतो दैवः,,

के सिद्धान्त से, विष्णुभक्त दैव हैं। अतः उन्हें दैवी सम्पत्ति से सम्पन्न होना अनिवार्य है, क्योंकि इससे सम्पन्न होने ही पर भक्त को विष्णु की भक्ति प्राप्त हो सकती है, अन्यथा नहीं। अतः इनका पालन परमावश्यक है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भजनीय भगवान् के सर्वदा सर्वभाव से भजन का आदेश दिया जा रहा है।

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीयः ॥ ७६ ॥

सर्वदा सर्वभाव से निश्चिन्त होकर केवल भगवान् का ही भजन करना चाहिये ॥ ७६ ॥

स्वयं भगवान् भी यही कह रहे हैं:—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥" (श्री० गी० ९/२२)

"सर्वगुह्यतमं भूयः" (श्री० गी० १८/६४)

"मन्मनाभवमद्भक्तो" (श्री० गी० १८/६५)

"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" [श्री० गी० १८/६६]

"तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत" (श्री० गी० १८/६२)

जो अनन्य रूपेण मेरी उपासना करते हैं, उन नित्ययुक्त भक्तों के योगक्षेम का वहन मैं स्वयं करता हूं। अतः भक्तों को योगक्षेम की चिन्ता से अथवा

"लोकहानौ चिन्ता न कार्या" (नारद भक्ति सूत्र)

इस सूत्रानुसार, लोकहानि की भी चिन्ता से मुक्त हो, भगवद्वचनानुसार केवल परम प्रेमास्पद प्रभु की परम प्रीति एवं निष्ठा से युक्त हो, सर्व वेदान्त के गोप्यतम सार-सार भूत अन्तिम सिद्धान्त को समझकर, समस्त धर्मों एवं एषणाओं की पूर्णरूपेण उपेक्षा करके अनन्यरूपेण भगवत्शरणापन्न हो,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निर्भर-निष्कपट प्रेम से प्रेमविह्वल उत्कण्ठित, आतुर हो, तैलधारावत् अविच्छिन्नरूपेण सर्वदा, सर्वकाल में, सर्वभाव से, सर्व क्रियाओं से, सर्व अवस्थाओं में, उन्हीं एकमात्र माता, पिता, गुरु, आत्मा, ईश्वर, प्राणेश्वर, जीवनाधार, प्राणाधार, जीवनसर्वस्व अविकारिणी सच्चिदानन्दमयी नीलमणि की गति, मति से युक्त आसक्तचित्त होकर केवल भजन ही करना चाहिये।

अथवा, मृत्यु को सर्वदा सामने रखते हुये लोक-परलोक एवं योग-क्षेम की चिन्ता से सर्वथा विरत हो, उत्कण्ठित सच्चे हृदय से—

"स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोग्निः स चन्द्रमाः॥
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।" (कै० उ० १/८,६)

"सच्चिदानन्दरूपमिदं सर्वम्" (नृ० उ० उ० ७)
"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (छा० उ० ३।१४।१)
"ब्रह्मवेदं विश्वविदं वरिष्ठम्" (मु० उ० २/२/२१)
"वासुदेवः सर्वम्" (श्री० गी० ७।१६)
"भूतानि विष्णुर्भुवनानि विष्णुः" (वि० पु०)

"हरिरेव जगज्जगदेव हरिः
हरितो जगतो न हि भिन्न तनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः
स नरो भवसागरमुत्तरति॥ † (वि० पु०)

"सर्वं विष्णुमयं जगत् (वि० पु० ५।१।२०)
"सर्वं कृष्णमयं जगत्" (ब्र० वै० पु०)

"वही ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इन्द्र है, वही अक्षर अविनाशी ब्रह्म है, वही विष्णु है, वही प्राण है, वही काल है, वही अग्नि है, वही चन्द्रमा है तथा भूत, भविष्य एवं वर्तमान सब कुछ वही है, 'यह सब जगत् सच्चिदानन्द

† हरि ही जगत् और जगत् ही हरि है। हरि और जगत् में कोई भेद नहीं है। ऐसी जिसकी परमार्थ गति के प्रति मति है, वह मनुष्य भवसागर से पार हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वरूप ही है' 'निश्चित यह सब ब्रह्म ही है' 'यह श्रेष्ठ ब्रह्म ही यह जगत् है' 'सब कुछ वासुदेव है' 'सबभूत एवं सबभुवन विष्णु ही हैं' 'हरि ही जगत् एवं जगत् ही हरि हैं' 'यह सब जगत् विष्णुमय ही है' 'यह सब जगत् कृष्ण स्वरूप है'—इस प्रकार सबको कृष्णस्वरूप समझते हुये, आनन्द स्वरूप कृष्ण चन्द्र की सर्वदा सर्वकाल में, सर्वभाव से, सर्व कर्म से, सर्वरूप में सर्वत्र सर्व अवस्था में निश्चिन्त होकर अर्थात्

"एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" (अ० उ० ६३)

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानीति शान्त उपासीत्" (छा० उ० ३।१४।१)

भगवान् से भिन्न कुछ है ही नहीं—इस बुद्धि से शान्त एवं निश्चिन्त हो, सांसारिक बुद्धि से मुक्त होकर, केवल एक सच्चिदानन्दघन भगवान् का ही भजन करना चाहिये।

"अन्यथाचारपरो न भवेत्" (ना० प० उ० ५।१)

कदापि अन्य किसी लौकिक आचार के परायण नहीं होना चाहिये, क्योंकि सर्वदा ताक में बैठी हुई मृत्यु का कोई ठीक नहीं कि कब निगल जायेगी ? अतः मृत्यु के मुख से मुक्त होने के लिये सर्वदा सर्व प्रकार से विशेष सावधान एवं सतर्क होकर केवल भजन ! केवल भजन !! केवल भजन ही करना चाहिये।

यही मुनिमनहारी भगवान् भी अपने प्रिय भक्त अर्जुन से कहते हैं:—

"स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत" (श्री० गी० १५।१८)

वह पर वैराग्य से युक्त मन्मना, मद्रूप, सर्ववित्, सर्वज्ञ महात्मा सर्वदा सर्वभाव से सर्व अवस्था में मेरा भजन करता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनीर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

इस सूत्र में भगवान् के प्राकट्य का निर्देश किया जा रहा है।

स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान् ॥ ८० ॥

भगवान् प्रेमपूर्वक कीर्तित होने पर शीघ्र ही प्रकट हो जाते हैं और भक्तों को अपना अनुभव करा देते हैं ॥ ८० ॥

स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवतिः—वह भक्त परवश भक्तवत्सल परमकारुणिक करुणावरुणालय परम प्रेमास्पद (भगवान्)

"*मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन्*" (*श्रीमद्भा० ३/२९/३४*)

अपने इस आदेशानुसार, अपने स्वरूप भूत समस्त प्राणियों के प्रणाम के द्वारा निरहम्, निर्मम, अतिविनम्र हो, मीनवत् जलरूप प्रेमास्पद प्रियतम के वियोग में प्राण [रखने में असमर्थ परम व्याकुलता से, अन्य समस्त सांसारिक आश्रयों के सर्वथा त्याग के द्वारा अनन्यभाव से, एकनिष्ठ ध्यान से प्रेमविह्वला वाणी के द्वारा हृदय एवं वाणी की एकता से कीर्तित होने पर, प्रेममथानी से पूर्णरूपेण हृदय मंथित हो जाने पर,

"*रसो वै सः*" (तै० उ० २/७)

रसस्वरूप अवाङ्मनसगोचर निर्गुण, निर्विशेष ब्रह्म ही भक्त के प्रेमवश सगुण-सविशेष दिव्यातिदिव्य सर्वाश्चर्यमय सच्चिदानन्द विग्रह से सम्पन्न, दिव्य—चिन्मय माला, अम्बर, गन्ध, भूषणादि से विभूषित निखिल सौन्दर्य माधुर्य निधिसर्वस्व सौन्दर्यसार सगुण-साकार रूप से भक्त के दृष्टि का विषय होकर साक्षात् सामने प्रकट हो जाता है। जिस ब्रह्मानन्द को भी तिरस्कृत

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करने वाले मधुरातिमधुर परमानन्दमय अमृतमूर्ति-विग्रह को देखते ही भक्त सहसा अवाक् परमानन्द के महासमुद्र में डूबने-उतराने लगता, उसका गला रुँध जाता, शरीर पुलकित हो जाती, वाणी मूक हो जाती, नेत्र सानन्द साश्रुपूर्ण हो जाते, जी का जलन—त्रैताप शान्त हो जाता, जीवत्वभाव समाप्त हो जाता, इन्द्रियां तृप्त, कृतकृत्य हो जातीं, मन मौन हो जाता, बुद्धि विचार छोड़ बैठती, चित्त अचित्त हो जाता, अहं शान्त हो जाता, माया सिहर जाती तथा काम निष्काम, क्रोध-अक्रोध, लोभ निर्लोभ, मोह निर्मोह, मद अमद हो जाते। देह की सुधि-बुधि खो जाती। उसकी अनिर्वचनीय विलक्षण स्तब्धी अवस्था हो जाती, जो वाणी का विषय नहीं है। उसकी रंक के मणिवत् विचित्र अवस्था हो जाती। वह अपने अनादिकालीन साधना का फल पाकर सुखी, कृतकृत्य हो जाता। वह वर्षाकालीन नीलमणिवत् ज्योतिर्मयविग्रह पर, दमकते हुये वैद्युताम्बर-पीताम्बर पर, इन्द्रधनुषवत् देदीप्यमान बनमाला पर, करोड़ों पूर्णिमा को तिरस्कृत करने वाले मुखमण्डल पर, मरकतमणिवत् सुस्निग्ध कपोल पर मुग्ध हो जाता। उसका निर्निमेष नेत्रों से अतृप्त पान करता। वह उस मन्द-मन्द मधुर मुस्कान पर, ललित सुमधुर राजहंसवत् चाल पर, त्रिभंगी ललित रूप पर, नयनमनोहारी चारु चितवन पर, भक्ताभयप्रद आजानुवरदकर पर, भक्ताश्रय परमनिधि पादपद्म पर मुग्ध हो जाता। अपने को लुटा बैठता, सदा के लिए उसका चेरा हो जाता। वह नेत्र से उस रूपविशेष को पीने, जीभ से चाटने, एवं भुजाओं से अतृप्त हो बार-बार प्रगाढ़ आलिंगन करने लगता, मानों हृदय फाड़कर रख लेगा।

प्रणयकोप से उस निरतिशयरूप को चूमता, चाटता, आलिंगन करता, उसकी बलैया लेता, उस पर अपना सर्वस्व निछावर कर देता, उसका हो जाता, उससे रास रचाता, उसके अधरामृत का पान करता, प्रेमालाप करता, उससे एकीभूत हो जाता। उस काल में उसकी भावात्मक दिव्य सर्वेन्द्रियों में सर्वग्रहण की शक्ति आ जाती। वह प्रेममूर्ति प्रेमस्वरूप प्रेमास्पद प्रियतम सर्वेश्वर के सामने सर्वेन्द्रियों से सर्व चेष्टा करता। दिव्य महासाम्राज्य को प्राप्तकर तन्मय तद्रूप हो जाता, और क्या कहा जाय, क्या क्या होता है, सब कुछ होता है। सब अलौकिक सब अनिर्वचनीय होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अहा, वह रूप क्या है ! सर्वथा दिव्य, सर्वथा चिन्मय; सर्वथा सर्वाश्चर्यमय सच्चिदानन्द का सारसर्वस्व। बस, देखते ही बनता है। दृष्टि वहां से हटने का नाम ही नहीं जानती।

उस शोभाधाम, छविधाम परमानन्द अमृतमूर्ति के एक-एक अंग पर कोटि-कोटि कामदेव की शोभा निछावर है। वह बलात् अपनी ओर आकृष्ट करके पागल, दिव्योन्मादी, दिव्यमहाभावापन्न किये जा रही है। अनवरत उस दिव्यामृत आनन्दवर्षी विग्रह से दिव्य रसराशि की, दिव्य आनन्द की दिव्य ज्योति की वृष्टि हो रही है। जिसको अज, विष्णु, शिव, शुक, सनकादि, नारद, व्यास, वसिष्ठ, विदेह आदि जीवन्मुक्त आत्माराम मुनि भी देखकर मुग्ध, समाधिसुख बिसारे अपने को भूले बैठे हैं। ऐसी विश्वविमोहनी मधुरातिमधुर अमृतमूर्ति सच्चिदानन्दमयी नीलिमा पर कोटि स्वतन्त्र वारे हैं। इस प्रकार,

"कालत्रयाबाधित ब्रह्म"

मायातीत गुणातीतं ब्रह्म" [त्रि० म० उ० १/१]

"अक्षरं परम ब्रह्म निर्विशेषं निरञ्जनम्,, (यो० शि०उ० ३/१६)

वह त्रिकालाबाध्य, मायातीत पूर्वापर बाह्याभ्यन्तर रहित, अतीन्द्रिय, निर्गुण निर्विशेष ब्रह्म भक्तों के अनन्य प्रेम के वशीभूत हो, सगुण-सविशेष होकर, अपने दिव्यातिदिव्य सच्चिदानन्दमय विग्रह से सगुण-निर्गुण की एकता कराकर, अपनी प्रेम परवशता, भक्तवत्सलता, दयालुता, परमकारुणिकता, अकारण हितैषिता, करुणावरुणालयता का अनुभव कराकर भक्त को कृतकृत्य कर देता। सदा के लिए उसे अपनी गोदी में ले लेता, एवं अपने सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य सौकुमार्य, सौरस्य, सौरभ्य, शौर्य, तेज, वीर्य, सर्वज्ञत्व, सर्वकारणत्व सर्वेश्वरत्व, अचिन्त्य अनन्त दिव्य-चिन्मय गुणगणनिलयत्व सगुणनिर्गुणएकत्व सगुणनिर्गुणरहितत्व, परात्परनाथत्व, सर्वकारणरहितत्व सर्वाधिष्ठानत्व, सर्वाधिष्ठानरहितत्व आदि,

"सर्वानुभूः,, [बृ० उ० २/५/१९]

अपने सर्वानुभवस्वरूप यथार्थ रूप का अनुभव कराकर समस्त संशयों-संदेहों कर्मों एवं चिद्- जड़ग्रन्थि से मुक्त कर महानिर्वाणावस्था में स्थित कर पञ्चम पुरुषार्थरूप परम प्रेमलक्षणा पराभक्ति प्रदान कर भक्त को कृतकृत्य जीवन्मुक्त कर देता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्ति के श्रेष्ठत्व का निर्देश किया जा रहा है।

त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी ॥ ८१ ॥

त्रिकाल में सत्यस्वरूप भगवान् की भक्ति ही श्रेष्ठ है, भक्ति ही श्रेष्ठ है ॥ ८१ ॥

श्रुति भी यही कहती हैं:—

"भक्तिवशः पुरुषः" [श्रुति]

"भक्तिप्रियो माधवः

"प्रेम्णा समानं भुविनास्ति किंचित्" [ग० सं० मथु० ४/२२]

"न मे भक्तः प्रणश्यति" (श्री० गी० ९/३१)

"सर्वेषामधिकारिणामनधिकारिणां भक्तियोग एव प्रशस्यते" (त्रि० म० उ० ८/१)

परम पुरुष परमात्मा भक्ति के वश में है, क्योंकि उसे भक्ति प्रिय है। भगवान् अपने प्रिय भक्ति की साधना स्वयं कराते हैं और उसके फल के रूप में,

ददामि बुद्धियोग तं येन मामुपयान्ति ते" (श्री० गी० १०/१०)

के सिद्धान्त से, स्ववचनानुसार स्वयं प्राप्त भी होते हैं। यह इस भक्ति के क्षेत्र मे विशेष विशेषता है।

प्रेम—भक्ति के सदृश त्रैलोक्य में कोई भी साधन नहीं है। तथा इसमें स्त्री, शूद्र, अन्त्यजादि महापातकियों का भी अधिकार है। इसमें पतन का कोई भय नहीं है, क्योंकि भगवान् सदा सर्वदा भक्त की रक्षा के लिये तत्पर रहते हैं। इसीलिये,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये ।
दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्त विनिन्दकः ॥" (श्रीमद्भा० मा० २/२०)

भक्तिद्रोही, भक्तविनिन्दक भक्त अम्बरीष का बहिष्कार करने वाले महा-योगी, महाज्ञानी दुर्वासा त्रैलोक्य में दुःखी ही दुःखी रहे । इसलिये भी भक्ति सर्वश्रेष्ठ है ।

श्रीमद्भागवत में शुकदेव जी ने भी यही कहा है:—

" सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यम्" (श्रीमद्भा० १०/२/२६)

प्रभो ! आप सत्यव्रत हैं, सत्य ही आप के प्राप्ति का परमालम्बन है । सृष्टि के पूर्व, पश्चात्, तथा मध्य—इन तीनों कालों में, तीनों अवस्थाओं में आप ही एक सत्य हैं ।

भक्ति भगवत्रूपा है । इसलिये भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है । स्वयं भगवान् ने भी यही कहा है:—

"योगास्त्रयो मयाप्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया ।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥" (श्रीमद्भा० ११।२०।६)

मनुष्यों के कल्याणार्थ मैंने ज्ञान, कर्म एवं भक्ति—ये ही तीन साधन वतलाये हैं । इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है । परन्तु,

'त्रिसत्यस्य'

इन तीनों सत्य साधनों में निरुपद्रवा भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है । अथवा, कायिक, वाचिक, मानसिक,

'त्रिसत्यस्य'

इन तीनों सत्यों में भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है । अतः

"सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रयः"
"भक्त्या सर्वसिद्धयः सिद्धयन्ति" (त्रि० म० उ० ८/१)

समस्त अन्य उपायों—साधनों को छोड़कर सर्वसिद्धिप्रद एक मेव भक्ति का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्ति के विभिन्न रूपों का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

गुणमाहात्म्यासक्ति रूपासक्ति पूजासक्ति स्मरणासक्ति दास्यासक्ति सख्यासक्ति कान्तासक्ति वात्सल्यासक्ति-आत्मनिवेदनासक्ति तन्मयतासक्ति परमविरहासक्ति-रूपा एकधाप्येकादशधाभवति ॥ ८२ ॥

यह प्रेमा-पराभक्ति एक होने पर भी—१-गुणमाहात्म्यासक्ति, २-रूपासक्ति, ३- पूजासक्ति, ४- स्मरणासक्ति, ५- दास्यासक्ति, ६- सख्यासक्ति, ७-कान्तासक्ति ८- वात्सल्यासक्ति, ९- आत्मनिवेदनासक्ति, १०- तन्मयतासक्ति, एवं ११- परम-विरहासक्ति—इस तरह ग्यारह प्रकार की होती है। आसक्ति का अर्थ है तन्मयता, तद्रूपता, परवशता। ऐसे ही कहा भी गया है:—

"देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम्।
आत्मन्येवभवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते ॥" †

इस सिद्धान्त से, जैसे अज्ञानी को देह में अहं-मम रूपा आसक्ति है तथा स्त्री में कामी की आसक्ति है, लोभी की धनमें आसक्ति है। हजारों बार इनसे दुःखी, प्रताड़ित एवं तिरस्कृत होने पर भी तथा भूख प्यास आदि किसी भी

---

† जैसे अज्ञों को देह में प्रौढ़ आत्मबुद्धि होती है वैसे ही देहात्मबुद्धि के बाधक आत्मा में जब प्रौढ़ स्थिति हो जाती है तब वह न चाहता हुआ भी बलात् मुक्त हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अवस्था में इनकी आसक्ति नहीं छूटती, वैसे ही किसी महाभाग्यवान् को अनन्त जन्मों के पुण्योदय के कारण जब भगवान् या किसी महापुरुष की कृपा विशेष से भगवान् में प्रीति हो जाती है, तो हजारों प्रयत्नों—कष्टों के द्वारा प्रह्लादवत् छुड़ाये जाने पर भी नहीं छूटती, देह का भान नहीं होने देती, उसे ही आसक्ति कहते हैं। इसी को भक्ति एवं ज्ञान की पराकाष्ठा कहते हैं। भगवान् भी अर्जुन से यही कहते हैं:—

"मय्यासक्तमनाः पार्थ" (श्री० गी० ७/१)

मुझमें आसक्तचित्त होकर मुझे समग्र-सम्पूर्ण रूपेण जानेगा।

१-*गुणमाहात्म्यासक्तिः*— दिव्यातिदिव्य मधुरातिमधुर अमृत से भी मधुर भगवान् के गुण एवं माहात्म्य के श्रवण में आसक्ति का होना। विना उसके चैन ही न पड़े।

"नैषातिदुःसहा क्षुन्मांत्यक्तोदमपि बाधते।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥" § (श्रीमद्भा० १०/१/१३)
"न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः *
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः॥ (श्रीमद्भा० ४।२०।४)
"यत्र यत्र रघुनाथ कीर्तनं तत्र तत्र कृत मस्तकांजलिं।
वाष्पवारि परिपूर्ण लोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥

---

§ भगवन्! अन्न की तो बात ही क्या, मैंने जल का भी परित्याग कर दिया है। फिर भी वह भूख-प्यास जो लोगों के लिये अत्यन्त असह्य होती है। मुझे तनिक भी नहीं सता रही है। इसका कारण यह है कि मैं आपके मुख कमल से झरती हुई भगवान् की सुधामयी लीला-कथा का पान जो कर रहा हूँ।

---

* प्रभो! मैं इन तुच्छ विषयों को आपसे नहीं माँगता, मुझे तो उस मोक्ष पद की भी इच्छा नहीं है, जिसमें महा पुरुषों के हृदय से उनके मुख द्वारा निकली हुई आपके चरण कमल-मकरन्द की कीर्ति सुनने को नहीं मिलती। इसलिये मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये, जिनसे मैं आप के लीला गुणों को सुनता ही रहूं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परीक्षितवत् गुणामृत, माहात्म्यामृत के रसास्वादन में खाने-पीने की सर्वदा चिन्ता का न रहना। उसकी आदि सम्राट पृथुवत् दसहजार कानों के समान श्रवण की सर्वदा उत्कण्ठा बनाये रहना, उसी कथामृत में सदैव तन्मय रहना। हनुमानवत् जहां कहीं भी कथा हो, वहाँ उसके श्रवण में साश्रुनेत्र एवं मस्तकाञ्जलिबद्ध सदैव उपस्थित रहना गुणमाहात्म्यासक्ति भक्ति है।

२- *रूपासक्तिः*— सच्चिदानन्द सार सर्वस्व भगवान् के निरतिशयरूप में गोपियों की भांति आसक्ति का होना। बिना उसको देखे चैन ही न पड़ना, मन का सर्वदा उस रूपमाधुरी के पान में ही तन्मय रहना, क्योंकि सबके परम प्रेमास्पद लक्ष्यभूत उस परमानन्द परमरूप को देखते ही पशु-पक्षी भी मुग्ध मूर्तिवत् व्यापारशून्य स्थिर हो जाते हैं। जिस रूप विशेष पर दृष्टि पड़ते ही खर-दूषणादि जैसे, प्रबल शत्रुओं की बुद्धि भी मित्ररूप में परिणत हो गई। जिसके दर्शनमात्र से विषधरों का विष, सिंह आदि हिंसकों की हिंसावृत्ति, अहं का अहं, काम का काम, क्रोध का क्रोध, लोभ का लोभ, मोह का मोह समाप्त हो जाता। भला, उस निरतिशय रूप के प्रति किस नेत्रधारी जीव का लोभ नहीं होगा? कौन उसके पीछे दीवाना-पागल नहीं होगा? कौन उस रूप में आसक्त नहीं होनाचाहेगा? इतना ही नहीं, उस सर्वाश्चर्यमय सर्वसमर्थ रूप ने तो जड़-पाषाण अहिल्या को भी दृष्टि दान के द्वारा चेतन बनाकर परमानन्द में मग्न कर दिया, उसी ने तारिकाओं, सहित चन्द्र को चकित-मोहित किया, उसी ने यमलार्जुन को चेतन बनाया। उसी अलौकिक रूप को निरख कर ब्रज के वृक्ष पुलकित परमानन्द में मग्न हो जाते थे। जमुना की गति उस गतीश्वर की गति-विधि को देखते ही रुक जाती थी, और उस श्याम रूप में तन्मय होने के कारण जमुना श्यामा हो गई। उसी निरतिशय रूप पर मुग्ध होकर सिन्धु के पाषाण जलचरों की भांति अपने पाषाणत्व को छोड़कर भगवद्दर्शनार्थ जल के ऊपर तैरते रहे। उसी की मधुरिमा पर मुग्ध हो, बन्दर-भालु उनके मित्र एवं सहायक बन गये। उसी सुरूप रूप के कारण कोल-भील अपने कुरूप रूप कर्म को छोड़कर सुरूप रूप कर्मी-सेवक बन गये। उसी हरि के रूप को हेरिकर हरि के हय बार-बार हिनहिनाते थे। उसी शोभा-सिंधु अद्भुत रूप लावण्य ने बरबश दण्डकारण्य के ऋषि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मुनियों को कान्ताभाव के लिये आतुर कर दिया। इसीलिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश शुक, सनकादि, नारद, व्यास, विदेहादि उस अनुपम रूप को देखते ही विदेह-ब्रह्मसुख को भूल बैठे। तभी तो गोपियां उस रूप पर पगली रहीं, क्योंकि वह रूप ही ऐसा है, जिसने स्वप्न में भी उसे देखा, वह ब्रह्म सुख को भूला, पागल हुआ, फिर वह होश हवास में, देह, गेह में, लोक- परलोक में नहीं रह पाता, सबका अतिक्रमण कर जाता है। कहां तक कहा जाय:—

"यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्॥
(श्री० मद्भा० ३।२।१२)

वह रूप तो ऐसा विलक्षण था कि स्वयं भगवान् भी उस पर मुग्ध हो जाया करते थे। उस रूप को देखकर विस्मित- चकित हो जाया करते थे।
वह रूप क्या था — सौन्दर्य की सीमा- पराकाष्ठा, जो भूषणों का भी भूषण उनको भी विभूषित-प्रकाशित करने वाला था।

३- *पूजासक्तिः*— भगवान् की पूजा में, उद्धववत्, अम्बरीषवत् एवं भरतादिवत् आसक्ति का होना, अपने को भूल जाना।

४- *स्मरणासक्तिः*— भगवान् के स्मरण में प्रह्लादसनकादिवत् आसक्ति का होना। क्योंकि जीव की अंतिमगति स्मरण के अनुसार ही होती है। भगवान् भी यही कह रहे हैं:—

"यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ [श्री० गी० ८।५]

मनुष्य जिस-जिस भाव का स्मरण करता हुआ, देह का त्याग करता है, वह उस-उस सदा स्मृत भाव को ही प्राप्त करता है— इस सिद्धान्तानुसार, जो मृत्युकाल में मेरा स्मरण करता हुआ, शरीर का त्याग करता है, वह निःसंदेह मेरे भाव को प्राप्त होता है। श्रुति भी यही कहती है:—

"देहावसानसमये चित्ते यद्यद्विभावयेत्।
*तत्तदेवभवेज्जीव इत्येवं जन्मकारणम्॥"** [यो० शि० उ० १।३१]
"स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः" (छा० उ० ७।२६।१)

---

* जीव देहावसानकाल में चित्त में जो-जो भावना करता है, वह वही-वही हो जाता है, इस प्रकार यही उसके जन्म का कारण है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवत्स्मृति को प्राप्त कर जीव समस्त अज्ञानग्रन्थियों से मुक्त हो जाता है।

५- *दास्यासक्तिः*— भगवान् की सेवा में भक्ताग्रण्य हनुमानवत् उद्धववत् एवं युधिष्ठिरादिवत् आसक्ति-तन्मयता का होना।

"तत्सुखसुखित्वम्" (*नारद भक्ति सूत्र २४*)

इस सूत्रानुसार, भगवान् के सुख में सुखी रहना। भगवान् की प्रसन्नता एवं सुख के लिये समस्त व्यापार करना अपने को मिटा देना।

६- *सख्यासक्तिः*— भगवान् में सख्यभाव से अर्जुनवत् उद्धववत् श्री दामावत् गोपकुमारवत् एवं सुदामादिवत् आसक्ति का होना। उनमें अभेदभाव को प्राप्त होना, किसी भी प्रकार का छिपाव-बनावट का न होना, निष्कपट भाव से मित्र बुद्धि से सब व्यापार करना।

७- *कान्तासक्तिः*— *"पतिंपतीनाम्"* (श्वे उ ६।७)

"प्रियपतिम्" (य सं २३।१९]

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार भगवान् ही समस्त ब्रह्माण्ड के परम पति हैं। परतन्त्र सब जीव उनकी स्त्री हैं— इस भाव से उनमें कान्ताभाव से गोपियों एवं रुक्मिणी आदि पटरानियों की भांति आसक्ति का होना, उनपर अपना सर्वस्व निछावर किये रहना।

८- *वात्सल्यासक्तिः*— भगवान् में वात्सल्य-पुत्रभाव से नन्द, यशोदा, वसुदेव, देवकी, दशरथ, कौशिल्या आदि की भांति आसक्ति का होना, उनमें लालन पालन आदि के द्वारा तन्मय होना

९- *आत्मनिवेदनासक्तिः*— अम्बरीष, बलि, हनुमानविवत् सम्पूर्ण समर्पण के द्वारा अपने को मिटा देना, अपने अस्तित्व को खो देना, आत्मनिवेदनाशक्ति है

१०- *तन्मयतासक्तिः*— भगवान् में तन्मय होने के कारण गोपियों की भांति अपने को भूल जाना, भगवद्रूप हो जाना, तन्मयतासक्ति है।

११- *परमविरहासक्तिः*— भगवान् के वियोग में गोपियों की भांति परमविरहावस्था को प्राप्त होना। संयोग में भी राधावत् वियोग का अद्भुत भाव होना, प्रलाप करना, परमविरहासक्ति है। इस प्रकार,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत,, (श्री० गी० १७।३)

इस भगवद्वचनानुसार, जो भक्त जिस श्रद्धाभाव से भगवान् का भजन करता है, उसमें पात्रानुसार वैसी ही भक्ति का उदय होता है और उसमें आसक्ति—तन्मयता को प्राप्तकर भक्त सुखी, कृतकृत्य हो जाता है। इस तरह भक्ति एक प्रकार की होने पर भी पात्र-भेद से ग्यारह प्रकार की हो जाती है।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सूत्र में भक्ति की सर्वश्रेष्ठता में अन्य आचार्यों का मतैक्य प्रदर्शित किया जा रहा है।

इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया एकमताः कुमार-व्यास शुक शाण्डिल्य गर्ग विष्णु कौण्डिन्यशेषोद्धवा-रुणि बलिहनुमद् विभीषणादयोभक्त्याचार्याः ॥८३॥

सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार भगवान् वेदव्यास, शुकदेव, शाण्डिल्य, गर्ग, विष्णु भगवान्, कौण्डिन्य, भगवान् शेष उद्धव, आरुणि बलि, हनुमान्, विभीषण आदि भक्ति के आचार्यगण लोगों की निन्दा-स्तुति से सर्वथा निर्भय रहने वाले सब एक मत से भक्ति ही को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं। अतः भक्तिप्राप्त्यर्थ इन परमाराध्य भक्त्याचार्यों को सादर नमस्कार है।

जनजल्पनिर्भयाः— लोकातीतावस्था को प्राप्त समस्त भक्तिशास्त्र के आचार्यों ने भ्रान्त लोगों की निन्दा-स्तुति का ध्यान न देते हुये, अपनी सुनिश्चित सुप्रमाणित बुद्धि से भक्ति के सर्वश्रेष्ठत्व की महिमा का एक स्वर से, एकमत से, गान किया है। इस प्रकार भक्ति के प्रधानाचार्य भगवान् नारद अपने मत की पुष्टि के लिये इन आचार्यों की मतैक्यता के साथ निर्भय हो ऊँची भुजा उठाकर जीवों के कल्याणार्थ इस साध्या-निर्गुणा, परा सुदुर्लभा भक्ति की दुन्दुभी बजाते हुये, सोत्साह सोल्लास स्पष्ट घोषणा कर रहे हैं।

———

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस अंतिम भक्ति सूत्र में फलरूप से प्रेष्ठ की प्राप्ति का प्रतिपादन कर रहे हैं।

य इदं नारदप्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसिति श्रद्धत्ते स प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं लभत इति ॥८४॥

जो भगवान् नारद द्वारा कथित इस कल्याणमय उपदेश में विश्वास एवं श्रद्धा करते हैं, वे प्रियतम को पाते हैं, प्रियतम को प्राप्त करते हैं ॥८४॥

ज़ो लोक विधाता ब्रह्मा के मानस पुत्र, नर-नारायण के परम शिष्य भगवान् नारद से कथित ८४ लक्षयोनियों के निरोधक इन ८४ सूत्रों से ग्रथित इस भक्ति शास्त्र पर विश्वास एवं श्रद्धा करता है, अथवा,

"वैष्णवानां यथाशम्भुः" (श्री० मद्भा० १२।१३।१६)

वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ भक्ति के आद्याचार्य साक्षात् परमेश्वर शिव के मुखारविन्द से कथित अमृत से भी मधुर इस उपदेशामृत पर विश्वास एवं श्रद्धा करता है वह

तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा (बृ० उ० १।४।८)

"प्रियाणां त्वां प्रियपतिम्," (य० सं० २३।१९)

पुत्र, धन स्त्री इत्यादि समस्त प्रिय वस्तुओं में अति प्रिय— परम प्रेमास्पद प्रियतम भगवान् को निश्चितरूपेण प्राप्तकर,

स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड भवति," (छा० उ० ७।२५।२)

उनको सम्यग्रूपेण निहार-देखकर, उनको अपना मानकर, अपना जानकर, उनका होकर, अतिशय प्रेम के कारण उनसे रति करता, प्रीति करता, क्रीडा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करता, विनोद करता, कृष्णानन्द, भूमानन्द, अक्षयानन्द में मग्न हो, रास रचाता, अधरामृत का पान करता, उनकी गोदी में बैठकर, उनका दामन पकड़कर, उनसे प्रेमालाप करता, उनको चूमता-चाटता एवं उनसे एकीभूत-होकर तन्मय, तद्रूप हो जाता तथा सर्व प्रकार की भक्ति की अनुभूति करके स्वाराज्य पर अभिषिक्त स्वराट् 'हो सुखी कृतकृत्य हो जाता है।

अतः कल्याणकामियों को,

"*सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रय*"
"*भक्तिनिष्ठोभव । भक्तिनिष्ठोभव ।*"
"*भक्त्या सर्वसिद्धयः सिद्धयन्ति भक्त्यासाध्यं न किञ्चिदस्ति ॥*" [त्रि० म० उ० ८/१]

अन्य समस्त कष्टप्रद विघ्नबहुल भगवदालम्बनशून्य, उपायों—साधनों को छोड़कर सर्वसिद्धिप्रद सर्वसुलभ, सर्वग्राह्य,सर्वोपद्रवशून्य भक्ति का आश्रय ले, इस भक्ति-शास्त्र पर पूर्ण श्रद्धा-विश्वास से निर्भर होकर मोक्ष को भी तिरस्कृत करने वाले इस पञ्चम पुरुषार्थ स्वरूप प्रेम को अवश्यमेव प्राप्तकर लेना चाहिये, क्योंकि मानव-जीवन का यही अन्तिम पुरुषार्थ है और इसी में समस्त सुख-शान्ति निहित है।

बोलिये, प्रेम से, प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद प्रियतम

की

जय !!

हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनीर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

!! श्री कृष्णः शरणं मम !!

शरणागतिरहस्य

"नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥"
"अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिंचनो गतिः। *
त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थना मतिः।
शरणागतिरित्युक्ता सा देवेऽस्मिन् प्रयुज्यताम् ॥"

यों तो शास्त्रों में भगत्प्राप्ति के अनेकानेक साधन एवं मार्ग हैं, परन्तु समस्त साधनों में केवल भगवत्-शरणाति-प्रपत्ति-पराभक्ति ही जीवों के उद्धार के लिये,

"भक्तियोग एव प्रशस्यते"
"भक्तियोगो निरुपद्रवः" (त्रि० म० उ० ८/१)

त्रैलोक्ये भक्ति सदृशः पन्था नास्ति सुखावहः" (शि० पु० रु० सं० ख० २३/३८)

"न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि।
सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्म सिद्धये ॥" (श्रीमद्भा० ३/२५/१९)

एक मात्र प्रशस्त, निरूपद्रव, सर्वोपरि एवं सुखप्रद राजपथ है अन्य जितने भी सांख्य, योग आदि साधन हैं, वे केवल दुःख प्रद ही हैं फलतः उनसे कुछ प्राप्त नहीं होता। इसीलिये भगवान् स्वयं इसकी महत्ता के विषय में उद्धव को उपदेश देते हुये कह रहे हैं:—

---

* प्रभो! मैं अपराधों का भण्डार हूँ, आप की प्राप्ति के समस्त साधनों से शून्य हूं, अगति—गति रहित अत्यन्त नीच हूं। अतः परमात्मन्! मुझ निःसहाय के आप अपनी प्राप्ति के लिये आप ही उपाय—साधन बन जाइये—यह प्रार्थनारूप बुद्धि ही शरणा गति है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"न साधयति मां योगो न साख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥" [श्रीमद्भा० ११।१४।२०]

मैं योग, सांख्य, धर्म, वेदाध्ययन, तप, त्याग से उस प्रकार से सरलता, सुगमता, शीघ्रता से साध्य एवं प्रसन्न नहीं होता, जैसी ऊर्जित परा—प्रेमाभक्ति से ।

यही भक्तिभास्कर देवर्षि नारद ने भी कहा है:—

"किं वा योगेन सांख्येन न्यास स्वाध्याययोरपि ।
किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः ॥" (श्रीमद्भा० ५।६।१८)

योग, सांख्य, त्याग, स्वाध्याय आदि अन्य श्रेय के साधनों से क्या लाभ ? जिसस आत्मदानी भगवान् की मधुमयी भक्ति नहीं की गई ।

ब्रह्मा जी ने भी यही कहा है:—

"श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूल तुषावघातिनाम् ॥" (श्रीमद्भा १०।१४।४)

जो श्रेय के परमाश्रय सर्वोत्कृष्ट साधन भक्ति को छोड़कर केवल आत्म-बोध के लिये प्रयत्न करते हैं, वे केवल श्रम के ही भागी होते हैं । उन्हें चावल प्राप्ति के लिये भूसी कूटने के समान कुछ प्राप्त नहीं होता, उनका सारा प्रयास व्यर्थ हो जाता है । परमहंस शिरोमणि श्री शुकदेवजी का भी यही कथन है:—कि भगवन् !

"येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन—
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृत युष्मदङ्घ्रयः ॥" (श्रीमद्भा० १०।२।३२)

जो आप की भक्ति से रहित, आपके पादपद्म का तिरस्कार करने वाले विमुक्तमानी-ज्ञानाभिमानी हैं, उनकी बुद्धि की शुद्धि नहीं हो पाती ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अतः वे कष्ट पूर्वक परम पद के मार्ग पर आरुढ़ होकर भी अन्त में अधोगति को ही प्राप्त होते हैं। इसीलिये

"कलिग्राह ग्रहीतानां स एव परामाश्रयः" (श्रीमद्भा० ४।६)
"श्रीद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि" [श्रीमद्भा० मा० ५।३०]
"सर्ववेदान्तसारं हि श्रीमद्भागवतमीष्यते" [श्रीमद्भा० मा०]

कलिग्राह से ग्रस्त जीवों के परमाश्रय, साक्षात् कृष्णस्वरूप, सर्ववेदान्त के सारसर्वस्व भागवत भगवान् का स्पष्ट आदेश है कि,

"अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः।
अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा" (श्रीमद्भा० मा० २।२१)

व्रत, तीर्थ, योग, मख, से क्या लाभ ! एवं ज्ञान के व्यर्थ कथा--आलाप से भी क्या प्रयोजन ? क्योंकि केवल एक भक्ति ही मुक्तिप्रद है।

"कलौ भक्तिः कलौभक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः" (श्रीमद्भा० मा० २।१६)

कलियुग में केवलभक्ति, केवल भक्ति—भगवत्शरणागति ही समस्त साधनों एवं समस्तशास्त्रों का सारसर्वस्व है क्योंकि भक्ति से ही भगवान् श्री कृष्ण का प्रत्यक्षीकरण होता है। अनन्यभक्त उद्धव का भी यही कथन है:-

"ऋते कृष्ण प्रकाशं तु स्वात्मबोधो न कस्यचित्" (श्रीमद्भा० मा० ३/६)

बिना आनन्दकन्द सच्चिदानन्द श्री कृष्णचन्द्र के कृपा कटाक्ष- शरणागति के किसी को भी आत्मबोध संभव नहीं।

"हरिभक्तिः परानृणां कामधेनूपमा स्मृता,, (वृ० ना० पु० ६/१२)
भक्त्या सर्वसिद्धयः सिद्धयन्ति,, (त्रि० म० उ० ८/१
अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।
सत्वस्यशुद्धि परमात्मभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥ * (श्री० मद्भा० १२।१२।५४)

---

* सच्चिदानन्द घन भगवान् श्री कृष्ण के चरण कमलों की अविचलभक्ति सारे पाप तापरूपी अमंगलों को नष्ट कर देती है और परम शान्ति का विस्तार करती है। उसी से अन्तःकरण की शुद्धि तथा परमात्मा की पराभक्ति प्राप्त होती है एवं वैराग्य संयुक्त परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान तथा विज्ञान प्राप्त होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यही अनिर्वचनीयस्वरूपा, उत्तमोत्तमा, महाकामधेनु, समस्त सुखों, समस्त सिद्धियों, समस्त अनुभूतियों एवं ज्ञान विज्ञान आदि की एकमात्र जननी मूल-कारण है। इसीलिये भगवान् अपने नित्यांश जीवों के उद्धारार्थ निरुपद्रवा शरणागति भक्ति का उद्घोष करते हुए ऊंची भुजा उठाकर सर्वोपनिषदिक् गीता शास्त्र के सार-सार सर्वगुह्यतम एक श्लोकी अन्तिम वेदान्त महावाक्य का महादिव्य-अमर संदेश देते हुए कह रहे हैं कि, ऐ सर्वदा सर्वदेश, सर्वकाल, सर्ववस्तु में सर्वत्र मेरे शरणापन्न रहने वाले जीवो !

"*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ,,* (श्री० गी०१८।६६)

तुम समस्त धर्मों को अर्थात् मेरी प्राप्ति के अन्य समस्त कष्ट प्रद साधनों को सम्पूर्ण रूप से परित्याग करके, केवल मुझ एक शरणागतवत्सल के शरणापन्न हो, शोक-मोह से मुक्त निश्चिंत हो जाओ। बस, मैं इतने मात्र से ही अपनी पापात्मिका अनादि अविद्या— माया से मुक्त शोक-मोह से रहित प्रेमा— परा भक्ति प्रदान करके निहाल कृतकृत्य कर दूँगा। भागवत में भी भगवान् का उद्धव के प्रति यही दिव्य संदेश है:—

"*तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम्।*
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतो भयः ॥ (श्री मद्भा० ११।१२।१४,१५)

उद्धव ! तुम बुद्धि विक्षिप्त करने वाले श्रुति-स्मृति, विधि, निषेध, प्रवृत्ति, निवृत्ति, श्रोतव्य एवं श्रुत— इन समस्त व्यर्थ साधनों को छोड़कर मुझ एक शरण्य का ही सर्वात्मभाव से शरण ग्रहण करो। इस प्रकार तुम मेरी कृपा से सर्वत्र सर्वात्मदर्शन करके निर्भय निश्चिंत हो जाओगे। त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद् के द्वारा भी ब्रह्मा जी के प्रति महाविष्णु का भी यही उपदेश है:—

तस्मान्मामेकं शरणं व्रज,, त्रि० म० उ० ८।१

परमहंस संहिता श्री मद्भागवत का भी यही कथन है:—

"*सर्वात्मना यः शरणं शरण्यम्,,* [श्री० मद्भा०]

अतः तुम मेरी कृपा से शून्य समस्त साधनों को छोड़कर सर्वोपद्रवशून्य मुझ एक सर्वात्मा शरण्य के शरणापन्न हो जाओ, क्योंकि,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"दैवीह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥,, [श्री० गी० ७।१४]
"अजेया वैष्णवीमाया" [कृ० उ० ५]
"एतां महामायां तरन्त्येव ये विष्णुमेव भजन्ति नान्ये तरन्ति कदाचन"
(त्रि० म० उ० ४।१)

यह मेरी दैवी अजेया वैष्णवी महामाया अत्यन्त दुरत्यय है। जीव या उसके अन्य योग, ज्ञान आदि साधनों का सामर्थ्य नहीं कि उसका अतिक्रमण कर सके। अतः जो विवेकी समस्त साधनों को निस्सहाय समझकर केवल मेरे शरणापन्न हो, मेरे आनन्दवर्षी पादपद्ममकरन्दरस का रसिक हो जाता है, वह मेरी कृपा से मेरी अमृत स्वरूपा भक्ति को प्राप्तकर मेरी वशवर्तिनी माया से मेरे संकेत मात्र से अनायास ही मुक्त हो जाता है। दूसरे शरणागत भक्त के लिये,

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥,, (वा० रा० ६।१८।२५)
"न मे भक्तः प्रणश्यति, [श्री० गी० ९।३१]

भक्तवत्सलः स्वयमेव सर्वेभ्यो मोक्षविघ्नेभ्यो भक्तिनिष्ठान्सर्वान्परिपालयति
(त्रि० म० उ० ८।१)

भगवान् की प्रतिज्ञा है कि जो एक बार एक क्षण के लिये भी मेरे शरणापन्न हो, 'मैं आप का हूं' ऐसी याचना कर देता है, बस मैं उसका हो, उसके हाथ बिक जाता हूँ, और उसकी समस्त विघ्नों से रक्षा करता हूँ। उस,

"भक्तात्प्रियो न कश्चन,,

प्रियतम भक्त को सदा हृदय से लगाये रहता हूं, बाहुओं से कसे रहता हूँ, उसे नित्य देखता एवं चूमता रहता हूँ।

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥,, (श्री० गी० ९।२२)

के सिद्धान्त से, उन्हीं अनन्य शरणागतों के योग-क्षेम का वहन नित्य करता हूँ। उन्हीं की रक्षा के लिये सदैव तत्पर रहता हूं।

"क्रीतोऽहंतेनाऽर्जुन,, (आ० पु०)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उन्हीं के हाथ नित्य विका रहता हूँ, उन्हीं को नित्य गोदी में लिये रहता हूं, उन्हीं के सिर पर नित्य निर्भयता प्रदान करने वाला अपना वरद कर रखता हूं, उन्हीं पर मेरी अनवरत कृपा दृष्टि की वृष्टि होती रहती है, वे ही एक मात्र मेरे पादपद्म मकरन्दरस के रसिक प्रेमैकनिष्ठ होते हैं, उन्हीं का मैं जीवन सर्वस्व होता हूँ।

ध्यायन्ति ये मां नित्यं तां स्मरामि दिवानिशम् [ब्र० वै० पु० कृ० ४१६।५४]

के सिद्धान्तानुसार, उन्हीं का मैं अहर्निश ध्यान-चिन्तन करता रहता हूं, अन्यों का नहीं। अतः मेरे भक्तों का पतन—नाश नहीं होने पाता। पतन–कष्ट तो मेरे आश्रय—कृपा से रहित,

"*निर्गुणोपासने कष्टम्*" (श्रीमद्भा० मा० ३/५६)

"*क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम्*" (श्री० गी० १२/५)

"*ज्ञानं दुष्करं लोके*" [शि० पु० ४।४१।१७)

"*क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया*

दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति (क० उ० १/३/१४)

मेरी माया से मोहित, अभिमानी निर्गुण उपासकों को ही होता है। जो मेरी महामेरुवत् दैवी अजेया वैष्णवी महामाया को मशकवत् फूँककर उड़ाना चाहते हैं; उन्हें यह पता नहीं कि,

"*ईश्वरस्य महामाया तदाज्ञावशवर्तिनी*" (त्रि० म० उ० ४'१)

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि से भी अलङ्घनीय अजेया मेरी महामाया मेरी आज्ञा का वर्तन करने वाली है, जीव की नहीं, कि उसके डर से उसके आदेशानुसार, उसके सामने से हट जायेगी। इसीलिये,

"*चतुर्मुखादीनां सर्वेषामपि विना विष्णुभक्त्या कल्पकोटिभिर्मोक्षो न विद्यते*

[त्रि० म० उ० ८।१]

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार, ब्रह्माविष्णु महेश आदि समस्त देवगण भी मेरे शरणापन्न होकर ही मेरी कृपा से मेरी माया से मुक्त हो, स्वरूप-साक्षात्कार करने में समर्थ हुये हैं, फिर अन्यों की गणना ही क्या ? इसीलिये सबके पूर्वज ज्ञान-विज्ञान के नित्योदित सूर्य, सनकादि ऋषि "हरिःशरणम्"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नित्य इस महा मंगलस्वरूप महामन्त्र के जप के द्वारा सर्वोपद्रव शून्य, निर्भय, निर्द्वन्द्व, भगवत्शरणागति-भगवत्कृपा दृष्टि की वृष्टि की ही सदैव याचना करते रहते हैं। इसी आत्यन्तिक गोप्यतम परम रहस्यात्मक अमृतस्वरूपा दिव्याति दिव्या चिन्मयी शरणागति भक्ति की मधुरिमा पर मुग्ध हो, सर्व समर्थ लोक विधाता वेदस्रष्टा ब्रह्मा, महासमाधि—ज्ञाननिष्ठा सम्पन्न परमेश्वर शिव अपने को भूल बैठे एवं नित्य भूमानन्द में निमग्न-तन्मय-तल्लीन रहने वाले ब्रह्मविद्वरिष्ठ नारद एवं दण्डकारण्य के अन्यान्य ऋषि-महर्षि एवं देवगण तथा भगवान् के परम ऐकान्तिक मित्र प्रिय सखा अर्जुन आदि ब्रह्मनिष्ठा एवं पुरुषत्व का तिलांक देकर गोपी बन गये। फिर इसकी महत्ता की इससे बड़ी विशेषता और क्या हो सकती है। तीसरे, परमात्मा साधन साध्य नहीं, अपितु वह तो कृपा साध्य है। यही श्रुति का अन्तिम आदेश भी है:—

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" [मु० उ० ३।२।३]

इसलिये भी भगवत्शरणागति से भिन्न उसकी प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है। परन्तु है यह अत्यन्त दुर्लभ। तभी तो भगवान् अपनी शरणागति–प्रपत्ति के दुर्लभत्व का प्रतिपादन करते हुये कह रहे हैं कि:—

"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥" (श्री० गी० ७।१९)
"ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषुभूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥" [श्री० गी० १८।५४]

अनन्त जन्मों के अनन्तर ज्ञानी–ब्रह्मभूत जीवन्मुक्त पुरुष भी मेरे शरणापन्न-प्रपन्न हो, सर्वत्र मेरे दर्शन से सम्पन्न हो, ज्ञानोत्तर मेरी चतुर्थ प्रेमलक्षणा पराभक्ति को प्राप्त करते हैं।

यही परम विरक्त सम्राट् परीक्षित का भी कथन है:—

"मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥" (श्रीमद्भा० ६।१४।५)

करोड़ों सिद्धों एवं जीवन्मुक्तों में भी नारायणपरायण अर्थात् भगवत्शरणापन्न प्रशान्तात्मा पुरुष अत्यन्त ही दुर्लभ हैं। क्योंकि,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"जन्मान्तरसहस्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥" (वि० ध०)

सहस्रों जन्मों के सहस्रों तप, ज्ञान एवं समाधि के अनन्तर क्षीणकल्मष वीतराग पुरुष ही कृष्ण की शरणागति—पराभक्ति को प्राप्त कर पाते हैं।

ऐसे ही ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी कहा गया है:—

"कृष्णभक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम्।"
"ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि।
अमृतात् सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम् ॥"
(ब्र० वै० पु० कृ० ६७/८,६)

समस्त वरों में भी सर्वोत्कृष्ट वर श्री कृष्णभक्ति—श्रीकृष्णदास्य—भगवत्शरणागति ही है। ब्रह्मत्व, देवत्व, अमरत्व, अमृतत्व, एवं सिद्धिलाभ—इन सभी से हरि का दासत्व प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। क्योंकि

"यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा।
विलुठति चरणाग्रे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः॥
हरिभक्ति महादेव्याः सर्वा मुक्त्यादिसिद्धयः।
भुक्तयश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिकावदनुव्रताः॥" (ना० पा०)

भक्ति महादेवी के चरणों में तो मोक्षसाम्राज्य की श्री भी लोटती रहती है और साथ हीं साथ समस्त मुक्तियां, सिद्धियां एवं भुक्तियां—दासी बनकर उनकी सेवा में सतत संलग्न रहती हैं। सचमुच, यह भगवत्शरणागति-परा प्रेमा भक्ति ही "भक्तिरेव परोलाभः" (आ० पु० २६/४४)

जीव का अन्तिम महालाभ है। इसीलिये दस हजार वर्ष की समाधि-ब्रह्मनिष्ठा से सम्पन्न ब्रह्मविद्वरिष्ठ परमहंस शिरोमणि श्री शुकदेव जी, जब

वर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
विभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।" †
(श्रीमद्भा० १०/२१/५)

— — —

† भगवान् श्रीकृष्ण की वंशी-ध्वनि सुनते ही गोप बालायें ध्यानस्थ हो गईं। उन्होंने देखा—मोर की पाखों का मुकुट पहने कानों में कनेर का फूल धारण किये, स्वर्ण के समान सुन्दर पीतपट और वैजयन्ती माला से सुशोभित गोपगणों के द्वारा गाई अपनी कीर्ति को सुनते हुये उनके साथ श्यामसुन्दर नटवर वेष में अपने चरणों की विहारभूमि वृन्दावन में प्रवेश कर रहे हैं। आप वाँसुरी में अपने अधर की सुधा भरते हुये उसके छिद्रोंपर अँगुली धर कर विविध स्वर निकाल रहे हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पद के रसार्णवत्व, दिव्यत्व, अमृतत्व को विषय किये, तो इस

"कृष्णाकर्षिणी च सा" [भक्ति० सि०]

कृष्णाकर्षिणी भक्ति के लिये उन्मत्त हो उठे और वरवश भगवान् वेदव्यास के वहां जाकर भक्ति के महासागर भागवतरसामृत का पान करके तृप्त हुये। इसी कारण से भगवान् वेदव्यास ब्रह्मनिष्ठ जीवन्मुक्त होने पर भी भक्ति के अभाव में खिन्न असन्तुष्ट ही रहे और उसकी प्राप्ति के पश्चात् सुखी, सन्तुष्ट हुये। क्योंकि,

"आत्मारामाश्चमुनयो निर्ग्रन्थाऽप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत गुणो हरिः॥" (श्रीमद्भा० १/७/१०)

भगवान् के गुण ही ऐसे दिव्यातिदिव्य, चिन्मय, चित्ताकर्षक हैं कि अज्ञानग्रन्थि से रहित आत्माराम जीवनन्मुक्त महात्मा भी ब्रह्मसुख विसारे उस पर मुग्ध उसके गान में सदैव तत्पर तल्लीन रहते हैं। अतः कल्याण-कामियों को,

"सर्वोपापान्यरित्यज्य भक्तिमाश्रय" (त्रि० म० उ० ८/१)

"भक्तिवशः पुरुषः (श्रुति)

समस्तविघ्नवहुल कष्ट प्रद भगवदालम्बनशून्य, ज्ञान, योग आदि भ्रामक साधनों को सादर दूर से ही छोड़कर सदैव विज्ञानानन्दघन परम पुरुष परमात्मा को भी वश में रखने वाली चिन्मयी सर्वग्राह्य परम प्रशस्ता,

"श्रेष्ठापंचविधामुक्ते हरिभक्तिर्गरीयसी" (ब्र० वै० पु० कृ० ६७/८)

मुक्ति को भी तिरस्कृत करने करने वाली, सुदुर्लभा, सच्चिदानन्दैकरस-स्वरूपा, साध्या, प्रेमा, पराभक्ति—भगवतशरणागति ही एकमात्र, एकमेव एकमति, एकगति, एकनिष्ठा एवं एक चेष्टा से सम्पन्न सुदृढ़ सुनिश्चित बुद्धि से, सर्वभाव से स्वीकार करनी चाहिये। परन्तु ऐसा होने पर भी,

"धिक्कुलं धिक्कुटुम्बं च धिग्गृहं धिक् सुतं च धिक्।
आत्मानंधिक् शरीरं च श्रीगोपालपराङ मुखम्॥"

जो भगवतशरणापन्न नहीं होता, उसके कुल को धिक्कार है, कुटुम्ब को धिक्कार है, गृह को धिक्कार है, सुत को धिक्कार है, आत्मा को धिक्कार है और शरीर आदि सबको धिक्कार ही धिक्कार है। वह नराधम नरपशु

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विष्ठाभोजी सूकर-कूकर आदि से भी अधिक अधम है। भला जो,

अहोबकीयं स्तनकालकूटं
जिघांसयापाय यदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥ (श्री० मद्भा० ३।२।२३)

पूतना जैसी बालघ्नी राक्षसी को भी धाय की सर्वोच्च गति प्रदान करने वाला है, उस परम दयालु करुणावरुणालय, निष्कारणवत्सल अकारणहित् भक्त-परवश भक्तवत्सल परमकारुणिक शरणागतवत्सल व्रजेन्द्रनन्दन कृष्णचन्द्र को छोड़कर और कौन शरण हो सकता है ? अतः

मुर्दिमदमुदारं मर्दयन्नङ्गकान्त्या
वसनरुचानरस्ताम्भोज किञ्जल्कशोभः।
तरुणिमतरणीक्षा विवलवद्बाल्य चन्द्रो
व्रजनवयुवराजः काङ्क्षितं मे कृषीष्ट॥

जो अपनी अंग शोभा के द्वारा नवीन मेघ का मद मर्दन—गर्व खर्व कर रहे हैं, वस्त्र की कान्ति के द्वारा किञ्जल्क शोभा का भी तिरस्कार कर रहे हैं, वे व्रजनवयुवराज हमारी अभिलाषा पूर्ण करें। अर्थात् मुझ कंगाल के नित्य चैतन्य चिन्तामणि बने रहें।

"त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
रविकर गौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलक कुलावृताननाब्जं
विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥" [श्रीमद्भा० १।६।३३]

जिनका शरीर त्रिभुवनसुन्दर एवं तमाल के समान सांवला है, जिस पर सूर्य रश्मियों के समान दिव्य पीताम्बर लहराता रहता है और जिसके कमल सदृश मुखमण्डल पर घुंघराली अलकें लटकती रहती हैं, उन अर्जुन सखा श्री कृष्ण चन्द्र में मेरी निरन्तर निष्कपट प्रीति हो।

"त्वत्पादाब्जे मन्मनोऽलिः सततं भ्रमतु प्रभो।
पातु भक्तिरसं पद्मे मधुपश्च यथा मधु॥

प्रभो ! मेरा चित्तरूपी चञ्चरीक आप के चरण कमलों में सदा सर्वदा रमता रहे। जैसे मधुप कमल में स्थित हो उसके मकरन्दरस का सदैव पान करता रहता है वैसे ही मेरा मनमधुकर आप के चरणारविन्दों में स्थित हो भक्तिरस का निरन्तर आस्वादन करता रहे। बस, इस दास की यही हार्दिक करबद्ध प्रार्थना है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

!! गोविन्दं परमानन्दं सानन्दं समुपास्महे !!

"संसारकूपे पतितोऽत्यगाधे
मोहान्धपूर्णे विषयाभितप्ते ।
करावलम्बं मम देहि विष्णो
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥,, (श्री गोविन्द दामोदर स्तोत्र)

जो मोहरूपी अन्धकार से व्याप्त और विषयों की ज्वाला से संतप्त है, ऐसे अथाह संसाररूपी कूप में मैं पड़ा हुआ हूँ। हे मेरे मधुसूदन ! हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! मुझे हाथ का सहारा दीजिये।

"यन्नखेन्दुरुचिर्ब्रह्म ध्येयं ब्रह्मादिभिः सुरैः ।
गुणत्रयमतीतं तं वन्दे वृन्दावनेश्वरम् ॥" *
"श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव ।
जिह्वे पिब स्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ †
(श्री गोविन्द दामोदर स्तोत्र)

---

* जिस ब्रह्म के नखचन्द्र के चारु चन्द्रिका का ब्रह्मादि देवगण ध्यान करते हैं उस त्रिगुणातीत वृन्दावनेश्वर श्री कृष्णचन्द्र की मैं वंदना करता हूँ।

† हे जिह्वे ! तू श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे ! हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव ! गोविन्द ! दामोदर ! माधव ! — इस नामामृत का ही निरन्तर पान करती रह।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(स्तुति)

ॐ नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमोनमः ॥ १ ॥
नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे ।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ २ ॥
नमः कमलनेत्राय नमः कमलमालिने ।
नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ॥ ३ ॥
बर्हापीडाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ४ ॥
कंसवंश विनाशाय केशिचाणूरघातिने ।
वृषभध्वजवन्द्याय पार्थसारथये नमः ॥ ५ ॥
वेणुवादनशीलाय गोपालायाहिमर्दिने ।
कालिन्दी कूललोलाय लोलकुण्डलधारिणे ॥ ६ ॥
बल्लवी नयनाम्भोजमालिने नृत्यशालिने ।
नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ७ ॥
नमः पापप्रणाशाय गोवर्धनधराय च ।
पूतना जीवितान्ताय तृणावर्तासुहारिणे ॥ ८ ॥
निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ।
अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ९ ॥
प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर ।
आधिव्याधिभुजंगेन दष्टं मामुद्धर प्रभो ॥ १० ॥
श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर ।
संसारसागरेमग्नं मामुद्धर जगद्गुरो ॥ ११ ॥
केशव क्लेशहरण नारायण जनार्दन ।
गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव ॥ १२ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

❁ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ❁

समर्पण

अच्छा, तो लो प्यारे ! तुम्हारे चिन्मय कृपामृतादेशानुसार तुम्हारी चिन्मयी कृपामृतवर्षिणी कृपादृष्टि से तुम्हारी चिन्मयी अमृतस्वरूपा भक्ति की चिन्मयी "*प्रेमदर्शिनी*" नामक टीका तैयार—सेवा में समर्पित है। तुम्हारी प्राणाधिका प्रियतमा परमान्तरङ्गा आह्लादिनी शक्तिसारसर्वस्व स्वरूपभूता अमृतस्वरूपा भक्ति श्री राधामहरानी अपनी "*प्रेमदर्शिनी*" नामक टीका को प्रेम से देख लें। आप उन्हें प्रेम से दिखा दें। उन्हें पसन्द है न। पसन्द है तो इसे धारण कर लें। आप धारण करा दें और पारितोषिक पुरस्कार के रूप में

कृपादृष्टि की वृष्टि करा दें, कर दें। बस, मुझ दीन-हीन दरिद्र का इतने से कल्याण हो जायेगा।

मां ! मूलप्रकृति ! सृष्टिस्थितिसंहारकारिणि ! भुक्तिमुक्तिभक्तिप्रदे ! सनातनि ! सर्वाधिष्ठात्रि ! सत्यासत्यपरे ! परात्परतरे ! पूर्णे ! पूर्णचन्द्र-निभानने ! कृष्णाराधिते ! कृष्णस्वरूपे ! वृषभानु सुते ! सच्चिदानन्दमयि ! सर्वज्ञे ! सर्वतन्त्रस्वतन्त्रे मां ! इस स्वतन्त्र अबोध अनाथ बालक को अपनी अमृतमयी, वात्सल्यमयी, करुणामयी, दयामयी दिव्य दृष्टि से निहार दे, दृष्टिपात कर दे। अपने सरस, सुखद, मधुमय अमृत वरद कर को सिर पर रख दे।

मां ! केवल अपने स्वभाव- स्वरूप की दृष्टि से मुझ अशुचि, अपवित्र बालक का ध्यान न देते हुये अपनी अमृतमयी वाणी से सनाथ कर दे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मां! मेरी यही अन्तिम अन्तरात्मा से प्रार्थना है कि मुझे सदा के लिये अपनी चिन्मयी, अमृतमयी गोदी में रख ले। मैं कहीं अन्यत्र न जाने पाऊँ, इसका ध्यान रहे। बस, इतने से मैं कृतार्थ हो जाऊँगा और यह तुम्हारा विनोद ठहरेगा। बस, कृपादृष्टि मां! कृपादृष्टि !! केवल कृपादृष्टि !!!

मां! सर्वाद्ये! सर्ववन्द्ये! सर्वेश्वरि! परमेश्वरि, मां! तुझे सर्वतः सर्व ओर से सर्वदा के लिये नमस्कार है, नमस्कार है।

स्वामिन्! सर्वेश्वर! हृदयेश्वर! प्राणेश्वर!

"पत्रं पुष्पम्"

की दृष्टि से, इस शब्द-पुष्प को स्वीकार कीजिये। अथवा,

"वासुदेवः सर्वम्"

की दृष्टि से, सर्व वासुदेवस्वरूप होने के कारण अपने स्वरूपभूत इन शब्द-पुष्पों की माला को स्वीकार कीजिये। अथवा,

"कर्ताभोक्ता जनार्दनः"

की दृष्टि से, आप ही समस्त कर्मों के कर्ता एवं उनके फलों के भोक्ता भी हैं। इसलिये भी स्वीकार कीजिये। सर्वात्मन्!

"सर्वं कृष्णमयम्"

की दृष्टि से, आप ही सर्वस्वरूप हैं। अतः आप सर्वेश्वर, सर्वव्यापी, सर्वात्मा को सर्वात्म-सर्वभाव से, सर्वचेष्टा से, सर्वतः सर्व ओर से, सर्वाङ्ग से, सर्व अवस्था में, सर्वरूप में, सर्वत्र सर्वदा के लिये नमस्कार है, नमस्कार है।

श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे!

हे नाथ! नारायण! वासुदेव!

नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः॥
नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः॥

॥ श्री कृष्णार्पणमस्तु ॥

ॐ शान्तिः। शान्तिः॥ शान्तिः॥।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अशुद्धियों की सूची

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	६	आभिधा	अभिधा
१२	१६	मुक्तियाँ	भुक्तियां
१७	११	अनुव्रजम्यहं	अनुव्रजाम्यह
२०	३	ज्ञातद्येय	ज्ञातज्ञेय
२४	७	कहते	करते
२७	१२	निःसत	निःसृत
४०	४	परोक्षज्ञान	अपरोक्षज्ञान
५२	१	उपविषद्	उपनिषद्
५६	१५	[illegible]	क्षुद्र
७०	१३	... रित्यमि ...	रित्यभि
७४	२६	परिव्रटा	परिव्राट्
७६	११	गृहेष्वापि	गृहेष्वपि
१०१	२७	अवस ाथ	अवस्था
१११	२६	नानान्व	नानात्व
११२	१५	.. डमूजढता	जडमूढता
१२३	१३	तवाज्ञानम	तवाज्ञाम
१३२	११	इसालिये	इसलिये
१३४	२५	मान	भान
१३५	२६	ा ध्य-स	साध्य
१३८	२३	सक्षित्व	साक्षित्व
१६१	६	परुमार्थ	परमार्थ
१६४	१०	सर्वकल्पनां	सर्वकल्पानां
१८३	३	देवदेवैश्वर	देवदेवेश्वर
१८७	२१	अन्र्भाव	अन्तर्भान
१९६	७	प्रातै	प्राप्तै
२४२	६	षरम	परम
२४६	१२	यिशुद्ध	विशुद्ध
”	१३	निकारों	विकारों
२४७	१४	प्राप्ति	प्राप्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२५१	१४	पारमृतम्	परामृतम्
२५२	२२	काम	कान
२५३	१३	अपते	अपने
२५४	१३	ब्रह्मासूत्र	ब्रह्मसूत्र
२५४	१७	ब्रम्हाण्ड	ब्रह्माण्ड
,,	१७	साभूत	सारभूत
,,	२१	समधि	समाधि
,,	२३	समान्वित	समन्वित
२५६	१२	लब्धवा	लब्ध्वा
,,	२४	काथामृत	कथामृत
२५७	१८	चित्तकर्षक	चित्ताकर्षक
२५९	६	ब्यवासितो	व्यवसितो
२६०	३	यरित्यज्य	परित्यज्य
२६२	२१	भक्तया	भक्त्या
२६३	६	एवं	एव
,,	,,	प्रशयते	प्रशस्यते
२६४	५	प्रतिज्ञानुसार	प्रतिज्ञानुसार
,,	१४	आकरण	अकारण
२७०	३	मैं	हैं
२७१	१७	प्रतिज्ञा	प्रतिज्ञा
२७२	२२	वै	है
२७४	१०	जगमो	जनमो
२७६	२७	प्रणाश्यति	प्रणश्यति
२७७	४	आवश्य	अवश्य
२८६	२१	कर करते	कर सकते
२८८	२८	प्रियम	प्रियतम
३१४	२४	स्रोत्रों	स्तोत्रों
३४६	१४	सर्वोपापान्य	सर्वोपायान्प
,,	२०	करने करने	करने
३४६	२०	अधिव्यधि	आधिव्याधि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमावतार ब्रह्मविद्वरिष्ठ अनन्त श्री विभूषित परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज द्वारा प्रणीत दो अमूल्य ग्रंथ।

१–गीता की सर्वोत्कृष्ट प्रवचनात्मिका टीका **तत्त्वदर्शिनी** १० रुपया

२–नारद भक्ति सूत्र की सर्वोत्कृष्ट अनुभवात्मिका टीका **प्रेमदर्शिनी** ७–५० रुपया

विरक्तभूषण ज्ञानमूर्ति सर्वात्मदर्शी वीतराग परमहंस श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज द्वारा प्रणीत मुद्रणाधीन अद्भुत ग्रंथ

१–वैराग्य मार्तंड **३–सन्यासधर्म-संहिता**

२–जीवनमुक्ति-दर्पण **४–परमार्थसार-सर्वस्व**

मुद्रक:—शीतला प्रसाद त्रिपाठी, प्रबन्ध संचालक, कुसुम प्रकाशन संस्थान द्वारा / कुसुम प्रकाशन संस्थान, आसिफगंज, आजमगढ़, उत्तर-प्रदेश में मुद्रित।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi